

प्रकाश-आयुर्वेदीय-ग्रंथमाला

आयुर्वेदीय खनिज-विज्ञान

(रस-गन्धात्मक)

लेखक—

सुवर्ण-पदक प्राप्त, रसायनाचार्य,

कविराज श्री प्रतापसिंह

3762
560
134

प्रोफेसर फार्मेसी एण्ड रसराज, सुपरिन्टेन्डेंट, आयुर्वेदिक फार्मेसी, प्रधान चिकित्सक सर सुन्दरलाल आयुर्वेदिक हॉस्पिटल, मेम्बर फेकल्टी आफ मेडिसिन एण्ड सर्जरी (आयुर्वेद), मेम्बर फेकल्टी आफ ओरियण्टल लर्निंग बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी, मेम्बर गवर्नमेन्ट बोर्ड आफ इण्डियन मेडिसिन यू० पी०, मेम्बर आफ एडवाइजरी कमेटी गवर्नमेन्ट स्कूल आफ आयुर्वेद पटना (बिहार), प्रसूति परिचर्या आदि अनेक ग्रन्थों के रचयिता, एवं परीक्षक.

प्रकाशक—

वैद्य शिवनारायण मिश्र भिषग्नल,

प्रकाश आयुर्वेदीय औषधालय,

और

प्रकाश पुस्तकालय

कानपुर.

बिना जिल्द २॥) रु०]



[सजिल्द ३) रु०]

Publisher
Vaidya Shiva Narayan Mishra,
Bhishak-Ratna,
Prakash Aushadhalaya,
&
Prakash Pustakalaya,
Cawnpore.

6-2932-2

Printed at
The Job Press,
Cawnpore.

आयुर्वेदीय खनिज-विज्ञान

(रस-गन्धात्मक)



हिज हाइनेस महाराजाधिराज महाराणा
श्री मर भूपाल सिंह जी बहादुर जी० सी० एस० आई०,
उदयपुर.

DEDICATED

TO

**HIS HIGHNESS MAHARAJADHIRAJ MAHARANA
SHRI SIR BHUPAL SINGHJI BAHADUR, G. C. S. I.,**

OF

UDAIPUR (MEWAR)

AS A TOKEN

OF

DEEP REVERENCE.

विषय-सूची

INTRODUCTION (by Mahamahopadhyaya
Kaviraj Gananath Sen, Saraswati,
M. A., L. M. S.)

१५

प्रस्तावना (लेखक, महामहोपाध्याय कविराज गणनाथ सेन,

विद्यासागर, सरस्वती, एम० ए०, एल० एम० एस०) २३

भूमिका (लेखक, कविराज प्रतापसिंह) २९

सम्मतियाँ (Opinions) ३६

संसार भर में प्राप्त होनेवाले रस-ग्रन्थों की सूची .. ३८

पारद और पारदीय खनिज

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
पारदीय उत्पत्ति विषयक नव्य मत	१	रसकर्पूर की नव्य निर्माण विधि	१७
रसोत्पत्ति विषयक प्राच्य मत	५	प्राकृतिकपारद Native mercury	१८
पारद के खनिज	७	पारद रजत मिश्रक Silver	
पारद निकालने योग्य खनिज	१०	amalgam	१८
हिगुल, Cinnabar	१०	टेट्राहीड्राइट Tetrahedrite	१८
यकृदाकार हिगुल Hepatic	११	परीक्षा	१६
प्रवालाभ Coralline	११	पारद प्राप्ति के कुछ गौण खनिज	१६
दैत्येन्द्र रक्तः Steel ore	१२	Livingstonite	१६
गिरिसिन्दूर Brick ore	१२	Barcenite	२०
चर्मारः Meta cinnabar	१३	Guadalcazarite	२०
खैरकण्ठ लि Calomel	१३	Terlinguaite	२१
रसकर्पूर की प्राचीन निर्माण विधि	१५	Eglestonite	२१

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
Kleinite	२१	खनिज हिंगुल की उत्पत्ति	७७
Mosesite	२२	योजन शब्द का विचार	८८
Montroydite	२२	पारद और पारद्रीय चारों का	
Tiemanite	२२	शरीर पर प्रभाव	१००
Onofrite	२२	आन्तरिक शरीर पर प्रभाव	१०१
Coloradoite	२२	महास्रोत (Gastro) पर प्रभाव	१०१
Lehrbachite	२२	यकृत पर प्रभाव	१०३
Iodyrite	२३	रक्त पर प्रभाव	१०३
हिंगुल की व्याख्या	२५	वृक्क पर प्रभाव	१०४
हिंगुल सेवन विधि	३०	पारद का शरीर से बहिर्निर्गम	१०४
नाग सिन्दूर निर्माण विधि	३२	क्षमता (Toleration)	१०५
हिंगुल निर्माण की भारतीय विधि	३५	तात्कालिक विष लक्षण	१०५
पारदाल्प देग से हिंगुल बनाने की		प्रतिविष	१०६
विधि	३६	चिरकालिक विष प्रभाव	१०६
हिंगुल से पारद निकालने की विधि	३७	पारद और उसके यौगिकों का	
विचार गन्धम्	३७	औषध-विज्ञान	१०८
हमरुगन्धम्	३७	वाक् प्रयोग	१०८
मलियन्धम्	३८	फिरंग	११३
पारद के गुण दोष	४१	शरीर में पारद प्रविष्ट करने की	
पारद के मिश्रक	४४	विधियाँ	११५
पारद के कम्पूक	४६	मुख	११५
शुद्ध पारद के लक्षण	५०	गुदा	११५
अशुद्ध पारद के लक्षण	५१	नस्य	११५
रस शास्त्र के अनुसार अशुद्ध पारद के		भूषीकरण	११५
लक्षण	५३	लेपन	११६
पारद के भस्कार	५५	पारद स्नान	११८
पारद का आयात नियंत्रण	५८	पारद प्रयोग करने में सावधानी	११६
पारदाल्प खनिज प्राप्ति के स्थान	६५		

विषय-सूची

७

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
पाश्चात्य चिकित्सानुसार पारद के कुछ योग	१२०	किरंगहर योग (रस कर्पूर खाने की विधि)	१३६
नव्य रसकर्पूर	१२७	सप्तशालि बटी	१४०
रस शास्त्र के अनुसार पारद के कुछ चुने हुए प्रयोग	१३०	रसपुष्प की निर्माण विधि	१४१
बाह्य शरीर पर पारद के प्रयोग	१३२	रसपुष्प का परीक्षण	१४१
पचन निवारक और किरंग वृण नाशक प्रयोग	१३२	रसपुष्प के गुण	१४१
भूतघ्न चक्रिका	१३२	रसपुष्प की मात्राओं का निरूपण	१४१
रसकर्पूरद्रव की निर्माण विधि	१३३	रसपुष्प का आमयिक प्रयोग	१४१
रसकर्पूरद्रव के गुण	१३३	चन्दनादि वटिका	१४२
रसकर्पूरद्रव का प्रयोग	१३३	रसकर्पूर का नव्य निर्माणप्रकार	१४२
शुद्ध प्रयोग	१३४	रसकर्पूर के गुण	१४३
केवल पारद प्रयोग	१३४	रसकर्पूर की मात्राओं का निरूपण	१४३
रसपुष्प मलहर	१३४	रसकर्पूर का आमयिक प्रयोग	१४४
रसपुष्पाय मलहर	१३५	रसकर्पूर गुटिका	१४४
सिक्वतैल की निर्माण विधियाँ	१३५	मुग्धरस का निर्माणप्रकार	१४४
कज्जलिकोदय मलहर	१३६	मुग्धरस के गुण	१४५
प्रथमो लेपः	१३६	मुग्धरस का मात्रानिरूपण	१४५
द्वितीयो लेपः	१३७	मुग्धरस के आमयिक प्रयोग	१४५
भूध्रवटी	१३७	कज्जलिका का निर्माण और स्वरूप	१४५
हेमचारी प्रलेप	१३८	कज्जलिका का प्रयोगों में विधान	१४६
लिङ्गवर्तिहर लेप	१३८	कज्जलिका के गुण	१४६
मिन्दूरादि तैल	१३८	कज्जलिका के आमयिक प्रयोग	१४६
इच्छामेदी रस	१३९	रसपपैटिका का निर्माण प्रकार	१४८
		पपैटिका पाकस्य त्रैविध्यम्	१४८
		त्रिविध पाकानां स्वरूपाणि	१४८
		पपैटिका के गुण	१४८
		पपैटी की मात्रा	१४९
		रसपपैटिका के आमयिक प्रयोग	१४९

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
पर्पटिका भक्षणी समनन्तर जल पान		सत्त्वचन्द्रोदयः	१६०
निषेध	१५०	पिधानयंत्र विधिः	१६०
पर्पटिकायाः पश्यानि	१५०	अन्तर्ध्रुव चन्द्रोदय विधिः	१६१
रक्तपर्पटिकायाः अपश्यानि	१५१	सहस्रधा चन्द्रोदय विधिः	१६१
रस सिन्दूरस्य निर्माणप्रकारः	१५१	पारदमारण की विधियाँ	१६२
अर्द्ध गन्धक जीर्ण रससिन्दूरम्	१५१	अधस्तल पारदभस्म	१६३
समानगन्धकजीर्ण रससिन्दूरम्	१५२	उर्ध्वस्तलपारद भस्मे	१६४
द्विगुणगन्धकजीर्ण रससिन्दूरम्	१५२	अभ्रयोगेन रसभस्म	१६५
त्रिगुण " "	१५२	कृष्ण भस्म	१६५
षड् गुण " "	१५२	सुवर्णयोगेन रसभस्म	१६३
रससिन्दूरस्य गुणाः	१५३	सर्पविषयोगेन पारदभस्म	१६६
रससिन्दूर की मात्रा	१५३	कान्तलौहपुटे पारदभस्म	१६६
मकरध्वज का निर्माण प्रकार	१५४	मूलीविषप्रयोगेण पारदभस्म	१६७
श्रीसिद्धमकरध्वजः	१५४	गंधामृतसः	१६७
अथास्य गुणाः	१५५	चिरञ्जीवन कल्पः	१६८
षड् गुणबलिजारितरसः	१५५	योगवाहो रसः	१६८
वृहच्चन्द्रोदय मकरध्वज	१५५	हेमसुन्दर रसः	१६८
स्वर्ण सिन्दूरम् (१)	१५६	अमृतार्णव रसः	१६९
स्वर्ण सिन्दूरम् (२) (मकरध्वजी)	१५६	चतुर्मुख रसः	१६९
मकरध्वजोरसः (२)	१५७	त्रिनेत्र रसः	१७०
सिद्धसूतः	१५८	दरदेश रसः	१७०
तालचन्द्रोदयः	१५८	हिङ्गुलेश्वरः	१७०
शिलाचन्द्रोदयः	१५९	तरुणज्वरारिः	१७१
मल्लचन्द्रोदयः	१५९	वज्रकपाट रसः	१७१
विषचन्द्रोदयः	१५९	पञ्चामृत पर्पटी	१७१
		महारसगन्धकम्	१७२
		पांडुसूदन रसः	१७२

विषय-सूची

९

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
रसेन्द्र गुडिका	१७२	पूर्णचन्द्रः	१८५
राजमृगांक रसः	१७३	कामाग्नि संदोषनः	१८५
चिन्तामणि रसः	१७३	मकरध्वज रसः	१८६
विसृचिकाविध्वंस रसः	१७४	कामधेनुरसः	१८६
स्वर्णसिन्दूर रसः	१७४	कन्दर्परसः	१८६
रसराजेन्द्र रसः	१७५	हेमनाथरसः	१८७
शक्रबलभोरसः	१७५	वसन्तकुसुमाकरः	१८७
कामिनोविद्रावणोरसः	१७६	इन्द्रवटी	१८८
बालरोगान्तकरसः	१७६	तारकेश्वर रसः	१८८
गर्भचिन्तामणि रसः	१७७	रसशेखरः	१८८
प्रदरान्तकोरसः	१७७	रसगुग्गुलुः	१८९
अमृतानुरवटी	१७७	पापाणभित्रः	१९०
मुखरोगहरो रसः	१७८	तारकेश्वरः	१९०
महाकल्याणवटी	१७८	आमवातेश्वरो रसः	१९१
चन्द्रभैरवः	१७८	विजय भैरव तैलम्	१९२
भूतानुरोरसः	१७९	चिन्तामणिचतुर्मुखः	१९२
शिरःशलाद्रिवज्र रसः	१७९	योगेन्द्ररसः	१९२
गुंजामद्रोरसः	१८०	रसराज रसः	१९३
चित्रविभांडको रसः	१८०	शंकर वटी	१९४
रसगुडिका	१८१	हृदयार्णवरसः	१९४
नित्योदित रसः	१८१	शवासचिन्तामणिः	१९४
अमृतानुर लौहम्	१८१	शवास भैरवरसः	१९५
श्वेतारिः	१८२	शृङ्गाराभ्रम्	१९५
वातरक्तान्तकोरसः	१८३	बृहद्रसेन्द्र गुडिका	१९६
रसाभ्रगुग्गुलुः	१८३	चन्द्रामृत रसः	१९६
श्रीपदगजकेसरी	१८४	चूडामणि रसः	१९७
भक्तोत्तरीयम्	१८४	महामृगाङ्गोरसः	१९८
पुष्पधन्वा	१८५	राजमृगाङ्गोरसः	१९९

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
मृगाङ्गोरसः	१६६	रसकेसरो	२१८
रसराजेन्द्रः	२००	कन्याद रसः	२१८
महोदधिरसः	२००	महाशंखवटी	२१६
नारस्रव रसः	२००	अग्निकुमारो रसः	२१६
पञ्चानन रसः	२०१	अजीर्णकटको रसः	२१६
बृहद्भुलमकालानलो रसः	२०१	श्रीरामबाण रसः	२२०
चतुःसम लौहम्	२०२	सुधानिधि रसः	२२०
श्लगजकेसरी	२०२	वासासूतः	२२०
रसमंडूरम्	२०३	रक्तपित्तकुलकुठारो रसः	२२०
अम्लपित्तान्तक लौह	२०३	सूतशेखररसः	२२१
पञ्चानन गुटिका	२०३	पारदादि चूर्णम्	२२१
क्षुधावती गुटिका	२०४	वर्धन्तकरसः	२२२
कृमिघातिनी गुटिका	२०५	रसादि गुटिका	२२२
कृमिकाष्ठानलो रसः	२०५	रसादि चूर्णम्	२२३
कर्पूर रसः	२०५	त्रिपुरसुन्दरोरसः	२२३
आनन्दभैरवोरसः	२०६	सुरेन्द्राभ्र वटी	२२३
जातीफल रसः	२०६	जलोदरारिरसः	२२४
हिरण्यगर्भपोट्टलो रसः	२०७	वैद्यनाथ वटी (दधिवटी)	२२४
विजयपर्पटी १	२०७	शोधकालानलोरसः	२२५
विजयपर्पटी २	२०८	दुग्ध वटी	२२५
पंचाभृतपर्पटी	२१०	आनन्दोदयो रसः	२२६
स्वर्णपर्पटी	२११	चन्द्रसूर्यात्मको रसः	२२६
लौहपर्पटी	२११	बृहल्लोकनाथो रसः	२२७
रसपर्पटी	२१२	प्लीहाहिर रसः	२२७
बृहद्भ्रमणिकपाट	२१५	कनकसुन्दरोरसः	२२८
बृहन्नृपवल्लभः	२१५	सिद्धप्राणेश्वरोरसः	२२८
पीयूषवल्ली रसः	२१६	ज्वरहरी रसकज्जली	२२९
बृहद्भ्रमणिकपाटोरसः	२१७	लक्ष्मीविलासो रसः (नारदीयः)	२२९

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
श्लेष्मशैलेन्द्ररसः	२३१	आप्रताप लंकेश्वरो रसः	२४४
वसन्तमालतोरसः	२३२	अर्कमूर्तिरसः	२४६
नासाज्वरे आह्वारि रसः	२३२	त्रिदोषदावानलकालमेघोरसः	२४६
कल्पतरु रसः	२३२	बडवानलोरसः	२४७
ज्वरशूलहरा रसः	२३३	शैलोक्यचिन्तामणिः	२४७
पडाननोरसः	२३४	रसेश्वरः	२४८
विद्यावल्लभो रसः	२३४	कालाग्निभैरवा रसः	२४८
ज्वरकुंजरपारोन्द्र रसः	२३४	श्री सन्निपातमृत्युञ्जयोरसः	२४९
आजयमंगलारसः	२३५	प्राणेश्वरो रसः	२५०
ज्वराशानिरसः	२३६	सन्निपातभैरवोरसः	२५१
स्वच्छन्दभैरवा रसः	२३७	सिद्धफला पानीय वटिका	२५२
ज्वरकालकंठु रसः	२३७	गृह्य सन्निपातभैरवो रसः	२५३
विश्वेश्वरो रसः	२३७	मृतात्थापनोरसः	२५४
चातुर्थिकारि रसः	२३८	आनन्दभैरवो वटो	२५४
व्याहिकारि रसः	२३८	प्रह्लाद रसः	२५५
वातश्लेष्मान्तकोरसः	२३८	आंबेतालो रसः	२५५
ज्वरारिरसः	२३९	सौभाग्यवटी	२५५
त्रिलोचन वटो	२३९	कुलवधुः	२५६
बृहज्ज्वराङ्कुरोरसः	२४०	माहाभयोरसः	२५६
स्वल्पज्वराङ्कुरोरसः	२४०	अचिन्त्यशक्ति रसः	२५६
शीतभञ्जीरसः	२४०	उदकमञ्जीरसः	२५७
पर्याखण्डेश्वरोरसः	२४१	अण्डेश्वरो रसः	२५७
औरसर्राजः	२४१	रत्नगिरि रसः	२५८
मृत्संजीवनोरसः	२४१	वैद्यनाथवटी	२५८
अर्द्धनारीश्वरो रसः	२४२	प्रचन्दरसः	२५९
श्रीकालानलरसः	२४३	नवज्वराङ्कुरोरसः	२५९
कस्तूरीभैरवोरसः	२४३	श्रीमृत्युञ्जयोरसः	२५९
पृथ्वीकस्तूरीभैरवोरसः	२४३	तक्षकज्वरारि रसः	२६२

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
शीतभञ्जोरसः	२६१	रसार्षेव पर सर पो. सो. राय को	
हिङ्गुलेखरो रसः	२६१	सम्मति	२६३
ज्वरनागमयूर चूर्णम्	२६१	रसक्रामण	२६५

॥ इति रसविज्ञानीयः प्रथमोऽध्यायः ॥

गन्धक और गन्धकीय खनिज

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
गन्धक	२८१	तालाकृति	३१३
गोदन्ती से गंधक की उत्पत्ति	२८६	पिंडाकृति	३१४
चित्र सं० १	२८१	कौरोयाकृति	३१५
गंधक का व्यापारिक उपयोग	२८३	बलिबत्ता (नम्यगंधक) निर्माण	३१८
गंधक युक्त खनिजों से गंधक का पृथक्करण	२८४	गंधक और गंधकीय खनिज प्राप्ति के स्थान	३१८
चित्र सं० २	२८५	गन्धकाम्ल (Sulphuric acid)	३२७
गंधक की विभिन्नरूपता	२८७	द्रुति विचार	३२८
अष्ट फलकीय गन्धक	२८८	निर्णीत यौगिक	३३०
त्रिपार्श्विक गन्धक	२८८	गन्धकाम्ल का शारीरिक तथा रोग नाशक प्रभाव	३३१
नम्यगन्धक (Plastic sulphur)	२८९	वाह्यांग प्रभाव	३३१
श्वेत गन्धक रवे सहित	३००	अन्तरंग प्रभाव	३३१
पीत गन्धक रवे सहित	३००	गंधकाम्ल, लवणाम्ल, शोरकाम्ल और फास्फोरिकाम्ल का साधारण शारीरिक प्रभाव	३३२
कोलाइडल सल्फर	३००	बहिरंग	३३२
गन्धकोत्पत्तिविषयक प्राच्यमत	३०६	अन्तरंग	३३२
गोदन्ती	३१३		
कणरूप	३१३		

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
रक्तपर प्रभाव	३३३	गन्धक के यौगिक	३४८
वृक्कपर प्रभाव	३३३	गंधक द्रुति	३४६
तात्कालिक विष प्रभाव	३३३	केवल गंधक का प्रयोग	३५०
प्रतिविष	३३४	कुष्ठ पर गंधक का प्रयोग	३५०
चिरकालिक विष प्रभाव	३३४	गंधक का पामा और कंडू पर प्रयोग	३५०
गन्धक प्रयोग	३३४	निषिद्ध द्रव्य	३५२
स्वभाव	३३५	गंधक के भेषज कल्प	३५२
अशुद्धि	३३५	गंधक द्रुति (गंधकाम्ल)	३५७
विलयन शीलता	३३५	गंधक पर्पटी रसः	३५६
परीक्षण	३३५	गंधक पिष्टि रसः	३६०
प्रभाव	३३५	गंधक रसायन	३६०
मात्रा	३३५	गंधक लौह	३६३
तलछटी कृत गन्धक	३३७	गंधक बटी	३६३
निर्माण विधि	३३८	गंधकाजाण वद्धोरसः (गंधवद्धः)	३६४
स्वभाव	३३८	गंधकादि ज्वर्यम्	३६४
अशुद्धि	३३८	गंधकादिपोटली रसः	३६४
परीक्षण	३३८	गंधक सेवन की विधि	३६६
गंधक का शरीरिक अवयवों पर प्रभाव	३३९	गन्धर्व रसः	३६७
वाष्पांग	३३९	गंधकाअम्ल	३६८
अन्तरंग	३४०	गंधामृतोरसः	३६८
गंधक का विशेष प्रभाव	३४२	गन्धाश्मगर्भोरसः	३६९
गंधक का रोग नाराक प्रभाव	३४३	गरनारानोरसः	३६९
वाष्पांग	३४३		
अन्तरंग	३४५	गोदन्ती (Gypsum)	
रस शास्त्र में गन्धक	३४६	गोदन्ती (Gypsum)	३७०
गंधक विष है	३४८	आधुनिक व्यवहारोपयोगी प्रयोग	३७४
औषधि प्रभाव	३४८	गोदन्ती विषयक प्राच्यमत	३७५
		गोदन्ती	३७६

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
बुगदादी	३७६	गोदन्ती का शोधन	३७६
गोदन्ती के नाम	३७६	गोदन्ती का मारण	३७७
गोदन्ती का स्वरूप	३७६	गोदन्ती के गुण	३७७
		गोदन्ती की मात्रा	३७७

॥ इति गन्धक विज्ञानीयः द्वितीयोऽध्यायः ॥

Introduction

BY

Mahamahopadhyaya, Kaviraj,

Gananath Sen,

Vidyasagar, Saraswati, M.A., L.M.S.

I have been asked to write an introduction to this work. I do this with pleasure for two reasons : first, because the author is a beloved pupil of mine who studied Ayurveda with me for several years and is specially fitted to accomplish his self-imposed task under the ægis of the Hindu University and its vast laboratories ; secondly, because the work is a product of diligent study and research and covers new fields hitherto unexplored from the view-point of physicians and scientists.

The "*Rasa-Shastra*" which is an addition to the hoary Ayurveda made about a thousand years ago is a great subject by itself. It comprises not only Mineralogy but also the Materia Medica and Therapeutics of the minerals and their compounds, specially of mercury and sulphur and the other common metals and minerals occurring in Nature. In the ancient medical literature of India represented by *Charak*, *Susruta* and *Vagbhata*, there are sparse references to the uses of the metals and other minerals, but the place assigned to them is certainly secondary to that of the herbs. For

instance, *Susruta* refers to certain minerals in his first chapter, only to complete his comprehensive list of therapeutic measures, but he uses finely-powdered gold for the new born baby (*vide* *Susruta*, *Sharirasthan*, ch. X) and the oxides of iron in heavy doses mainly for the rejuvenation of the old and decrepit. Some other minerals like *Shilajatu* (a bituminous substance) are also used by him for certain diseases, and the various uses of mercury seem to be unknown to him though he uses them occasionally for external application. Similarly, *Charak* names several minerals in the first chapter of his work and recommends the use of gold and iron only occasionally. There is only one solitary instance in *Charak* where mercury is recommended for internal use not only for leprosy but also for all other diseases (*vide* *Charak*, *Chikitsa*, Ch.) but the origin of the passage seems doubtful. Even *Vagbhata*, the great collector of ancient *Ayurvedic Samhitas* who flourished probably in the 5th century A.D., does not recommend the extensive use of the metals. (*Vagbhata* II, Author of *Rasaratna-Samucchaya* is most probably a different author. *Vide infra*.)

Writers like *Chakrapani* whose time falls undoubtedly in the 11th or 12th century A.D. follow the practice of the ancients mainly but occasionally recommend the use of minerals like the black sulphide of mercury (*Rasaparpati*), copper and Mica, Iron and *Shilajatu*. It is clear therefore that the use of minerals was not much in vogue with the

Ayurvedic Physicians as extensively as now even 1,000 years ago but was beginning to be introduced in the time of Chakrapani. This is further corroborated by the fact that in many parts in India such as the Punjab, the Deccan, Cochin, Travancore, Mysore and the Tamil and Telugu speaking countries, the regular Ayurvedic physicians do not even to this day make much use of the minerals. In the Punjab, the '*Kushtas*' (or *Bhasmas*) which are usually the oxides and sulphides of metals are dreaded of by many patients. In South India, a separate class of physicians known as *Siddha Vaidyas*—who are staunch followers of *Rasashastra*, are in a state of perpetual war with the Ayurvedic physicians, claiming for themselves a very ancient Tamil civilization and depending mainly on Tamil works as their *Vade mecum*.

The followers of "*Rasa-Shastrā*" all over India, however, claim greater antiquity for their literature and trace their origin from Siva, Lankesha (the King of Lanka—Ravana) and other Yogis of pre-historic period. Their number is legion and a list of some of the great sages of this system will be found in "*Rasa-Ratna-Samuchchaya*." Many of their Sanskrit works have been now published but many more are lost or forgotten. Some old Tamil works on the subject have also been published. The main object of this School of Physicians was two-fold : *Deha-Siddhi* (देह सिद्धि) and *Loha-Siddhi* (लोह सिद्धि). By these two expressions they meant the fortification

of the body against age and disease and the preparation of gold from the base metals. The acquisition of immunity against all the ills the human flesh is heir to and rejuvenation in old age were the aims and claims of those who sought the first object. The seekers of the second object built up a science or art known as Alchemy or Dhatu Vidya (धातु विद्या). Its followers abounded not only in India but also in Europe in the mediaeval ages. The secrets of Alchemy used to be jealously guarded for obvious reasons and are now lost, though from what I have heard from two independent and reliable eye-witnesses (both of whom were doctors of medicine with a high scientific training), I venture to think that Alchemy still survives amongst some mystics of India. But the secrets of mineral therapeutics have been handed down to us by writers of the last four or five centuries, who have incorporated them not only in encyclopædic works like "Yoga-Ratnakar", "Bhava-Prakash", "Banga Sena" etc., but also in short compendiums like "Rasendra-Sara Sangraha", "Rasa-Prakash Sudhakara", "Rasa-Sara" etc. These and other ancient works of Rasa-Shastra like "Rasa-Hridaya-Tantra" and "Rasa-Ratna-Samuchchaya" have also been now published along with some of the works mentioned above, thanks to the devoted labours of my learned friend Ayurveda-Martanda Pandit Jadavji Tricumji Acharya of Bombay. All these works are landmarks in the history of the subject. But the work, "Rasa-Ratna-Samuchchaya" published by Poona Anandasarna and

others deserve special notice as it bears the name of Vagbhata, the famous author of the fifth century A.D., whether the ancient Vagbhata, the author of "Ashtanga-Sangraha" and "Ashtanga-Hridaya" is the same person as the author of "Rasa-Ratna Samuchchaya" is still very doubtful. Considering all the pros and cons that have been advanced by learned scholars regarding this matter, I differ from the view that the two Vagbhatas are identical. I have given some of my reasons in the Sanskrit introduction of my work "Pratyaksha-Shariram". But I must not digress on this point here.

Granting therefore that "Rasa-Shastra" or works of these "Rasa-Vaidyas" had a very ancient origin, we can safely assert that until five-hundred years ago, it remained a separate branch of the Eastern healing art and its merging into modern Ayurveda took place at a later period, probably during the last three or four centuries. This process worked slowly and steadily and in various degrees in the different parts of India. In Bengal particularly, the theories and practices of "Rasa-Shastra" became very closely inter-woven with Ayurvedic therapeutics and the production of such works as "Bhaishajya-Ratnavali", "Prayogamrita", etc., was the direct result of this coalescence.

So much for the historical and theoretical side of the question. On the practical side there is no gainsaying the fact that the use of the metals

in both Eastern and Western medicines has proved successful. There is a good deal of difference, however, as to the compounds used in Ayurvedic practice and those used in western medicine. Whilst some of the compounds are known to both, many of the compounds used in Ayurvedic practice are unknown to the Western physician. He can judge their therapeutic value only on the chemist's certificate, which is not of much consequence in therapeutics. Gold, for instance, is much used in current Ayurvedic practice in a fine state of sub-division which makes it easily assimilable. Its effect on the nervous system and on some infectious diseases (e.g. tuberculosis, toximeas etc.) is remarkable. Gold-bromide and Gold-chloride and a new compound known as Sarochrysin are being now tried in the west but the therapeutic knowledge gained on the subject so far is quite meagre. Similarly, the therapeutic value of the various preparations of Mercury used by the Ayurvedic physicians, particularly "*Makardhwaja*" (a Sulphide), is little understood in the west, even though some followers of western system have begun to use it extensively in their practice. Some preparations like the sub-chloride and perchloride and the oxides and grey powder are common to both systems but are sparingly used by the Ayurvedic physicians. The craze of calomel once current in western practice vanished long ago after many mishaps. It may be noted in this connection that the Ayurvedist uses the mercuric sulphides in various

forms and very successfully, whilst they are seldom used in western medicine. So also with copper. The sulphide of copper (not sulphate of copper) is a valuable medicinal agent in certain spasmodic conditions (e.g. Asthma), but its use is unknown in the west. Oxides of Iron, especially the magnetic ferric oxide, are extensively employed in the East. A compound of mica, known as 'Abhra-Bhasma' (अभ्र भस्म) is much in demand as a valuable therapeutic agent in the East. It is given with much success in diseases of the respiratory and nervous system, but its use is absolutely unknown in the West.

I may therefore assert without fear of contradiction that the present work would be of much use to the followers of both the systems. It is bound to unravel the mysteries of many ancient theories (e.g. on the origin of mercury and sulphur) which the author has reviewed in the light of mineralogy with remarkable insight and success. It will also carry to the Ayurvedic physicians and Siddha Vaidyas valuable information culled from the modern sciences of mineralogy and chemistry and so ably elaborated by the learned author. To the physicians following the western system, it will open a new vista of knowledge. I honestly believe that many of the therapeutic agents employed by the Ayurvedist's world yield valuable results if they are given sufficient trial. They would certainly make for better and wider relief to suffering humanity.

With these introductory expressions I welcome this book as a unique work in Ayurvedic literature. Being written in Hindi, it will be intelligible to all Indian physicians (whatever their creed) and also to the Hindi knowing scientists and mineralogists working in India. Above all, I much appreciate the suggestive nature of the work which is likely to stimulate scientific research in the fields of chemistry and medicine.

GANANATH SEN.

प्रस्तावना

(महामहोपाध्याय, कविराज,
श्री गणनाथ सेन विद्यासागर, सरस्वती, एम. ए., एल., एम.,
एण्ड एस. की अंग्रेजी प्रस्तावना का हिन्दी भावानुवाद)

इस प्रस्तुत ग्रन्थ की प्रस्तावना लिखने के लिए मुझ से कहा गया है । दो कारणों से मैं इस भार को सहर्ष स्वीकार करता हूँ । प्रथम, इस ग्रन्थ के लेखक मेरे अतिप्रिय भन्तेवासी हैं, जिन्होंने वर्षों तक मेरे निकट आयुर्वेद शास्त्र का अध्ययन किया है और काशी-हिन्दू-विश्वविद्यालय में रहकर उसकी सुविशाल प्रयोग-शालाओं (Laboratories) का लाभ उठाकर अपने निर्धारित कार्य करने में विशेष योग्यता प्राप्त की है । द्वितीय कारण यह है कि यह ग्रन्थ निरन्तर अध्ययन और अन्वेषण का फल है, एवं इसमें ऐसे नवीन विषयों का समावेश है जिनकी गवेषणा अब तक चिकित्सक और वैज्ञानिकों की दृष्टि से नहीं हुई है ।

संभवतः एक सहस्र वर्ष हुए होंगे कि अति प्राचीन आयुर्वेद शास्त्र में रसशास्त्र का प्रवेश हुआ था । यह शास्त्र स्वयम् एक बृहत् विषय है । इसमें केवल खनिज-विज्ञान ही नहीं, वरन् प्रकृति में प्राप्य पार्थिव वस्तुओं के, विशेषतः पारद, गन्धक और अन्यान्य साधारण धातु और खनिजों के, और उनके यौगिक पदार्थों के स्वस्थ और रुग्ण शरीर पर प्रभाव भी मिलते हैं ।

भारत का प्राचीन वैद्यक शास्त्र जो इस समय चरक, सुश्रुत, वाग्भट द्वारा प्रदर्शित है, उसमें लौहादिक धातु और गौरीपाषाणादि खनिजों का उल्लेख अवश्य है, किन्तु उनका स्थान वनस्पतियों की अपेक्षा अत्यन्त गौण है । उदाहरण के लिए देख सकते हैं कि सुश्रुताचार्य ने मेघज-विज्ञान सम्बन्धी बृहत् सूची की पूर्ति के लिए ही अपने ग्रन्थ के प्रथम अध्याय में कुछ खनिजों का उल्लेख किया है और नवजात शिशु के लिये सुवर्ण का सूक्ष्मचूर्ण

(सु० शा० अ० १०) और जरा व्याधि निपीड़ितों के लिए बृहत् मात्रा में लौह-भस्म का प्रयोग रसायनार्थ किया है। इसी प्रकार शिलाजतु व कुछ अन्य खनिजों का प्रयोग भी रोग विशेष की चिकित्सा में प्रदर्शित है। सुश्रुत में जो पारद का उल्लेख है वह सिर्फ दूसरी दवाओं के साथ वाह्य प्रयोग के लिए है। चरक के प्रथम अध्याय में भी अनेक खनिजों का इसी प्रकार निर्देश है, एवं स्वर्ण और लौह के गुणों का माहात्म्य कहीं कहीं लिखा मिलता है। किन्तु चरक ने सिर्फ एक ही जगह, जहाँ पर केवल कुष्ठ-नाशन के लिए ही नहीं, बल्कि सर्व रोग-नाशन-कर्तृक इसका उपयोग किया है। (चरक चिकित्सा) मुझे यह अवतरण संदिग्ध प्रतीत होता है।

वाग्भटाचार्य जिनका समय ईसा की ५वीं शताब्दी के लगभग है, एवं जिन्होंने प्राचीन आयुर्वेदीय संहिताओं से संकलन करके अष्टाङ्गसंग्रह और अष्टाङ्ग-हृदय ग्रन्थों का निर्माण किया है, उन्होंने भी अपने ग्रन्थों में खनिज-भेषजों का अधिक उपयोग प्रदर्शित नहीं किया है। हमारा सिद्धान्त है कि रसरत्नसमुच्चय के संकलयिता वाग्भट अन्य व्यक्ति हैं। (विशद विवेचना प्रत्यक्ष शास्त्र के संस्कृत उपोद्घात में देखिये)

ईसा की ११वीं या १२वीं शताब्दी में होने वाले आचार्य चक्रपाणि भी प्रायः प्राचीन आयुर्वेद तन्त्र निर्माताओं के अनुयायी थे। उन्होंने कहीं कहीं रसपैटी, ताम्र, अभ्र, लौह और शिलाजतु इन खनिज पदार्थों के व्यवहार के लिए परामर्श दिया है। इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि खनिजों का प्रयोग जिस प्रकार विस्तृत रूप में आधुनिक समय में होता है वैसा १००० वर्ष पूर्व नहीं होता था। हाँ, चक्रपाणि के समय में उनका थोड़ा-थोड़ा व्यवहार होने लगा था। यह निश्चय इससे और भी पुष्ट होता है कि अब तक पंजाब, दक्षिण कोचीन, टावन्कोर, मैसूर और तामिल, तैलंग आदि भाषा-भाषी प्रदेशों में भी नियमित रूप से खनिज औषधियों का व्यवहार आयुर्वेदिक चिकित्सकों में अधिक प्रसिद्ध नहीं है। पंजाब में

तो इस समय भी कुरतों (धातुभस्मों, जो कि धातुओं के ओक्साइड्स एण्ड सल्फाइड्स हैं) के सेवन से कुछेक रोगी बहुत ही भय करते हैं। दक्षिण भारत में सिद्ध-वैद्यों के नाम से रसवैद्यों का एक वृहत् सम्प्रदाय है, वे केवल रस शास्त्र के अनुयायी हैं और साधारण चिकित्सकों से प्रायः अपनी प्राचीन तामिल सभ्यता की उच्चता को लेकर सदा विवाद करते रहते हैं एवं अपने प्रमाणों के लिए तामिल भाषा के ग्रन्थों पर निर्भर करते हैं। वे कहते हैं कि भारतवर्ष में हमारे रसशास्त्र सब से प्राचीन हैं। वे शिव, लंकेश (लंकाधिपति रावण) आदि 'प्रागैतिहासिक' युग के अन्यान्य योगियों से अपने साहित्य का उद्भव बतलाते हैं। परन्तु इन आचार्यों की नामावली 'रसरत्न समुच्चय' में कुछ प्राप्त होती है। इन महापुरुषों के संस्कृत ग्रन्थ अब प्रकाशित हुए हैं किन्तु अनेक ग्रन्थ नष्ट और विस्मृत भी हो गये हैं। इस विषय के कुछ प्राचीन तामिल ग्रन्थ भी प्रकाशित हुए हैं। इस सम्प्रदाय के अनुयायी वैद्यों के प्रधान उद्देश्य दो थे—एक "देह सिद्धि" दूसरा "लौहसिद्धि"। देह सिद्धि का अभिप्राय ऐसे रसों को प्रस्तुत करना था जिनसे शरीर जरा और व्याधियों से सुरक्षित हो और स्थाई रूप से व्याधियों से मुक्ति प्राप्त करे। लौहसिद्धि का अभिप्राय यह था कि हीन धातुओं में स्वर्ण और रौप्य प्रस्तुत किया जाय। लौहसिद्धि-अनुसन्धान-कर्तृओं का उद्देश्य कीमियागिरी व धातुविद्या थी। इसके अनेक अनुयायी केवल भारतवर्ष ही में नहीं, वरन् मध्ययुग में यूरोप में भी विद्यमान थे। कीमियागिरी की गुप्त बातें अनेक कारणों से सुरक्षित रखी जाती थीं; किन्तु अब वे प्रायः नष्ट हो गई हैं। दो विश्वसनीय प्रत्यक्ष-दर्शियों से (जिन्हें उबकोटि की वैज्ञानिक शिक्षा प्राप्त है) मैंने सुना है कि भारत के कुछ रहस्यज्ञ योगियों के पास कीमियागिरी की कला अब तक जीवित है।

रसौषधों का विज्ञान और प्रयोग विगत चार पांच शताब्दियों के जिन

ग्रन्थों से आयुर्वेद में प्रविष्ट हुआ है, उन में 'योगरत्नाकार', 'भावप्रकाश', 'बङ्गसेन', 'रसेन्द्रसारसंग्रह' आदि प्रसिद्ध हैं। 'रसप्रकाशसुधाकर', 'रससार', 'रसहृदयतन्त्र' आदि रसशास्त्र के अनेक प्राचीन ग्रन्थ अब प्रकाशित हुए हैं। इसके लिए मित्र आयुर्वेद मार्तण्ड पं० यादवजी त्रिकम्पूजी आचार्य के निरंतर परिश्रम को धन्यवाद है। इनके द्वारा बम्बई से प्रकाशित ग्रन्थावलि रसशास्त्र के इतिहास में पथप्रदर्शनी है। पूना के आनन्दाश्रम और अन्य प्रकाशकों द्वारा प्रकाशित 'रसरत्नसमुच्चय' नामक ग्रन्थ का उल्लेख भी यहाँ विशेष रूप से आवश्यक है, क्योंकि इस ग्रन्थ के लेखक का नाम ईसा के जन्म के पश्चात् १५वीं शताब्दी में होने वाले प्रसिद्ध ग्रन्थकार 'वाग्भट' है। ये वाग्भट अष्टाङ्गसंग्रह और अष्टाङ्गहृदय नामक ग्रन्थों के रचयिता प्राचीन 'वाग्भट' हैं या नहीं, यह अभी तक अनिश्चित है। मैंने इस विषय पर विद्वानों के मतान्तरों का विचार कर निश्चय किया है कि तीनों ग्रन्थों के लेखक एक ही 'वाग्भट' नहीं हैं। इस मत को स्पष्ट करने के लिए मैंने 'प्रत्यक्षशारीर' की संस्कृत प्रस्तावना में अपना पूर्ण विचार लिखा है। किन्तु यहां इस विषय पर विशेष चर्चा करना अप्रासंगिक होगा।

रसशास्त्र का पूर्ण विकास बहुत प्राचीन है, इसको मानते हुए हम निर्विवाद कूढ़ सकते हैं कि ५०० वर्ष पूर्व तक रस चिकित्सा प्राचीन आयुर्वेदीय चिकित्सा से विभिन्न विभाग था, एवं इसका प्रसार और आधुनिक आयुर्वेद में इसका समावेश और भी पीछे, संभवतः विगत तीन या चार शताब्दियों में हुआ है, किन्तु यह समावेश मन्दगति से भारत के भिन्न भिन्न प्रान्तों में भिन्न भिन्न प्रकारों से होता रहा है। परन्तु बंगाल में रसशास्त्र के सिद्धान्त और प्रयोग प्राचीन आयुर्वेदीय चिकित्सा में विशेषतः घनिष्टता के साथ सम्मिलित हो गये, जिससे "भैषज्य रत्नावली" व "प्रयोगामृत" सदृश ग्रन्थ बने।

यह तो हुआ विषय के सिद्धान्त और ऐतिहासिक दृष्टि से। क्रियात्मक दृष्टि से भी यह मानना पड़ता है कि प्राच्य और पश्चात्य दोनों पद्धतियों

में धातु औषधियों का प्रयोग लाभदायक सिद्ध हुआ है, किन्तु इन दोनों पद्धतियों के प्रयुक्त धातुओं के योगों में बहुत अन्तर है। यद्यपि कुछ योग ऐसे हैं जिनका दोनों और के चिकित्सकों को ज्ञान है, तो भी बहुत से ऐसे योग हैं जो केवल आयुर्वेद चिकित्सा ही में प्रयोग किये जाते हैं, और पाश्चात्य चिकित्सकों को अभी तक मालूम नहीं हैं। इन योगों के ज्ञान के लिए पाश्चात्य विद्वान केवल रासायनिक परीक्षा और रासायनज्ञ की सम्मति पर निर्भर करते हैं, किन्तु यह सम्मति चिकित्सा के सम्बन्ध में अधिक विश्वसनीय नहीं होती। उदाहरणार्थ वर्तमान आयुर्वेद चिकित्सा में अत्यन्त सूक्ष्म रूप से विभक्त हुआ स्वर्ण का प्रयोग किया जाता है, जिससे वह शरीर में सरलता से प्रवेश कर लेता है। नाड़ी-मंडल के रोगों पर और संक्रामक रोग राज्यक्षमा-जान्तव विष आदि पर उसका उत्तम प्रभाव पड़ता है। पाश्चात्य देशों में भी स्वर्ण के कई योग गोल्डब्रोमाइड, गोल्डक्लोराइड, नवीन योग सेरोकाइसिन आदि का आजकल प्रयोग किया जा रहा है, किन्तु अभी तक वहां पर इनके औषधि प्रभाव सम्बन्ध में जो कुछ मालूम हो सका है वह बहुत ही अल्प है। इसी भाँति पारदके बहुत से योगों का भी अभी तक पाश्चात्य चिकित्सकों को ज्ञान नहीं है। मकरध्वज इस में विशेष है, यद्यपि बहुतों ने इसका प्रयोग रोगियों पर आधिक्य से करना आरम्भ कर दिया है। पारद के कुछेक योग सबक्लोराइड, परक्लोराइड, ब्राक्साइड और त्रेपाउडर यद्यपि दोनों पद्धतियों में एक समान हैं, किन्तु आयुर्वेद चिकित्सक उसका अधिक प्रयोग नहीं करते। पाश्चात्य चिकित्सक किसी समय केलोमल का बहुत प्रयोग करते थे किन्तु अनेकों दुर्घटनाओं के पश्चात् उन्होंने उसका प्रयोग करना चिरकाल से बन्द कर दिया है। यहां यह भी लिख देना ठीक है कि आयुर्वेद में अनेक प्रकार के पारद के प्रयोग सल्फाइड के रूप में किये जाते हैं और उनसे आशातीत लाभ होता है, किन्तु पाश्चात्य चिकित्सा में ऐसे योगों का प्रायः अभाव है। यही दशा ताम्र के प्रयोग की है। प्राच्य चिकित्सक श्वास रोग में ताम्र

भस्म का विशेष रूप से प्रयोग करते हैं, किन्तु पाश्चात्य चिकित्सा में इसका उपयोग नहीं किया जाता । लोहे के आक्साइड विशेषतया मैग्नेटिक क्लैरिक आक्साइड का आयुर्वेद में बहुत प्रयोग किया जाता है, इसी प्रकार अश्वत्थ का एक योग जिसे अश्वत्थ भस्म कहते हैं बहुत लाभदायक प्रमाणित हुआ है । नाड़ी और श्वास रोग में इसका बहुत प्रयोग किया जाता है किन्तु पाश्चात्य चिकित्सक इससे बिल्कुल अनभिज्ञ हैं ।

अतएव मैं विश्वास के साथ यह कह सकता हूँ कि यह पुस्तक प्राच्य और पाश्चात्य चिकित्सकों के लिए समान रूप से लाभदायक होगी । इसमें बहुत से प्राचीन सिद्धांत पारद, गन्धक की उत्पत्ति के विषय में हैं जिनकी लेखक ने धातुविज्ञान की दृष्टि से सफलता पूर्वक समालोचना की है, वह अवश्य अनेक रहस्यों का उद्घाटन करेगी । आयुर्वेदिक और सिद्धपद्धति के अनुयायी वंशों को इस पुस्तक से आधुनिक रासायनिक और धातुविज्ञान के अनुसार विद्वान लेखक द्वारा संगृहीत बहुत से नवीन तत्त्वों का ज्ञान होगा । इसी प्रकार पाश्चात्य चिकित्सकों के लिए भी नवीन मार्ग की प्रदर्शक होगी । मुझे पूर्ण विश्वास है कि यदि आयुर्वेद में प्रयुक्त अनेक योगों का पूर्ण रूप से प्रयोग कर ज्ञान प्राप्त किया जाय तो चिकित्सा में पूर्ण सफलता प्राप्त होगी और रोग-ग्रस्त जनता का विशेष उपकार होगा ।

इस प्रस्ताविक उपोद्घात के साथ साथ इस पुस्तक का, जिसका मुझे विश्वास है कि आयुर्वेद साहित्य में विशेष महत्त्व की होगी, स्वागत करता हूँ । हिन्दी में लिखी जाने के कारण यह सब साम्प्रदाय के भारतीय चिकित्सकों और वैज्ञानिकों के लिए लाभदायक प्रमाणित होगी । सब से अधिक इस पुस्तक का अनुमोदन मैं इस लिए करता हूँ कि इस में रसायन शास्त्र और चिकित्सा शास्त्र के क्षेत्र में वैज्ञानिक अनुसंधान करने की आवश्यकता पर विशेष रूप से उत्तेजनाप्रद परामर्श दिया गया है ।



रसायनाचार्य कविराज प्रतापसिंह ।

भूमिका

प्रस्तुत पुस्तक के लेखन का प्रधान उद्देश्य केवल यह है कि, आयुर्वेदीय औषधियों में जो खनिज व्यवहार किये जाते हैं उनकी उत्पत्ति, स्थिति और प्राप्ति का पूर्ण ज्ञान वैद्य व्यवसायियों को हो। साथ ही साथ प्राचीन रस और खनिज शास्त्रों के सिद्धान्त अर्वाचीन वैज्ञानिक विचारों के साथ कितनी समता और विषमता रखते हैं, इसका तुलनात्मक विचार भी किया जावे, जिससे हमारे पूर्वाचार्यों की गहन गवेषणा एवं हमारी वर्तमानकालिक अज्ञानमूलक विचार-संकीर्णता का दृष्टिकोण परिवर्तित होकर वास्तविक ज्ञान प्राप्त करने की तरफ अभिरुचि पैदा हो।

मुझे अपने बाल्यकाल ही से यह लोक-प्रवाद सुनने का सहस्रों बार अवसर हुआ है कि जनता में किसी कारण विशेष से ऐसा विश्वास है कि धातु-भस्मों के सेवन से शरीर फूट निकलता है, इसी कारण अनेक रोगी जहाँ तक सम्भव होता है भस्मों का सेवन बचाते हैं। पूज्य गुरुवर्य श्रीगणनाथ सेनजी ने इसी ग्रन्थ के उपोद्घात में इसका उल्लेख भी किया है, एवं मुझे अपने २० वर्ष के चिकित्सा व्यवसाय में ऐसे सहस्रों रोगियों के साथ वार्तालाप करने का प्रसंग प्राप्त हुआ है। मेरे विचार में भी वर्तमान अपठित जनता का असाधु वृत्ति

वाले त्यागियों की चिकित्सा-विधि-विधान पर श्रद्धा और विश्वास देखते हुए यह धारणा किसी अंश तक सत्य प्रतीत होती है।

अब तक राज की तरफ से सम्पूर्ण भारत में वैद्यक शास्त्र के उचित पठन-पाठन का पूर्ण रूप से प्रबन्ध न होने के कारण अनेक सम्माननीय विद्वान् वैद्यों के चिकित्सा-चमत्कार के शौरव-सूर्य-प्रकाश में भी सहस्रों अज्ञानी वैद्य व्यवसायी राज्य के समुचित (वधंचार्हति राजतः—पुश्रत) शास्त्रीय नियंत्रण दोष से इधर उधर के श्रुतज्ञान के भ्रमात्मक निर्णय के अनुसार चिकित्सा में प्रवृत्त होकर “यस्य कस्य तरोर्मूलं, येन केनापि संचितम् । यस्मै कस्मै प्रदातव्यं, यद्वा तद्वा भविष्यति” का उदाहरण चरितार्थ करते हैं।

यद्यपि वनस्पतियों के उपयोग में विष-औषधियों को छोड़कर प्रयोग करने से भूल होने पर भी हानि होने की इतनी सम्भावना नहीं है, जितनी खनिज-औषधियों की अशुद्धियों से हो सकती है। प्रायः जितने खनिज हैं वे प्राकृतिक नियमानुसार पेसे सङ्गठन में मिलते हैं कि जिनका पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर शोधन न किया जावे तो अभीष्ट योग निर्माण के स्थान पर कुछ और का और यौगिक तय्यार हो जाता है। विचारार्थ “माक्षिक” ले सकते हैं। रसग्रन्थों में सुवर्ण, रौप्य, कांस्य माक्षिक और सुवर्ण, रौप्य, कांस्य विमल के नामों से इस खनिज के छः भेद किये गये हैं। वैज्ञानिक रीति से परीक्षा करने पर ये सब ठीक हैं पर बाजारों में ये मिलते ही नहीं हैं। जो मिलते हैं वे भ्रमात्मक हैं। मैंने इसका निर्णय करने के लिए देश के अनेक प्रसिद्ध औषधि

विक्रैताओं से इसके खनिज और भस्मों के नमूने मँगवाये, जिसमें एक दो को छोड़कर प्रायः सभी रौप्यविमल के नमूने व भस्म सुवर्ण माक्षिक के नाम से प्राप्त हुए। पाठक देखें कि सुवर्ण माक्षिक ताम्र का यौगिक है और रौप्यविमल लौह का यौगिक है। ताम्र के स्थान पर लौह का और लौह के स्थान पर ताम्र का प्रयोग करने से क्या व्यतिक्रम होगा ?

इसी प्रकार अज्ज्ञानों के प्रयोगों में हो रहा है। 'दार्वी क्वाथ' 'समुद्रभूत' 'रसांजन' को 'रसगर्भ रसांजनम्' के स्थान पर व्यवहार किया जा रहा है। एक वनस्पति-जन्य रसक्रिया है दूसरा खनिज पारद का यौगिक है। कहां तक लिखा जावे 'खर्पर' यशद का यौगिक है। शास्त्रकारों ने दीर्घकंठ से उद्घोषित किया है पर उसके स्थान पर मृत्तिका खर्पर का 'वसन्त मालती' जैसे प्रसिद्ध योग में अब तक प्रक्षेप किया जाता रहा है। यही दशा अभ्र, वैक्रान्त, कान्तलौह आदि प्रधान-प्रधान खनिजों की है। अनेक वैद्यसम्मेलनों के अधिवेशनों में सम्मिलित होते रहने से, एवं कराची निखिल भारतवर्षीय रसायन सम्मेलन के सभापति के नाते ध्यान पूर्वक खर्पर आदि पर अनेक वैद्य बन्धुओं के विचार सुनकर मैं इस निर्णय पर पहुँचा कि रसग्रन्थों के सिद्धांतों पर विचार एकत्र किये बिना उसका सुधार असम्भव है। विचार-विमर्ष के लिए सम्पूर्ण खनिजों पर एक निबन्ध में वैज्ञानिक विचार एकत्रित कर वैद्य समाज के सन्मुख उपस्थित किया जावे, इसी सद्विचार की पूर्ति के लिए "आयुर्वेदीय खनिज विज्ञान" का प्रथम खण्ड "रस-गन्धात्मक" आपके सामने उपस्थित किया जा रहा है।

अवशिष्ट खण्डों में शेष खनिज और उनके निर्माण सम्भार का वर्णन रहेगा। आशा है विश्व पाठक इस क्षुद्र भेंट को अपनी उदारता से अपनाकर मेरे श्रम को सफल करेंगे।

इस पुस्तक के सङ्कलन में समय समय पर उपदेश परामर्श और सहायता करनेवाले गुरुवर्य महामहोपाध्याय कविराज श्रीगणनाथ सेन विद्यासागर सरस्वती एम० ए०, एल० एम० एन्ड एस०, तथा पंडित-प्रकाण्ड आयुर्वेद—मार्तण्ड पं० यादवजी श्रीकमजी आचार्य, सम्पादक आयुर्वेदीय ग्रन्थमाला बम्बई, 'रसयोग सागर' जैसे वृहत् ग्रन्थ के सङ्कलयिता पंडितराज श्रीहरिप्रपन्नजी बम्बई, रस निर्माण में नवीन विचारों के प्रवर्तक लाहौर के प्रसिद्ध कविराज श्रीनरेन्द्रनाथजी मित्र आदि अनेक ग्रन्थ प्रकाशक और रचयिता महानुभावों का मैं हृदय से कृतज्ञ हूँ कि जिनकी कृतियों के परिशीलन से मेरे चित्त में नवीन विचारों का सञ्चार हुआ एवं उनके अवतरणों से ग्रन्थ का कलेवर सुशोभित है।

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय जैसी केन्द्रीय संस्था के प्रतिष्ठान्त देश के प्राण पूज्यपाद पं० मदनमोहन मालवीयजी महाराज तथा प्रो-वाइस चान्सलर वेदान्त-वारिधि श्रीआनन्द शङ्कर बाबूभाई ध्रुव एम० ए०, एल० एल० बी०, का अत्यन्त आभारी हूँ जिनकी आयुर्वेद-हितचिन्तना से "आयुर्वेद फेकल्टी" कायम होकर आयुर्वेद का नव्य पाठ्यक्रम सुचारुरूप से प्रवृत्त हो रहा है एवं उसी की सेवा में रत रहकर मुझे अपनी अभीष्ट-सिद्धि का सुअवसर प्राप्त हुआ है। भारतीय विश्वविद्यालयों के लिए अनुकरणीय इस आदर्श विद्या-मन्दिर के सब श्रेणी के विशिष्ट विद्वानों ने मेरा किसी

न किसी रूप में उपकार किया है। विशेषकर निम्न लिखित सहृदय सहयोगियों ने अपना बहुमूल्य समय व्ययकर प्रूफ-संशोधन से लगाकर पुस्तक, खनिजादि के संग्रह में व रसायनिकों के विश्लेषण में मुझ जैसे अल्पज्ञ को सर्वभाव से साहाय्य प्रदान कर ऐसे भव्य-भाव-भूषित ग्रन्थ के लेखन के दुःसाहस में उत्साहित किया है, इनका मैं हार्दिक उपकार मानता हूँ।

श्री एन० पी० गांधी एम० ए०, बी० एस-सी०, ए० आर० एस० एम० आदि, प्रोफेसर माइनिंग एन्ड मेटेलोजी।

श्रीकृष्णकुमार माथुर, बी० एस-सी० आनर्स (लण्डन), ए० आर० एस० एम०, प्रोफेसर जियोलोजी।

श्रीफूलदेव सहाय वर्मा, एम० एस-सी०, ए० आई० आई० एस० सी०, प्रोफेसर केमिस्ट्री।

श्री डी० ए० कुलकर्णी एम० एस-सी० लेक्चरर-इन-केमिस्ट्री।

श्री एस० बी० पुन्ताम्बेकर एम० ए० (आक्सन) बार-एट-ला, प्रोफेसर हिस्ट्री एन्ड पोलिटिक्स।

श्रीअनन्त सदाशिव आलटेकर, एम० ए०, एल० एल० बी० मणिन्द्र नन्दि प्रोफेसर आफ़ पेन्सिलयन्ट इण्डियन हिस्ट्री एन्ड कल्चर।

डा० एम० एस० वर्मा, बी० एस-सी०, एम० बी० बी० एस० प्रोफेसर एनाटमी, आयुर्वेद कालेज।

व्याकरणाचार्य पं० कालीप्रसाद जी, प्रोफेसर व्याकरण, ओरियन्टल कालेज।

आयुर्वेदशास्त्राचार्य पं० राजेश्वरजी, हाउस फिजिशियन, सर सुन्दरलाल आयुर्वेद हास्पिटल।

आयुर्वेदाचार्य पं० मोहनलालजी सुपरिटेन्डेन्ट श्रीमङ्गला-
प्रसाद क्षयरोग स्वास्थ्य शाला, सारनाथ, बनारस ।

अन्त में मेरे तुलनात्मक वैज्ञानिक विचारों को सुनकर
उत्साहित करनेवाले स्वनामधन्य देशभक्त प्राच्य-पाश्चात्य-
वेदान्तबागीश काशी के सुप्रसिद्ध रईस डाक्टर (बाबू) भगवान
दासजी एम० ए० डी० लिट्० का मैं अत्यन्त आभारी हूँ
जिन्होंने पुस्तक की पांडुलिपि देखकर और उसके भाषा-भाव
की उचित मीमांसा कर पुस्तक को शीघ्र प्रकाशित करने के लिए
प्रोत्साहित किया । उन्हीं के सद्परामर्श से पुस्तक में प्राचीन
योग देकर किलनीकल स्टडी के लिए विशेष उपयुक्त बनाने का
प्रयत्न किया गया है । जितने योग इस निबन्ध में लिखे गये हैं वे
प्रायः सब लेखक के अनुभूत और भारत में सर्वत्र विशिष्ट
वैद्यों के यहां प्रतिदिन व्यवहृत होने वाले हैं । उचित रीति से
इनका निर्माण कर व्यवहार करने से चिकित्सकों को बड़ी
सरलता होगी एवं हास्पिटल में उपयोग कर इनका अभ्ययन
करने से औषधि विज्ञान में उन्नति होने की सम्भावना है ।
विज्ञेषु किमधिकम् ।

इस ग्रन्थ में प्रमाद या दृष्टिदोष के कारण जो त्रुटियाँ
रह गई हों उन्हें विश्व पाठक सुधार कर सूचित करने की कृपा
करें, जिससे द्वितीय संस्करण में संस्कार किया जा सके ।

भूमिका समाप्त करने के पूर्व यह प्रकाशित करना मेरा कर्त्तव्य
है कि कानपुर के प्रकाश पुस्तकालय के संचालक और सुप्रसिद्ध
राष्ट्रीय पत्र 'प्रताप' के संस्थापक और मैनेजिंगट्रस्टी मित्रवर्य
भिषग्नर पं० शिवनारायण जी मिश्र महोदय ने इस पुस्तक का-

सर्वाङ्ग सुन्दर, शुद्ध और उपादेय बनाने में निरंतर श्रम किया है, उनके साहाय्य और सहयोग के बिना वैज्ञानिक पाठकों के कर-कमलों में यह ग्रंथ कदापि इस मनोहर रूप में नहीं पहुँच सकता था। मिश्र जी ने केवल धन ही व्यय नहीं किया है, किन्तु अपना अमूल्य समय भी संशोधनादि में देकर पुस्तक का कलेवर संस्कृत किया है, जिसके लिए मैं उन्हें हार्दिक धन्यवाद अर्पण करता हूँ और उनका चिर-आभारी हूँ।

ॐ

प्रताप प्रासाद, काशी।

बैसाख १९८८ वि०

प्रतापसिंह

Opinions.

My friend, Kaviraj Pratap Sinha, Rasayanacharya, Superintendent, Ayurvedic Pharmacy, Benares Hindu University, through his superb effort, "The Ayurvediya Khanija Vigyana," has succeeded in giving a rude shock to the incredulity and lack of esteem for the high development of the Hindu Rasa-Shastra, displayed by a certain section that failed to reach the original texts due to its ignorance of the proper medium-Sanskrit.

The work displays a high degree of erudite comparative study, and its importance and utility for the Ayurvedists is indeed great as the Kaviraj has distinctly and precisely described the tracts where the chemicals mentioned in our Shastras can be found even at the present day. I think no modern vaidya can afford to miss a reading of the book.

(Sd.) RAM PRASAD,

Prasad Bhawan :
Lahore, the 21st Oct, 1930.

Vaidya Ratna,
Raj Vaidya Patiala,

President, All India Ayurveda Mahamandal

I have looked into some printed forms of Ayurvediya Khanija Vigayan by Kaviraj Pratap Sinha of the Hindu University. It appears to be a good attempt at throwing light on Hindu chemistry and Mineral Medicines. A work like the present one attempted by a scholar learned in the Hindu System and acquainted with modern knowledge is bound to be useful. I welcome works of technical nature in Hindi and I am still more gratified to find in Hindi a book containing useful of original research. It is in keeping that the author should be the officer in charge of the practical work at the Hindu medical Pharmacy of the Hindu University.

Patna :
27th April, 1930.

(Sd.) K. P. ZAYASWAL,
M.A., Bar-at-Law.

I have gone through the Ayurvedic Khanij Vigyan written by Kaviraj Pratap Sinha Rasayanacharya, Superintendent, Ayurvedic Pharmacy, Benares Hindu University. This book is bound to be of immense good to the Ayurvedic Vaidyas as well as to students of Chemistry and Mineralogy. The book shows great Scholarship and a mastery of the subject both as regards ancient and modern knowledge of it. I congratulate the Kaviraj Sahib on this excellent treatise.

Lahore: (Sd.) S. S. BHATNAGAR,
16th April, 1930. D. Sc. (Lond.), F. Inst. P.
University Professor of Chemistry and
Director, University Chemical Laboratories.

I have read with much interest and profit the 1st Part of the Ayurveda Khanija Vigyan by Kaviraj Pratap Sinha of the Hindu University. It is a most scientific work which will not only give credit to its author but to the Hindu University where the author arranged the materials which form the basis of the present book. The most illuminating feature of the book is the comparisons of the Ayurvedic terms with those found in the European languages. The work shows much industry and patient investigation. The author has made an important contribution to Ayurvedic Scholarship and such a book for a critical training of Ayurvedic students was much wanted. I hope the author will expedite the publication of other parts as much as he can.

(Sd.) H. CHAND, D. Litt, I.E.S.,
Head of the Sanskrit Department,
Patna College.
1st May, 1930.

रस-ग्रन्थों की सूची

संसार के भिन्न भिन्न पुस्तकालयों से निम्नलिखित रस-ग्रन्थों की सूची प्राप्त हुई है, इसके अवलोकन से विशेष ज्ञान प्राप्त होने की संभावना है। इस सूची के अनेक ग्रन्थ प्रकाशित भी हो चुके हैं।

- १ रसप्रदीप १, रामचन्द्र कृत
- २ रसचन्द्रिका, माधव कविकेन्द्र कृत
- ३ रसमञ्जरी १
- ४ रसमार्ग
- ५ रसमुक्तावली १
- ६ रसरत्नाकर १
- ७ रससंकेतकलिका, चामुंड कायस्थ कृत

- ८ रससार १, गोविंदाचार्य कृत
- ९ रसार्णव १, देवी भैरव संवाद
- १० रसैद्रचिन्तामणि १ रामचन्द्र गुह कृत
- ११ रसचिन्तामणि १ अनन्त देव सूरि कृत
- १२ रसदीपिका १
- १३ रसनिषण्ड, गवर्नमेंट ओरिएण्टल लायब्रेरी मद्रास
- १४ रसपद्धति १, विन्दु कृत

- १५ रसपारिजात १, लक्ष्मोदरसस्वती कृत
- १६ रसप्रकाश सुधाकर १, यशोधर कृत
- १७ रसप्रदीपिका, मंगलगिरी सूरि कृत
- १८ रसप्रयोग
- १९ रसमेषजकल्पदीपिका, सूर्यपंडित कृत
- २० रसमंजरी-२, कालीनाथ कृत
- २१ रसमानस, दयाराम कृत
- २२ रसमुक्तावली २
- २३ रसज्ञ प्रदीप १, रामे राज कृत
- २४ रसरत्नसमुच्चय, वाग्भट कृत
- २५ रसरत्नाकर २, नागार्जुन कृत ५ खंड
(रसखंड, रसैन्द्र खंड, वाद-
खंड, रसायन खंड, सिद्ध खंड)
- २६ रसराज १
- २७ रसराजलक्ष्मी १
- २८ रसराजशंकर, रामकृष्ण कृत

२६ रससंग्रह

३० रससारसमुच्चय १

३१ रससिद्धिप्रकाश १, माधव भट्ट
कृत

३२ रसहृदय, गोविंद भिन्न कृत

३३ रसालंकार, रामवीर भट्ट कृत

३४ रसेन्द्रकल्पद्रुम

३५ रसेन्द्रचिन्तामणि: २

३५ रसेन्द्रचूडामणि:, नाक्षिदेव कृत

३६ रसकंकालीय तंत्र, कंकाली कृत

३७ रसकल्पलता

३८ रसकल्पलता २, कांचीनाथ कृत

३९ रसकषाय, वैद्यराज कृत

४० रसकौतुक

४१ रसकौमुदी १

४२ रसकौमुदी २, माधव कृत

४३ रसकौमुदी ३, शक्ति वल्लभ कृत

४४ रसगोविन्द, गोविन्द कृत

४५ रसचन्द्रिका, नीलाम्बर पुरोहित
कृत

४६ रसदर्पण

४७ रसदीपिका २, आनन्दानुभव कृत

४८ रसदीपिका ३ रामराज कृत

४९ रसनिबन्ध

५० रसपद्धति २

५१ रसपद्म चन्द्रिका

५२ रसपरिजात २

५३ रसप्रकाश सुधाकर २

५४ रसप्रदीप २, प्राणनाथ कृत

५५ रसप्रदीप ३, रामचन्द्र कृत

५६ रसप्रदीप ४, वैद्यराज कृत

५७ रसभस्म विधि:

५८ रसभेषज कल्प, सूर्य पंडित कृत

५९ रसभोग मुक्तावलि

६० रसमंजरी १

६१ रसमंजरी २, शालिनाथ कृत

६२ रसमणि:, हर कृत

६३ रसमुक्तावलि २

६४ रसयामल

६५ रसयोगमुक्तावलि, नरहरि भट्ट कृत

६६ रसरत्न १

६७ रसरत्न २, श्रीनाथ कृत

६८ रसरत्न प्रदीप २

६९ रसरत्न प्रदीपिका

७० रसरत्न समुच्चय, नित्यानाथ सिद्धकृत

७१ रसरत्नाकर ३, चक्रपाणि कृत

७२ रसरत्नावली, गुरुदत्तसिंह कृत

७३ रसरत्नार्णव २

७४ रसरहस्य

७५ रसराज २

७६ रसराजलक्ष्मी २	६१ रसमुधाकर
७७ रजराजशिरोमणिः, परशुराम कृत	६२ रसमुधानिधिः, वृजराज कृत
७८ रसराजहंसः	६३ रसमुधाम्मोधिः
७९ रसवैशेषिक	६४ रससूत्रस्थान
८० रसशोधन	६५ रसभेदः, रसतरंगिणी की टीका
८१ रससंस्कार	६६ रसहेमन् या कंकालीय रसहेमन्
८२ रससंग्रहसिद्धान्त, अचिन्त्य कृत	६७ रसाकर
८३ रससागर	६८ रसादिशुद्धि
८४ रससार २	६९ रसाधिकारः
८५ रससारसंग्रहः	१०० रसाध्याय, कंकालाध्याय
८६ रससारसमुच्चय २	१०१ रसामृत, जयदेव कृत
८७ रससिद्धान्तसंग्रह	१०२ रसायनविधान
८८ रससिद्धान्तसागर	१०३ रसायनविधि
८९ रससिद्धिप्रकाश २	१०४ रसार्णवकला
९० रससिन्धु	१०५ रसावतार

यह सूची जर्मनी के प्रसिद्ध विद्वान ओफ्रे (Aufrecht) की सूचियों की सूची Catalogues Catalogorum के आधार पर तय्यार की गई है। क्या हमारे देश के कोई भ्रमणशील वैद्य सन्यासी कमसे कम सम्पूर्णा भारत का भ्रमण कर यावतीय वैद्य बन्धुओं से मिलकर उनके घरों में गुप्त रूप से पड़े ग्रन्थरत्नों की एक सूची बनाकर प्रकाशित करने का प्रयत्न करेंगे? जर्मन जाति के सपूत सुदूर रहते हुए भी हमारे विद्यारत्नों का संग्रह कर जगत्गुरु बनते जा रहे हैं, जगत्गुरु का दावा करने वाले हम आर्य सन्तति कब जायेंगे?

आयुर्वेदीय खनिज-विज्ञान

प्रथम अध्याय

पारद और पारदीय खनिज

पारद = Mercury

Quicksilver = गलद्रूप्यनिभम्

पारदीय उत्पत्ति विषयक नव्य मत

संसार में जितने खनिज भूगर्भ में उत्पन्न होते हैं, उनमें पारद ही एक ऐसा खनिज है, जो साधारण तापक्रम पर द्रवरूप में पाया जाता है। इसका स्वरूप पिघली हुई चांदी सा होने ही के कारण 'रस कामधेनु' ग्रन्थ के संकलयिता वैद्यवर श्रीचूडामणि ने उक्त ग्रन्थ के पृष्ठ २७३ (धातु संग्रह पादे महारसाधिकास्तृतीयः) पर पारद के अन्य खनिजों के साथ "गलद्रूप्यनिभम्" शब्द का उल्लेख किया है। संभवतः इसी कारण पाश्चात्य पंडितों ने भी इसे 'क्विक्-सिल्वर' (द्रुत-रजत) नाम दिया है।

प्रकृति में स्वतन्त्र रूप से पारद, हिङ्गुल या अन्य पारदीय खनिजों के साथ अत्यल्प मात्रा में कभी कभी पाया जाता है। प्राचीन समय से हिङ्गुल ही से अधिकतर पारद निकालने का व्यवहार चला आ रहा है। इसके अनेक प्रमाण 'रसरत्न-समुच्चय' आदि प्राप्य रसग्रन्थों में उपलब्ध हैं। भारतेतर देशों में भी हिङ्गुल से ही पारद निकाला जाता रहा है। थियो-फ्रास्टस (Theophrastus) नाम के विद्वान ने ईसा के पूर्व की ३०० शताब्दि के लगभग लिखा है कि ताम्रचूर्ण और हिङ्गुल को सिरके के साथ पीसकर और उसे उड़ाकर पारद पृथक् करते थे। इसी प्रकार डायस्कोरीडीज (Dioscorides) नाम के पंडित ने भी लोह-चूर्ण के साथ हिङ्गुल मिलाकर पारद निकाला था। यही विधि ऊँचे दर्जे के हिङ्गुल से पारद निकालने के लिये कभी कभी अबतक भी काम में लाई जाती है।

सोना-चांदी बनाने वाले कीमियागर लोगों ने पारद पर अनेक प्रकार के परीक्षण किये, एवं उन्हीं के अनुभव से पारद-मिश्रक (Amalgams) का ज्ञान व्यवहार में सर्वप्रथम प्रचलित हुआ।

पाश्चात्य देशों में सबसे प्रथम सन् १५६६ ई० में पेरु (Peru) देश के हुवान्कावेलिका (Huancavelica) नामक स्थान में हिङ्गुल का अस्तित्व विदित हुआ और सन् १६३३ ई० में लोपेज़-सावेद्रा-बार्बा (Lopez Saavedra Barba) नामक व्यक्ति ने पारद निकालने के लिये अल्युडल (Aludel, गड्ढा-कलों वाली) नामक भट्टी तैयार की। इसी भट्टी को १६४६ ई० में बुस्टामेण्ट (Bustamente) नाम के किसी रसायनविज्ञ ने

स्पेन (Spain) देशीय पारदीय खनिज प्राप्ति के प्रसिद्ध अल्माडन (Almaden) स्थान की खानों में प्रचलित की । पारद निकालने के लिये यह भट्ठी दो शताब्दियों से भी अधिक समय तक उक्त दोनों देशों में व्यवहार होती रही । किन्तु अब नवीन उत्तम भट्टियों के बन जाने से इसका व्यवहार बन्द हो गया है ।

भूगर्भ-विज्ञों के मतानुसार संसार में पारद आर्कियन से कार्बनरी आयु प्रदर्शित करने वाले शिला व्यूहों में पाया गया है । (यह आयु एक करोड़ पचहत्तर लाख वर्ष से पचास लाख वर्ष के लगभग मानी जाती है) पारद अनेक प्रकार के रूप रङ्ग वाले विभिन्न जातीय जलज और आग्नेय पाषाण खंडोंमें व्याप्त मिलता है । उदाहरण के तौर पर रेणुशिला (Sandstone), मृत्तिका-पाषाण (Shales), सुधापाषाण (Limestone), स्फटिक-शिला (Quartzite) आदि जलज और ज्वालामुखी की लावा आदि आग्नेय पाषाणों के नाम लिखे जा सकते हैं । इसके अतिरिक्त उक्त उभय गुण धर्म रहित रूपान्तरित पाषाण खंडों (Schists) में भी यह पाया जाता है, किन्तु अधिकतर आग्नेय पाषाण खंडों के ही समीप मिलता है ।

पारदीय खनिजों के जमाव को देखने से यह भी विदित होता है कि भूगर्भ में जब आग्नेय पाषाण क्रमशः शीतल होते हुवे अपनी द्रवावस्था से घनावस्था में परिणित होने लगे, उस समय उड़नशील खनिज, जो उनके भीतरी भाग में विद्यमान थे वे वाष्प रूप में उड़कर ऊपर के समीपवर्ती पाषाण खंडों की दरारों में जमा हो गये । उनमें पारदीय खनिज भी अन्यतम है । संभवतः इसी कारण उष्ण जल के स्रोतों के समीप में पारद आजकल भी पाया जाता है ।

अमेरिका के प्रसिद्ध भूगर्भविज्ञान रेन्सम (Ransome) और स्पूर (Spurr) नाम के विद्वानों का विचार है कि पारद सदा ज्वालामुखी आग्नेय पाषाणों के सिलसिले में ही पाया जाता है, क्योंकि इसका अस्तित्व अधिकांश में अर्वाचीन ज्वालामुखी-पाषाणों में ही पाया गया है। किन्तु इस सिद्धान्त को स्थिर करने में अपवाद यह है कि स्पेन देश की बड़ी खानें, जो अल्माडन नामक स्थान में विद्यमान हैं, वे भूगर्भ काल के निर्णयानुसार अत्यन्त प्राचीन हैं और उनमें पारद १३०० फीट की गहराई पर पाया जाता है। इसी प्रकार अमेरिका प्रदेश की कैलिफ़ोर्निया (California) न्यू इड्रिया (New Idria) न्यू अल्माडन (New Almaden) (यहां पारद २२०० फीट की गहराई पर मिलता है) की खानें हैं जिनका सम्बन्ध ज्वालामुखी के उद्गम से नहीं है।

अनेक मतभेद रहते हुवे भी इस बात पर सब भूगर्भ-विज्ञानों का एकमत है कि पारद भूगर्भ के अन्तराल से उष्ण जल के साथ ही बाहर पृथ्वी पर प्रगट हुआ है, और इसी लिये यह अपने खनिजों के साथ भूभाग के ऊपरी तल में ही अधिकतर जमा मिलता है। जिस उष्ण जल के साथ पारद निकलता है, वह जल चाहे वर्षा द्वारा पृथ्वीके अन्तराल के उष्ण भागमें जाकर पुनः उष्ण स्रोत के रूप में बाहर निकला हो, चाहे पातालिक आग्नेय पाषाणों से निकल कर बाहर आया हो; किन्तु यह अनेक प्रमाणों से सिद्ध है कि पारद उष्ण जल के साथ ही क्षारीय घोलों में घुला हुआ पृथ्वी की ऊपरी दरारों में या खुले भूभाग में आकर प्राकृतिक पारद, और पारदीय खनिज हिङ्गुल आदि के रूप में जमा हुआ है।

रसोत्पत्ति विषयक प्राच्यमत

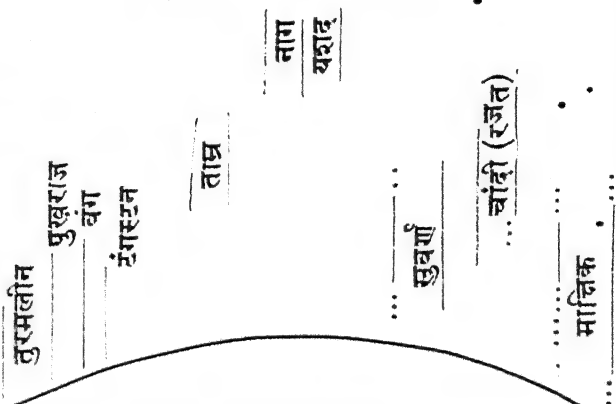
शैलेस्मिञ्छिवयोः प्रीत्या परस्पर जिगीषया ।
 संप्रवृत्ते च संभोगे त्रिलोकीक्षोभकारिणि ॥
 विनिवारयितुं वह्निः संभोगं प्रेषितः सुरैः ।
 कपोतरूपिणं प्राप्तं हिमवत्कन्दरेऽनलम् ॥
 अपत्तिभाव संश्रुब्धं स्मरलीला विलोकिनम् ।
 तं दृष्ट्वा लज्जितः शंभुर्विरतः सुरतात्तदा ॥
 प्रच्युतश्चरमोधातुर्गृहीतः शूलपाणिना ।
 प्रक्षिप्तो वदने बह्वर्गगायामपि सोऽपतत् ॥
 बहिः क्षिप्रस्तया सोपि परिदंदह्यमानया ।
 संजातास्तन्मलाधानाद्घातवः सिद्धिदायकः ॥
 यावदग्नि मुखाद्रेतो न्यपतद्भुवि सर्वतः ।
 शतयोजन निम्नास्ते (विस्तीर्णाः) जाताकूपास्तुपंच च ॥
 तदा प्रभृति कूपस्थं तद्रेतः पंचधाऽभवत् ॥

(रसरत्न समुच्चय पूर्व खण्ड अ० १ पृष्ठ ६)

इस अवतरण का तात्विक भावार्थ यह विदित होता है कि हिमालय में जब जड़ और चैतन्य शक्ति के अन्दर संघर्षण होता है तब पृथ्वी के अन्तराल में आग्नेय पदार्थ ज्वालामुखी के रूप में प्रगट होने लगते हैं। उस समय त्रैलोक्य में क्षोभ पैदा करने वाला भूकंप पैदा होना है। संसार के हिम प्रदेशों

में ही प्रायः ज्वालामुखी प्रगट होते हैं। प्रथम श्लोक में इसी अभि-
 प्राय का रूपक है। जहां भूकम्प के उपरान्त ज्वालामुखी का
 उद्गम होता है, वहां पर पृथ्वी शतधाविदीर्ण हो जाती है, जिसमें
 से प्रथम धूम्र वर्ण की गैस निकलती है (कथित रूपिणं प्राप्तं
 हिमवत्कन्दरेऽनलम्) बाद में अग्नि की ज्वाला निकलने लगती
 है (अपक्षिभाव संक्षुब्धं) ऐसा दूसरे श्लोक का अभिप्राय
 ज्ञात होता है। जब ज्वालामुखी का उद्गम हो जाता है, तब
 भूकम्प होना बन्द हो जाता है (तं दृष्ट्वा लज्जितं शंभुर्विशतः
 सुरतात्तदा) जब ज्वालामुखी के आग्नेय पाषाण क्रमशः
 शीतल होने लगते हैं तब उसके अन्तराल के उड़नशील
 खनिज उष्ण जल के साथ मिलकर वाष्परूप में ऊपर आकर
 शीतल होने पर जम जाते हैं। इसी बात के द्योतक अन्य दो
 श्लोक हैं। जो खनिज इस प्रकार निकलकर जमा होते हैं
 उनके जमने का क्रम, डाक्टर सी० जी० कलिस प्रोफेसर
 इम्पीरियल कालेज लन्डन के मतानुसार यह है—सब के
 नीचे पातालिक आग्नेय-पाषाण ग्रेनाइट (Granite) और उस
 के ऊपरी भागमें एक और जलज, पारद, तुरमलीन, पुखराज,
 वंग और टंगस्टन रहते हैं, तथा दूसरी ओर भारी धातु ताम्र
 नाग, यशद, सुवर्ण, रजत और रौप्यमाक्षिक रहते हैं। इस
 का नक्काशा वे इस प्रकार बनाते हैं—

पारद के खनिज



पातालिक आग्नेय पाषाण ग्रेनाइट (Granite)

जो लोग ऐसी खानों को खनते हैं वे प्रायः एक के बाद दूसरे खनिज को निकालकर लाभ उठाते हैं, संभवतः इसी का ऊपर के पाठ में “संजाता-स्तन्मलाधानाद्वातवः सिद्धिदायकाः” करके उल्लेख है । यह भी निश्चित है कि जहां पर पारद की खानें हैं वहां पर किसी किसी स्थान पर नल के आकार के कूप भी मिलते हैं । इटली में ऐसे कूप मौजूद हैं । युनाइटेड स्टेट्स आफ अमेरिका में भी ऐसे स्थान हैं जिनकी समानता “शत योजन निम्नास्ते (विस्तीर्णाः) जाता कूपास्तु पंच च” से हो सकती है । यहां ‘शत’ के साथ ही ‘विस्तीर्ण’ पाठ साध्यान् है । पारद के कूप २४५० फीट तक के गहरे हैं, किन्तु शतयोजन गहराई बहुत है । नीचे के अंग्रेजी अवतरण से देखेंगे कि भूगर्भ के अन्दर सौ मील की खुदाई

पारद निकालने की हुई है। जहां पांच कूप का उल्लेख है वहां पर इस समय अठारह कूप (Shafts) हैं जिनसे पारद निकाला जाता है। संभव है उस समय पांच ही कूप रहे हों।

ITALY

“In the Montebuono mine, according to R. Rosenlecher Miocene sands overlies and conceal Nummulitic Limestone. At a depth of 100 ft. a great vertical crevice about 6 ft. wide was struck, filled with Miocene sands and clays, impregnated with cinnabar in an extremely fine state of division. In the immediately neighbouring rock are several funnel-shaped cavities, also filled with metalliferous sands and clays, the proportion of cinnabar increasing with the depth. These funnel-shaped cavities appear to bear some analogy to the vertical pipes or holes (Trajas) in gypsum at the mercury mines of Huitzuco Guerrero, Mexico. Broadly speaking, the whole deposit forms a large funnel, the position of which is marked on the surface by a distinct depression.”

UNITED STATES.

“Santa Clara County—The new Almaden group of mines was discovered in Santa Clara County by two Mexicans in 1824, but the ore was not recognized as cinnabar until 1845. The large output of mercury from the mine has already been mentioned. *Altogether 18 shafts have been sunk, and there are nearly 100 miles of underground workings, a large proportion of which have of course, caved in. The greatest depth in 1917 was 2,450 ft. below the top of mine Hill (1,600 ft. altitude) so it is the deepest and most extensive mercury mine in the world.*”

Monographs on Mineral Resources, Imperial Institute London Mercury Ores. By Edward Halse A.R.S.M. page 45 & 75.

इन अवतरणों के साथ प्राच्यमत मिलाकर देखने से स्पष्ट है कि प्राचीनों का पारदोत्पत्ति विषयक ज्ञान बसा ही था जैसा आजकल के प्रत्यक्षदर्शी विद्वानों का है। किन्तु भाग्यवश प्राचीन वर्णन ऐसी आलंकारिक और तांत्रिक काल की भक्ति-

भाव पूर्ण भाषा में है कि जिसका ठीक ठीक अर्थ समझना प्रत्यक्ष दर्शन के बिना सम्भव नहीं। यही कारण प्रतीत होता है कि वर्तमानकाल के वैद्य बन्धु केवल सर्वव्यापक भूत-भावीन भगवान शिव का ही सर्वे सर्वा अर्थ समझकर पारद के प्रत्यक्ष ज्ञानके विषय में इतने उदासीन हैं। उनको 'रस रत्न-समुच्चय' के इस वाक्य को स्मरणकर पारद विषयक प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त करने के लिये कटिवद्ध हो जाना चाहिये,—

“ एतां रस समुत्पत्तिं योजानाति सधार्मिकः । ”

अर्थात् जो प्रत्यक्ष दर्शन पूर्वक इस प्रकार की रसोत्पत्ति को जानता है वही वास्तविक धार्मिक रसवैद्य है।

पारद निकालने योग्य खनिज ।

जिन खनिजों से पारद निकाला जा सकता है, वे थोड़े से हैं और उनका रासायनिक संगठन बहुत साधारण है।

पारद प्राप्ति के मुख्य खनिज ।

(१) हिंगुल, हंसपादः (*Cinnabar*) (HgS)

जपाकुसुम संकाशः (*Bright red Sulphide*)

गुड़हर के पुष्प का सा लाल हिंगुल पारद निकालने का यही एक मुख्य खनिज है। इसका रङ्ग तेज लाल होता है। यह पारद और

गंधक का यौगिक है। इसका रङ्ग वैसा ही होता है जैसा जपाकुसुम का होता है। इसलिए 'रेडसल्फाइड आफ़ मर्करी' खनिज ही रसशास्त्र का हंसपाद हिङ्गुल है। साधारणतया यह मृत्तिका के ढले सा या दानेदार प्रकृति में प्राप्त होता है। कभी कभी इस के रवे (Crystals) भी पाये जाते हैं। चीनी मिट्टी की कसौटी पर घिसने से लाल लकीर खिंचती है। इस की कठोरता हीरे की अपेक्षा २ से २.५ के लगभग होती है। हीरे की कठोरता दस मानी गई है। इसका विशिष्ट गुणत्व जल की अपेक्षा ८ से ८.२ होता है। अर्थात् यह जल से आठ गुना भारी है। जल का विशिष्ट गुणत्व एक माना गया है।

इसके दो भेद और हैं—

(१) यकृदाकार हिङ्गुल *Hepatic cinnabar*.

यह मृत्तिका की जाति का है। सम्भवतः रस रत्न समुच्चयोंक्त यही द्रव है।

“स रसा भूतले लीनस्तत्तद्देश निवासिनः ।

ताम्रदं पातना यत्रे त्तिप्त्वासूतं हरन्ति च ॥

(२) प्रवालाभः कोरेलीन (*Coralline*)

इसका एक नाम है 'कोरेलीन अर्टज़' जिसका अर्थ है मूँगे की सी मृत्तिका। यह जर्मन भाषा का नाम है। सम्भवतः इसी के लिये रसरत्नसमुच्चयकार ने “श्वेलेखः प्रवालाभो हंसपादः स ईरितः” लिखा है। यह पूर्वोक्त हिङ्गुल का ही भेद है। इसका स्वरूप मूँगे का सा होता है। इसमें हिङ्गुल २% शिलाजत्वांश (Bitumen) ५% और स्फुर-सुधांश (Phosphate of lime) ५६% प्रति शत रहते हैं। इस प्रकार का हिङ्गुल इटली देश में

बहुतायत सेपाया जाता है। वहां पर इसकी दो जातियां, इसी खनिज के साथ, और भी मिलती हैं जिनके नाम ये हैं—

(३) *Steel ore* (*Stahlerz*) (स्टील-ओर) दैत्येन्द्र रक्तः

(४) *Brick ore* (*Ziegelerz*) (ब्रिक-ओर) गिरिसिन्दूर

इस विषय के अंग्रेजी पाठ के शब्द भी विचारणीय हैं—

There are four recognized varieties of ore—

(1) *Steel ore* (*Stahlerz*) the richest. It occurs in a compact and crypto-crystalline form. Containing some bitumen and carries 75% mercury.

(2) *Lever ore* (*Lebrerz*) or hepatic cinnabar a bituminous earthy variety often forming the kernels of stahlerz :

(3) *Coralline ore* (*korallenerz*) a curved lamellar variety of (2). It is usually found in grit, and appears as singular pertifications having the form of corals. It contains 2% cinnabar, 5% bitumen and 56% phosphate of lime.

(4) *Brick-ore* (*Ziegelerz*) sandy, granular and of a bright red colour. It contains 68% mercury when pure and is mixed with dolomite, some quartz and native mercury, but is free from bitumen. It always occurs at the margins of the deposit. *Loc. cit.* Page 41, 42.

(२) चर्मर: *Metacinnabar* (HgS^*)

चर्मर: कृष्णरूपः स्यात् (रसकामधेनुः)

यह कृष्णवर्ण का होता है। इसका रासायनिक संगठन रक्त हिंगुल का ही सा है। यह मृत्तिका रूप में और रवों के रूप में पाया जाता है। रवों के रूपमें इसकी कठोरता ३ होती है और विशिष्ट गुरुत्व ७.८१ होता है। इसको चीनी मिट्टी की कसौटी पर रगड़ने से काली लकीर खिचती है। देखने में यह धातु की सी द्युति वाला होता है। मृत्तिकाकृतिमें विशिष्ट गुरुत्व कुछ कम होता है।

(३) हीरकद्युति, केलोमल (*Calomel* (Hg_2Cl_2)

हीरकद्युतिसंकाशम् (रसकामधेनु) यह हीरे की सी कान्ति वाला रवेदार पारद-खनिज (मरक्युरस क्लोराइड = केलोमल) है। यह प्राकृतिक दशा में स्पेन देश के इड्रिया (Idria) और अल्माडन (Almaden) नामक स्थान में अल्पमात्रा में पाया जाता है। यह रवों (Crystals) के रूप में ही प्रायः मिलता है। इसके रवे बहुत ही जटिल संगठन के होते हैं। रंग इसका श्वेत या पांडु होता है। चीनी मिट्टी की कसौटी पर रगड़ने से अल्प-पीताभ-श्वेत लकीर खिचती है। इसके रवे की चमक हीरेकी सी होती है। इसका विशिष्ट गुरुत्व ६.५ होता है। भारतीय रस शास्त्रियों को इस पारदीय खनिज का पूर्ण ज्ञान था। रसकामधेनु ग्रंथ में जो इस का वर्णन लिखा है, वह बहुत ही सुन्दर है। संक्षेप में सभी बातें आगई हैं।

“ हीरकद्युतिसंकाशं प्रमाणाद्हीरकात्क्वचित् ” ।

(* पृष्ठ २७७ रसकामधेनु)

इसमें पाठ कुछ अशुद्ध प्रतीत होता है किन्तु व्यवहार के लिये कामचलाऊ ठीक है। इसका अंग्रेजी भाषा का वर्णन बहुत समता रखता है—

Calomel (Hg_2Cl_2)

This is mercurous chloride and is found at Idria and at Almaden as one of the *minor mercury minerals*. It occurs in crystal so often highly complex, of the tetragonal system.

Lustre adamantine (हीरक्यतिसंकाशम्) Fracture conchoidal (प्रमाणाद्धीरकात्क्वचित्) colour white or yellowish-grey : streak pale-yellowish-white, hardness 1 to 2 Specific gravity 6.5 *Loc. cit. page 4.*

इस अवतरण के शब्द जब रस कामधेनु के अवतरण के साथ मिलाये जाते हैं तो ऐसा प्रतीत होता है कि प्राचीन रस शास्त्रियों ने भली प्रकार खान पर बैठकर नमूना सामने रखकर खोज के साथ सारा वृत्त गागर में सागर की तरह भर दिया है। क्वचित् शब्द का प्रयोग अल्पमात्रा में मिलने के लिये और हीरक्युति लस्टर पेडमेन्टाइन तथा प्रमाणाद्धीरकात् फ्रेक्चर कोन्कोइडल के लिये ऐसा जँचता है कि मानो पर्याय शब्द लिख दिये गये हों। ऐसा वर्णन पढ़कर किस वैद्यको अभिमान न होगा कि हमारा शास्त्र वैसा ही वैज्ञानिक है जैसा आजकल के नवशिक्षित लोग वैज्ञानिक होने का दावा करते हैं। इस खनिज के कम मिलने से, और इसकी उपयोगिता औषधि रूपमें अधिक देखकर, सर्वप्रथम भारतीय रस-शास्त्रियों

ने रसकपूर के नाम से इसका रासायनिक विधि से निर्माण कर लिया। इसके बड़े बड़े कारखाने आजकल भी सूरत (गुजरात) में विद्यमान हैं जहाँ पर प्रति वर्ष दो ढाई सौ मन माल तय्यार होकर सारे देश में विक्रयार्थ जाता है। इसका भाव (१२) से (२४) रु० प्रति सेर के लगभग रहता है। इसका भाव सदा पारद के भाव पर निर्भर रहता है। मद्रास और हैदराबाद दक्षिण में भी इसके बनाने के कारखाने हैं। वहाँ प्रायः सभी लोग शीत के दिनोंमें इसका सेवन करते हैं। ये लोग सूरतका बना हुआ रसकपूर लेकर फिर से आतिशी शीशी में भरकर बालुका यन्त्र से अग्नि देकर, उसे उड़ाकर पपड़ी की शकल में तय्यार करते हैं और उसे शुद्ध समझते हैं। ये कारखाने मैन स्वयं जाकर देखे हैं। रसकपूर और हिंगुल बनाने वाले खास खास आदमी रहते हैं। उनका यह खानदानी रोजगार समझा जाता है। वे लोग बारी बारी से इसे बनाकर बेचते हैं। एक एक भट्टी में दो दो ढाई ढाई मन का घान उतारते हैं। ये घान पिंडाकार बारीक बारीक चमकीले रवों के सम्मिलित कणों का समुदाय होता है। हाथ से दबाने पर इसका चूर्ण बारीक बारीक कणों में विभक्त हो जाता है।

रसकपूर की प्राचीन निर्माण विधि।

“शुद्ध सूतसमं कुर्यात्प्रत्येकं गैरिकंसुधिः ।
इष्टिकां खटिकां तद्वत्स्फटिकां सिन्धु जन्मच ॥
वल्मीकं क्षारलवणं भांडं रंजक मृत्तिकाम् ।
सर्वाण्येतानि संचूर्ण वाससा चापि शोधयेत् ॥
पभिश्चूर्णैर्युतं सूतं यावद्यामं विमर्दयेत् ।
तच्चूर्णं सहितं सूतं स्थाली मध्ये प्ररिन्निपेत् ॥

दृस्याः स्थाल्या मुखेस्थालीमपरांधारयेत्समाम् ।
 सवस्त्र कुट्टित मृदा मुद्रयेदनयोर्मुखम् ॥
 संशोष्य मुद्रयेत्भूयो भूयः संशोष्य मुद्रयेत् ।
 सम्यक् विशोष्य मुद्रां तां स्थालीं चुल्यांविधारयेत् ॥
 अग्निं निरंतरं दद्याद्यावद्दिनं चतुष्टयम् ।
 अङ्गारो परि तद्यन्त्रं रक्षेद्यत्नादहर्निशम् ॥
 शनैरुद्घाटयेद्यन्त्रमूर्ध्वस्थालीगतंरसम् ।
 कर्पूरवत्सुविमलं गृह्णीयाद्गुणवत्तरम् ॥

(भावप्रकाश)

भावार्थ—शुद्ध पारद, गैरिक, ईंट का चूर्ण, खरिया मिट्टी, फिटकरी, सेंधा नमक, बामी की मिट्टी, खारी नमक, हिरमिजी (एक प्रकारकी लाल मिट्टी जो मिट्टी के बर्तन रँगने में व्यवहार होती है) सब द्रव्य समान लेकर पारद के अतिरिक्त अन्य सब द्रव्यों को पीस कर कपड़-कानकर पारद के साथ मिलाकर एक पहर तक घोंटे । इस घुटे हुवे द्रव्य को एक मज़बूत हांडीमें रखे और उस पर ठीक जमने वाली दूसरी हांडी मुंह की ओर से ढक दे । बादमें कपड़ा और मिट्टी कूटकर मिलाकर उक्त दोनों हंडियों के मुख बन्द करके बाद में सुखावे । सूखने पर फिर कपरौटी करदे । सन्धि इस प्रकार बन्द करे कि जिस से पारद बाष्पी-भवनके समय निकल न सके । सन्धि लेपके भली प्रकार सूखने पर निरन्तर चार दिन तथा चार रात तक बबूल की लकड़ी की आंच दे । स्वाङ्ग शीतल होने पर सावधानी से सन्धि खोलकर ऊपर की हंडी में कपूर के जैसे लगे हुवे द्रव्यको धीरे से निकाल ले । यह फिरुंग (सिफलिस) उपदंश आदिके लिये उत्तम योग है ।

रसकर्पूर की नव्य निर्माण विधि

आधुनिक विधि में केवल पारद और खाने का साधारण नमक यथावश्यक मात्रा में लेकर और उड़ाकर रसकर्पूर बनाते हैं। आँच देने की प्राचीन विधि ही कुछ परिवर्तन के साथ व्यवहार की जाती है। इसमें पारद १०० भाग के साथ नमक की गेस क्लोरिन १८ भाग मिली रहती है। इसको पाश्चात्य चिकित्सक औषधि में 'केलोमल' के नाम से व्यवहार करते हैं। इसे 'सब-क्लोराइड आफ़ मर्करी' भी कहते हैं। रसकर्पूर इसका प्राचीन नाम था किन्तु आज कल 'पर-क्लोराइड आफ़ मर्करी' के लिये यह नाम व्यवहृत होता है, जिसमें पारद के साथ क्लोरिन की मात्रा ३५॥ होती है और इसका व्यवहार भी उपदंश फिरंग आदि में बहु-तायत से होता है। शस्त्र-कर्म में भी इसके घोलों का व्यवहार आधिक्य से किया जाता है। यह बहुत उपयोगी औषध है। मेरे विचार में दोनों की निर्माणविधि साधारण दृष्टि से समान होने के कारण रसकर्पूर संज्ञा दोनों में व्यवहार होने लग पड़ी है; किन्तु यह भूल है। दोनों रासायनिक दृष्टि से भिन्न भिन्न गुण धर्म वाले द्रव्य हैं और एक दूसरे के स्थान पर कभी व्यवहार नहीं करना चाहिये। इनके नाम भी स्पष्ट रीति से अलग अलग कर देने आवश्यक हैं। आधुनिक रसकर्पूर ('पर-क्लोराइड आफ़ मर्करी' या 'कोरोसिब सब्लीमेट') के लिये रसकर्पूर और केलोमल (सब-क्लोराइड आफ़ मर्करी) के लिये सुधानिधि रस या रसपुष्प नाम व्यवहार में लाने चाहिये, जिससे दोनों द्रव्यों का भ्रम दूर हो जावे और औषधि के व्यवहार में

हानि न उठानी पड़े। इन नामों का उपयोग “रसतरङ्गिणी” कार ने किया है।

रस पुष्पं रससुमं कुसुमं रसपूर्वकम् ।

मतं निरुच्यते कैश्चित्सुधानिधि रसाख्यया ॥

विशेष के लिए ‘रसतरंगिणी’ पृष्ठ ३९ से ४८ तक देखना चाहिए।

(४) प्राकृतिक पारद *Native Mercury*.

यह बहुत अल्प मात्रा में प्राप्त होता है। कभी कभी इसके कण खनिज हिंगुल के साथ बिखरे हुये पाये जाते हैं। यह पारद प्राप्ति का गौण खनिज समझा जाता है। इटली और स्पेन देश की खानों में यह मिलता है।

(५) पारद रजत मिश्रक *Silver-amalgam*.

पर्पटी निभम् (पपड़ी जैसा)

यह प्रकृति में पारद और रजत के भिन्न भिन्न परिणाम में बना पाया जाता है। यह अधिकतर चीली (Chile) देश की खानों में पाया जाता है। इसके अतिरिक्त जर्मनी, स्पेन और युनाइटेड स्टेट्स की खानों में भी पाया जाता है।

(६) टेट्राहीड्राइट या मर्क्युरल फेहलोर (*Tetrahedrite or Mercurial Fahlore*)

पिंड रूपम्, पिंडाकार ।

इसमें से भी व्यापार के योग्य पारद निकल सकता है किन्तु यह वास्तव में ताम्र का ही खनिज है और बहुत अल्प मात्रा में पाया जाता है। जर्मनी के बोसनिया (Bosnia) और पेलेटिनाटी (Palatinate) नामक स्थानों में ही विशेषतः मिलता है।

परीक्षा

ऊपर लिखे किसी भी खनिज को पारद के लिये परीक्षा कर सकते हैं। एक काचकी परीक्षा नलिका में पारदीय खनिज और चूना या खाने का सोडा भरकर स्पिरिट लेम्प पर तपाने से नालिका के शीतल प्रदेश में पारद के कण जमे हुवे नज़र आवेंगे। यदि पारद का खनिज पारद-गंधक का यौगिक (हिंगुल) हुवा तो नलिका के शीतल प्रदेश में लालहिंगुल और पारद दोनों दिखाई देंगे एवं जलते हुवे गन्धक की तीव्र गंध प्रतीत होगी।

पारद प्राप्ति के कुछ गौण खनिज।

उक्त खनिजों के अतिरिक्त अल्प मात्रा में प्राप्त होने वाले कुछ पारदीय खनिज ऐसे भी हैं जो किसी स्थान विशेष में ही प्राप्त होते हैं और उन से भी पारद निकाला जा सकता है।

(१) लिविंगस्टोनाइट (*Livingstonite* $2Sb_2S_3 \cdot HgS$)

यह हिंगुल और एन्टीमनी का फोलाद सा कृष्ण-वर्ण यौगिक है। इसमें धातु की सी द्युति होती है। घिसने पर लाल लकीर खिंचती है। यह रवेदार बल्मीक शिखराकार पिंड सा होता है। कठोरता २, विशिष्ट गुरुत्व ४.८१ होता है। मेक्सिको देश का पारद निकालने का मुख्य खनिज है, वहां पर चिरकाल तक इसकी खान का कार्य होता रहा है। यह गंधक और गोदन्ती के साथ भी पाया जाता है। इसका वर्णन 'रसरत्नसमुच्चय' में लिखे "स्रोतोऽग्नि" के साथ बहुत मिलता है—

बल्मीकशिखराकारं भङ्गे नीलोत्पलद्युति ।
घृष्टं तु गैरिकच्छायं स्रोतोऽं लक्षयेद्भुवम् ॥

(र. र. स. पृष्ठ ३४)

साँपकी बामी जैसा शिखराकार (कोलुंनर मेससिव फार्म Columnar massive form) तोड़ने पर नील कमल सा दिखाई दे और कसौटी पर घिसने से गैरिक की सी लाल लकीर पड़े वह अवश्य स्रोतोऽंजन है। साफ फोलाद का रंग नीलकमल के पत्ते के वर्ण का होता है। इस यौगिक में सुरमा है, इसलिये इसको स्रोतोऽंजन मानना ठीक है।

(२) बार्सेनाइट (Barcenite)

यह बहुत जटिल अल्प मात्रा में पाया जाने वाला खनिज है, इसका प्रादुर्भाव उपरोक्त लिबिंग्स्टोनाइट से ही होता है। केवल मेक्सिको देश के ह्विजुको (Huizuco) नामक स्थान पर ही प्राप्त होता है।

सन् १८७८ ई० जे० डबल्यु. मलेट (J. W. Mallet) ने मेरियानो बार्सीना (Meriano Baercena) के नाम पर ही इस खनिज का नामकरण किया है। मेक्सिकन भूगर्भ-विज्ञों का मत है कि यह खनिज हिंगुल और एन्टिमोनॉक्साइड (Antimony Oxide Sb_2O_3) का यौगिक है। यह मृत्तिका के ढेले के आकार का कृष्णवर्ण होता है। कसौटी पर घिसने से राख (ash-grey) और कुछ हरापन लिये हुवे रंग की लकीर खिचती है। कठोरता ५.५, विशिष्ट गुरुत्व ५.३४३.

(३) ग्वाडालकाज़ाराइट (Guadalcazarite)

यह खनिज, प्रायः कृष्ण हिंगुल की ही जाति का

है। इसमें थोड़ा सा यशद (२ से ४%) और अत्यल्प मात्रा में सेलेनियम (Selenium १%, (यह धातु गंधक का सा होता है और आज कल वायरलेस टेलिग्राफी में फोटो भेजने के कार्य में उपयोगी है) मिला रहता है। इसके सहयोगी खनिज रक्त हिंगुल, बेराइट्स (Barytes) और स्फटिक (Quartz) हैं। यह मेक्सिको प्रान्त के ग्वाडल-काज़ार (Guadalcazar) स्थान में प्राप्त होने के कारण इस का नाम ग्रामनाम पर ही अन्य खनिजों से पृथक समझने के लिये रख दिया गया है।

अब पारद के वे खनिज लिखे जाते हैं जो अत्यल्प मात्रा में पाये जाते हैं किन्तु ब्रिक्स्टर कौन्टी Brewster County, टेक्सास (Texas) में इतनी मात्रा में मिलते हैं कि जिन से खान का व्यवसाय किया जा सकता है—

(१) टेरलिंग्वाइट (Terlinguaite Hg_2Cl_2) यह पारद क्लोरिन और ओक्सिजन का यौगिक (Oxychloride of mercury) है। यह गंधक के से पीले रवों में पाया जाता है। वायु में रखने से इसका रंग पीले से गहरा जैतून जैसा हरा (Olive Green) हो जाता है। कठोरता २ से ३ तक विशिष्ट गुरुत्व = ७.२५.

(२) इग्लेस्टोनाइट (Eglestonite Hg_4Cl_2O) यह छोटे छोटे भूरे पीले रंग के रवों में पाया जाता है। इसके कणों में रोजन (सूखा गंवा विरोजा) की सी द्युति नज़र आती है, यह धूप में रखने से शीघ्र काला पड़ जाता है। कठोरता २ से ३ तक विशिष्ट गुरुत्व = ३.२७.

(३) क्लेनाइट Kleinite (Mercury—Ammonium—Chloride) यह पारद और नौसादर का प्राकृतिक यौगिक है।

इसके रवे गंधक जैसे पीले होते हैं और उनमें विकृत स्थानों पर नारंगी के वर्ण के दाग होते हैं। कठोरता ३ से ४ तक विशिष्ट गुरुत्व ७.९८. यह भी टेलिंग्वाइट के साथ पाया जाता है।

(४) मोजेसाइट (Mosesite) यह खनिज भी प्राकृतिक पारद और नौसादर का यौगिक है। एवं टेलिंग्वाइट के साथही पाया जाता है।

(५) मोन्ट्रोयडाइट (Montroydite HgO) यह नारंगी के से लाल रवों में पाया जाता है जिनमें कांच की सी चमक रहती है कठोरता २ से भी कम। यह खनिज उपरोक्त चारों खनिजों के साथ पाया जाता है। उक्त पांचो खनिज रस शास्त्रोक्त सुपीतः शुक्ल तुंडकः जाति के पारदीय खनिजों के साथ समता रखते हैं। ये गंधक से पीले और नारंगी से लाल वर्ण के होते हैं। सभी ये खनिज पारद प्राप्ति के साधन हैं। इनके अतिरिक्त कुछ ऐसे भी पारदीय खनिज हैं जो बहुत ही अत्यल्प मात्रा में पाये जाते हैं। उनके नाम ये हैं—

(१) टीमेनाइट (Tiemannite $HgSe$)

यह सिलेनियं और पारद का खनिज है।

(२) आनोफ्राइट (Onofrite. $HgS, se.$)

यह गंधक सिलेनियं और पारद का यौगिक है।

(३) कोलोराडोआइट (Coloradoite. ($HgTe$.)

यह टेलुरियं नामक खनिज और पारद का यौगिक है।

(४) लेहर बेकाइट (Lehrbachite, (a Selenide of Lead. and Mercury.))

यह सेलेनाइड, सीसा (नाग) और पारद का यौगिक है ।

(५) आयोडीराइट (Iodyrite)

यह अत्यल्प मात्रा में चीली (Chile) नामक स्थान पर आयोडाइड, रजत और पारद का यौगिक पाया जाता है ।

आयुर्वेद के रस-शास्त्रों में हिंगुल के शीर्षक में जो वर्णन मिलता है, वह समस्त पारद के खनिजों के विषय में समझना चाहिये । पारद के मुख्य खनिज तो स्पष्ट रूप से लिख दिये हैं, और गौण खनिज उन्हीं के अन्तर्गत करने का प्रयत्न किया गया है । आज कल भी प्रधान खनिजों से ही पारद निकालने का व्यवसाय चलता है । शेष खनिज किसी देश विशेष के स्थान विशेष में मिलते हैं । उनका उपयोग पारद निकालने के लिये कभी २ किया जाता रहा है ।

इसका वर्णन रस शास्त्रियों ने एक श्लोक के अर्धभाग में कर दिया है ।

“पिंडरूपमिदं साक्षात् दृश्यते दृष्टिसौख्यदम् ” ।

(रसकामधेनु पृ० २७३)

इन सब अवतरणों को देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि प्राप्य रसग्रन्थों में हिंगुल के वर्णन में जितना भी साहित्य मिलता है वह सब ठीक है, केवल ग्रन्थ संग्रहात्मक होने के कारण सिलसिले वार खनिजों का स्वरूप समझना कठिन होगया है । तथापि, जितनी सामग्री उपलब्ध है उससे यह निर्णय सहज में निकाला जा सकता है कि, प्राचीन भारतीय रस-शास्त्रियों को पारद प्राप्ति के प्रायः सारे खनिज विदित थे ।

उन्होंने उम्क़ा इतना ही वर्णन किया है जितना औषधि निर्माता के ज्ञान के लिये आवश्यक है। आधुनिक काल में भी औषधियों के गुणधर्म बतलाने वाली पुस्तकों (मेटेरिया मेडिका आदि) में औषधि निर्माणोपयोगी खनिजों का वर्णन संक्षेप में दिया गया है। परन्तु खनिज सम्बन्धी वैज्ञानिक ग्रन्थों में बहुत विस्तार के साथ सूक्ष्मातिसूक्ष्म वर्णन पाया जाता है। सम्भवतः इसी प्रकार यहाँ के खनिज शास्त्रों में भी विशद वर्णन रहा हो पर दैव दुर्विपाक से आज कल उपलब्ध नहीं सा है।

रसशास्त्रियों ने औषधोपयोगी खनिजों का संक्षेप में परिचय देकर उसके शोधन मारण और औषधि गुण धर्म पर विशेष प्रकाश डालने का प्रयास किया है। वैद्यों का यह अभिमान ठीक हो सकता है कि गत भारतीय संस्कृति के समय में, जब देशकी उन्नत दशा रही हो, सर्वत्र ज्ञान प्रसार करने का कार्य यहां के विज्ञ करते रहे हों, पर आज कलकी पारतंत्र्य दशा में उक्त अभिमान छोड़कर रसशास्त्रोक्त खनिजों का वर्तमान कालिक उपलब्ध ज्ञान प्राप्त करना वैद्य मात्र के लिये परमावश्यक है। क्योंकि जो औषधि के द्रव्य बाज़ार में आ रहे हैं वे प्रायः कृत्रिम और अशुद्ध मिलते हैं। पन्सारी उनमें अनेक बाह्य अशुद्धियाँ मिलाकर बेचते हैं। ऐसी दशा में पूर्ण द्रव्यज्ञान के बिना शुद्ध औषधि बनाना अत्यन्त कठिन होगया है; जिस का फल यह हो रहा है कि शास्त्रोक्त गुण, प्रभाव औषधियों में नहीं देखे जाते। इसी कठिनाई को दूर करने के लिये पारद के समस्त प्राप्य खनिजों का वर्णन करदिया गया है। अब संक्षेप में नीचे वह वर्णन दिया जाता है जिससे प्राच्य-प्रतीच्य मतों का

समविषमज्ञान पाठक स्वयं प्राप्त कर निर्णय कर सकें।

हिंगुल की व्याख्या ।

‘रसगन्धकसंभूतो हिंगुलः प्रोच्यते बुधैः।

तस्मात्सूतस्तयोर्ग्राह्यः सोऽपि शोध्यस्तु सूतवत् ॥

(रस कामधेनु २७५ पृष्ठ)

इसका भावार्थ यह है कि रस और गन्धक के रासायनिक यौगिक (*Sulphide of mercury*) को हिंगुल कहते हैं। इस लिए हिंगुल से पारद निकाल कर उसे खनिज पारद की तरह शुद्ध करें।

देश और रंगादि भेद से हिंगुल के अनेक नाम ।

हिंगुलं, म्लेच्छं, इंगुलं, चर्मारवर्धनं, चूर्णपारदं, दरदं, कुरुबिन्दं, चीनपिष्टं, लघुकन्दरसं, चर्मारगंधिका, रत्नरागकारी, हंसपादः, चर्मारः, सुपीतकः, शुकतुंडकः, इन हिंगुल के पर्यायवाची नामों को देखने से स्पष्ट विदित होता है कि पारद, हिंगुल, और तत्सम्बन्धी अन्य खनिजों को भारतेतर देशों से व्यापारी लोग यहाँ लाया करते थे। जहाँ से आया और जिस तरह के कार्य में उपयुक्त हुआ या पात्र आदि में रखा गया उसी को स्मरण करने के लिये वैसे ही नाम रख दिये गये। उदाहरण के लिये म्लेच्छ शब्द को देखिये। यह शब्द पौराणिक और वैज्ञानिक काल में यवनों के लिये व्यवहृत हुआ है। यहाँ यवन (ग्रीक) लोग बहुत आया जाया करते थे और यहाँ का कला-कौशल सीख जाते थे, तथा जो विशेष उन्नति करते उसी की परीक्षा यहाँ देकर यहाँ के

निवासियों के श्रद्धाभाजन बनते थे। इसी बात का द्योतक एक श्लोक बाराहमिहिराचार्य विरचित “पञ्च सिद्धान्तिका” नामक ग्रन्थ में पाया जाता है। इस ग्रन्थ को प्रसिद्ध डाक्टर थीबो और सुधाकर जी द्विवेदी ने संपादित किया है—

“म्लेच्छा हि यवनास्तेषु, सम्यक् शास्त्रमिदंस्थितम् ।

ऋषिवत् तेऽपि पूज्यन्ते किं पुनर्देवविज्जनः ॥”

म्लेच्छ शब्द का प्रयोग भारत पर आक्रमण करने वाली जातियों के विषय में भी प्रयुक्त हुआ है। युगपुराण नामक ग्रन्थ गार्गी संहिता में है। उस में लिखा है—

“ततः साकेतमाक्रम्य, पञ्चालान् मथुरान्तया ।

यवना दुष्ट विक्रान्ताः प्राप्स्यन्ति कुसुमध्वजम् ॥”

इन अवतरणों से स्पष्ट है कि भारत के अतिरिक्त देश निवासी लोग प्रायः म्लेच्छ (यवन) कहलाते थे। पारस और उसके अन्य खनिज भारतेतर देशों से आया करते थे इस लिये हिंगुल के लिये म्लेच्छ शब्द का प्रयोग किया गया।

इसी प्रकार चीन से चूर्ण रूप में हिंगुल आता था। अतः ‘चीनपीष्ट’ शब्द रख दिया। उस ज़माने में व्यापारी चमड़े के थैले में भर कर हिंगुल लाया करते थे; इसलिये “चर्मार गन्धिका” नाम रख दिया। काच के पीछे हिंगुल की कलई की जाती है; जिससे उसमें प्रतिविम्ब दीख सके, इस कार्य को बतलाने के लिये “रत्नरागकारी” पर्याय बना दिया।

चीन में अबतक हिंगुल को पीसकर ही व्यापार में लगाते हैं। (देखो मोनोग्राफ़ अफ़ेन मर्करी आर्सेन पृष्ठ ५६) ‘दरद’

शब्द स्थान बाची है। सर पी० सी० राय महोदय ने अपने प्रसिद्ध 'हिस्टरी आफ हिन्दू केमिस्ट्री' नामक ग्रन्थ के पृष्ठ ७८ प्रथम भाग में लिखा है कि हिंगुल काश्मीर के समीप वाले दरदिस्थान से आता था इसलिये इसको दरद कहते थे। किन्तु सर्वे आफ इन्डिया की रिपोर्ट में इस स्थान में हिंगुल होने का कोई जिक्र नहीं है। मेरी राय में यह स्थान अरब सागर और फ़ारस की खाड़ी में हैं जिसको दोरदुर कहते हैं। यह दो पहाड़ियों के बीच का तंग समुद्री मार्ग है। सम्भवतः इसी मार्ग से या स्थान से यवन लोग हिंगुल भारत में लाया करते थे इसलिये संस्कृत में दोरदुर को शुद्ध बनाकर "दरदः" कर दिया गया हो। इस स्थान का वर्णन "सुलेमान सौदागर" नामक पुस्तिका (काशी नागरी प्रचारिणी सभा से प्रकाशित) में देखें। मुसलमान सौदागर पारद और हिंगुल की खोज में फिरते थे और उसका ज्ञान रखते थे। इसका वर्णन बाल नामक विद्वान ने किया है कि एंडमन आइलैण्ड (*Andaman Islands*) में भी पारद मिलता है। उसका मुसलमान सौदागरों ने जिक्र किया है। बिबलियोग्राफी (*Bibliography*) के पृष्ठ ३६३ पर इस प्रकार लिखा है—

Ball quotes a statement made by Mahommedan travellers in the ninth century, to the effect that a party of sailors, having landed on an island supposed to be one of the Andamans, and having lit a fire, saw a metal resembling molten silver run from the heated rock. They are said to have brought away a quantity of the ore,

but were compelled by storm to throw it overboard; and the locality though carefully sought for, was never again identified.

• Another account by Hamilton (744 vol., II 66; quoted by Mouat 1263-3-12) states that a slave from the Little Andaman, who had been permitted to revisit his country, brought away a quantity of Quick-silver which he reported to be abundant.

Ball appears to consider it possible that Cinnabar may occur in connection with the intrusions of serpentine known to exist in the islands (B. 171).

यवन लोग यहां से ज्ञान भंडार लेकर अनेक बार लाभ उठा चुके हैं। चक्र, सुश्रुत आदि का अनुवाद कर चिकित्सा नैपुण्य भी प्राप्त किया है। रसकर्म कौशल्य भी भारत से ही प्राप्त किया एवं उसके उपयोगी द्रव्य लाकर व्यापार से भी यथेष्ट लाभ उठाते रहे हैं। सर पी. सी. राय ने अपने ऐतिहासिक ग्रन्थ में भली प्रकार इस बात का विस्तार पूर्वक वर्णन किया है।

कृष्ण वर्ण के हिंगुल को 'चर्मरिः' पीले रंग वाले को सुपीतकः और लालरंग वाले को हंसपादः, शुक्रतुण्डकः नाम दिये गये हैं। उपरोक्त नव्य मत में सब प्रकार के प्राप्य पारदीय खनिजों का वृत्त दिया जा चुका है। आजकल मुख्य खनिज रक्त हिंगुल का ही वर्णन यत्र तत्र आधुनिक ग्रन्थों में पाया जाता है और वह भी दुर्लभ हो गया है। इसीलिए खनिज

और कृत्रिम का भेद समझाना कठिन हो गया है । पर हर्ष है कि अब पूर्वाचार्यों के मतों का फिर से गवेषणा पूर्वक विचार होने लगा है । मेरे मित्र लाहौर (पंजाब) निवासी स्वनाम-धन्य कविराज नगेन्द्रनाथ मित्र महोदय ने हाल ही में “रस तरंगिणी ” नामक एक नवीन ग्रन्थ प्रकाशित किया है उस में दोनों प्रकार के हिंगुल का वर्णन किया है—

“ जपाकुसुमवर्णाभिः पेपणो सुमनोहरः ।
महोज्ज्वलो भारपूणी हिंगुलः श्रेष्ठ इष्यते ॥
प्रथमः खनिजोऽन्यस्तु कृत्रिमो हिंगुलो मतः ।
खनिजः खनितो जातः कृत्रिमो रसगन्धजः ॥

(रस तरंगिणी पृष्ठ ८७)

हिंगुल के विषय में रस कामधेनु में इस प्रकार का वर्णन मिलता है जो बहुत ही रम्य और प्राप्त होने वाले पारदीय अनेकों खनिजों के वर्णन युक्त है । हिंगुल के जितने पर्याय इस ग्रन्थ में पाये जाते हैं वे अन्य ग्रन्थों में नहीं देखे जाते । जैसे—

हिंगुले हिंगुलुर्मेच्छ हिंगुलंगुल हिंगुलम् ।
चर्मरवर्धनं चूर्णपारदो दरदाह्वयम् ॥
कुरुविन्दं चीनपिष्टं लघुकन्दरसं पुनः ।
चर्मरगन्धिकारत्नरागकारि च हंसकम् ॥

(१० का० पृ० २७२)

दरदस्त्रिविधो रक्तश्चर्मरः शुक्रतुंडकः ।
हंसपादस्तृतीयस्याद्गुणवानुत्तरोत्तरम् ॥

(शैवालभट्टयमते)

चर्मरः कृष्णरूपः स्यात्सुपीतः शुक्रतुंडकः ।
 जपाकुसुमसंकाशो हंसपादो महोत्तमः ॥
 हंसपादं च यत्प्रोक्तं तारकर्मणि योजयेत् ।
 तद्धेमकिट्टसदृशं तदन्यत्तीक्ष्णमारण्ये ॥
 (पुरन्दर रहस्य)

जपाकुसुमसंकाशो हंसपादो महोत्तमः ।
 रसायने सर्वलोहमारण्ये रसरञ्जने ॥
 हीरकद्युतिसंकाशं प्रमाणाद्भीरकात्क्वचित् ।
 क्वचित्पर्पटिकाभासं गलद्रूप्यनिभं क्वचित् ॥
 पिंडरूपमिदं साक्षाद्दृश्यते दृष्टिसौख्यदम् ॥
 (गोरक्षमते)

हिङ्गुल सेवन विधि

भक्षयेद्रत्निकामेकां मरिचेन समन्विताम् ।
 गुडेनावेष्ट्य मतिमान् ज्वरनाशाय तं पुनः ॥
 मन्देऽग्नौ वाऽथ हृद्रोगे दद्याच्चौण्डीं रसेन च ।
 अम्लपित्ते प्रदातव्यं विशल्यासत्त्व* संयुतम् ॥
 बल्यं वाजीकरं मेध्यं हृदुत्साह करं परम् ।
 एतस्मान्नापरं भद्रं विद्यते रस भस्मवत् ॥
 तिकोष्णं हिङ्गुलं दिव्यं रसगन्धकसंभवम् ।
 मेढकुष्ठहरं वृष्यं बलमेदोग्निदीपनम् ॥
 (रस कामधेनु पृ० २७३)

अनेक प्राप्य रसग्रन्थों के अनुशीलन से और अर्वाचीन खनिज शास्त्रों के ऊहापोह से यह विदित होता है कि प्राचीन

† शौंडी पिप्पली । * विशल्या गुडुची ।

कालमें खनिज हिंगुल ही व्यवहार होता था । पारद और उसके खनिज अरब, चीन, जापान आदि देशों के व्यापारी स्थल या जलमार्ग से लाकर यहाँ पर बेचा करते थे । किन्तु स्लेच्छों के आक्रमण काल में बाह्य व्यापार अधिकांश में बन्द सा हो गया एवं देश के अन्दर ही रासायनिक विधि से हिंगुल बनाकर चिकित्सा व्यापार तथा रँग आदि का व्यवहार चलाया जाने लगा । स्त्रियाँ हिंगुल की विन्दु लगाना सौभाग्य का चिह्न समझती हैं । आजकल भी इंगुर (इंगुल) के नाम से इस प्रान्त में इसका व्यवहार होता है । इसे साधारणतया सिन्दूर (गिरि सिन्दूर) भी कहते थे । यह गिरि सिन्दूर (मर्करी ओक्साइड) का ही नाम है । रसरत्नसमुच्चय में लिखा है—

महागिरिषु चाल्पीयः पाषाणान्तःस्थितो रसः ।

शुष्कशोणः स निर्दिष्टो गिरिसिन्दूरसंज्ञया ॥

त्रिदोषशमनो भेदि रसबन्धनमग्रिमम् ।

देह लोहकरं नेत्र्यं गिरिसिन्दूरमीरितम् ॥

(रसरत्नसमुच्चय पृष्ठ ३७)

किन्तु खेद है कि आजकल गिरि सिन्दूर शब्द नागसिन्दूर (लेडपेरोक्साइड) के लिये व्यवहृत होने लग गया है, और जहाँ जहाँ सिन्दूर का व्यवहार होता है वहाँ पर यही काम में लाया जाता है । मेरी राय में यह भ्रमात्मक है, और जिन जिन योगों में इसका व्यवहार आता है वहाँ पर पूर्ण ऊहापोह के अनन्तर ही गिरि सिन्दूर या नाग सिन्दूर डालने की व्यवस्था देना चाहिये । नाग सिन्दूर बनाने की व्यवस्था 'भ्रायुर्वेद प्रकाश' में इस प्रकार है—

भूमुजङ्गमगस्ति च पिष्ट्वाऽहेः पत्रमादिहेत् ।
 हण्डयामग्नौ द्रवीकृत्य वासापामार्गसंभवम् ॥
 क्षारं विमिश्रयेत्तत्र चतुर्थांशं गुरुकितः ।
 प्रहरं पाचयेच्चुलल्यां वासादव्यां विघट्टयन् ॥
 चूर्णीभूतं पिधायथ कुर्यादग्निं समं पुनः ।
 तत उद्धृत्य तच्चूर्णं शुद्धया शिलयाऽन्वितम् ॥
 वस्वंशयाऽथ तत्सर्वं वासानोरेर्विमर्दयेत् ।
 पुटेत्पुनः समुद्धृत्य तद्द्रवेण विमर्दयेत् ॥
 एवं सप्तपुटैर्नागः सिन्दुराभो भवेद्द्रुवम् ।

(४४ १३०-१३१)

आज कल रक्तवर्ण का 'लेड पेरोक्साइड (नागसिन्दूर)
 वार्निश के काम में बहुतायत से काम में आता है । वैद्यों को
 इस समय बहुत ही सावधानी से औषध द्रव्य संग्रह करने की
 आवश्यकता है ।'

कृत्रिम हिङ्गुल बनाने का प्रचार 'रसरत्नसमुच्चय' के
 संग्रह काल के अनन्तर हुआ है । क्योंकि उसमें तथा उसके
 समकालीन अन्य संग्रह ग्रन्थों में इसके निर्माण का वर्णन
 नहीं है, न सर पी० सी० राय ने भी इसका उल्लेख किया
 है । इससे स्पष्ट जाना जाता है कि कृत्रिम हिङ्गुल निर्माण विधि
 भाव मिश्र के बाद यहाँ प्रवृत्त हुई है । 'भावप्रकाश' में रसकपूर
 निर्माण विधि तो लिखी है किन्तु रासायनिक विधि से हिङ्गुल
 बनाने का कहीं उल्लेख मात्र भी नहीं है । अस्तु आज कल सारे
 देश में कृत्रिम हिङ्गुल का ही प्रचार हो रहा है । अल्प संख्यक
 विज्ञ वैद्यों के अतिरिक्त वंश समुदाय यह भी नहीं जानता कि

हिंगुल कहां से आता है और वह कृत्रिम है या खनिज। मुझे रसशास्त्र में प्रारम्भ से ही रुचि थी और मैं सदा इसके आश्चर्यकारक गुणों का विचार करता रहता था, और बाजारों की दशा देखकर यह भी निर्णय करता रहता था कि हमारे देश में खनिजों के अतिरिक्त किन किन रासायनिक द्रव्यों का आजकल व्यवहार हो रहा है। ज्यों ज्यों इसकी खोज की त्यों त्यों पता लगा कि हमलोग तो अधिकांश में सारे ही द्रव्य विदेशीय लेते हैं, और अपने शास्त्र के द्रव्यों का विचार ही नहीं करते। हिन्दू विश्वविद्यालय में प्रवेश करने पर सौभाग्य से यह पता लगा कि यहां पर जितना अच्छा खनिज-द्रव्यों का संग्रह है उतना देश के अन्य विश्वविद्यालयों में कहीं नहीं है, न किसी विज्ञ के अन्दर यह रुचि है कि वह अपने देश के रासायनिक चिकित्सा व्यवसाय का पुनरोद्धार करने का प्रयत्न करे। यहां के अधिकारी यथासम्भव आयुर्वेद के पुनरुद्धार के लिये चेष्टा कर रहे हैं और सब विद्वानों के हृदय में इस ओर सहानुभूति है। इसका लाभ यह हो रहा है कि जो विषय ज्ञातव्य है वह शीघ्र ही मालूम किया जा सकता है, आप चाहे जब किसी भी विद्वान से किसी समय में परामर्श ले सकते हैं। मैंने भी अपनी हार्दिक रुचि पूर्ण करने का सुअवसर पा सब खनिज और रसायनविज्ञों से परामर्श करना प्रारम्भ कर दिया और उनकी पूर्ण सहायता, उदारता और सज्जनता से अनेक प्रकार के खनिजों का मूल्यवान संग्रह सहज ही में साहित्य सहित प्राप्त हो गया। इसीके आधार पर रस-शास्त्र के खनिजों का तुलनात्मक विचार करने से खनिज और कृत्रिम द्रव्यों का ज्ञान होने लगा। मैंने इस संग्रह को वैद्य सम्मेलनों में

ले जाकर देश के सभी उच्च आयुर्वेदीय विद्वानों के सामने रखना प्रारम्भ किया। इसका फल यह हो रहा है कि वैद्य बन्धु शीघ्रता से इस भेद को समझने लगे हैं और विचार के साथ द्रव्यसंग्रह की चेष्टा अधिकांश में करने का प्रयत्न करने लगे हैं। किन्तु यह खेद का विषय है कि देश में कोई ऐसी संस्था नहीं है कि मूल्य पंसारियों के हाथ से यह व्यापार लेकर संसार भर से उत्तम द्रव्य मँगावे और वैद्यों को सरलता से प्राप्त कराने की चेष्टा करे। ऐसा न होने से उत्तम खनिज प्राप्त होने में बहुत बाधा हो रही है जिससे यथेष्ट प्रचार नहीं होता। किन्तु आशा है कि यह प्रारम्भिक श्रुति शीघ्रही दूर हो जायगी और विश्व समुदाय इस देश-हितकारक व्यापार को अपनाकर चिरकालिक जति को पूर्ण करने की शीघ्रही चेष्टा करेगा। वैद्यों के अन्दर उत्तम और ठीक शास्त्रीय द्रव्य प्राप्त करने की तीव्र इच्छा होना आवश्यक है। जहाँ इस बात की माँग होने लगी कि हम कृत्रिम हिंगुल नहीं लेंगे खनिज हिंगुल आवश्यक है, तुरन्त व्यवसायीगण पारद आदि की तरह अन्य खनिज-मँगाकर बाजारों में सुलभ कर देंगे। आजकल संसार में पारद खनिज-हिंगुल से ही अधिकांश में निकाला जाता है।

बाजार में आजकल दो प्रकार का कृत्रिम हिंगुल विक्रयार्थ आ रहा है। एक को 'कठा' और दूसरे को 'रुमी' कहते हैं। रुमी, सूरत (गुजरात) में बनता है। सूरत में इसके बड़े बड़े कारखाने हैं। प्राचीन रीति से रसकर्पूर को बनाने वाले व्यापारी ही इसे भी बनाते हैं। दूसरा कठा बङ्गाली कहलाता है। सुना जाता है कि मुर्शिदाबाद (बङ्गाल) में इसके कारखाने हैं। किन्तु सबसे अधिक अमेरिका, इंग्लैंड, जर्मनी आदि

पाश्चात्य देशों से आकर बिकता है। सूरत के वैद्य कहते हैं कि यहां के व्यापारी विलायती ढङ्ग से गंधक के तेजाब के योग से हिंगुल बनाकर बड़ा लाभ उठा रहे हैं। वहां के हिंगुल के एक व्यापारी ने भी यह स्वीकार किया कि गंधक के तेजाब से बनाने से आंच कम देना पड़ती है और माल शीघ्र तय्यार हो जाता है, किन्तु गुण में प्राचीन ढङ्ग से बना हुआ ही अच्छा होता है। सूरत आदि के प्राचीन वैद्य पहिले इसे बनवाया करते थे। वहां वाले अब भी इसे बनाने को राजी हैं। मैंने इसकी व्यवस्था की है कि बड़ी मात्रा में प्राचीन ढङ्ग से ही हिंगुल बनवाकर अनुभव किया जाय।

हिंगुल बनाने की भारतीय विधि—

“अशुद्धं पारदं भागं चतुर्भागश्च गन्धकम् ।
उभौ क्षिप्त्वा लोहपात्रे क्षणं मृद्वग्निना पचेत् ॥
तस्मिन्मनःशिलाचूर्णं पारदादशमांशकम् ।
क्षिप्त्वा चाल्यमयोद्व्या ह्यवतार्य सुशीतलम् ॥
ततस्तु खण्डशः कृत्वा काचकूप्यां निरुध्य च ।
वस्त्रमृत्तिकाया सम्यक्काचकूपीं प्रलेपयेत् ॥
सर्वतोऽङ्गुल मानेन द्वायाशुष्कंतु कारयेत् ।
वालुकायन्त्रगर्भे तु दिनं मृद्वग्निना पचेत् ॥
क्रमवृद्धाग्निना पश्चात्पचेद्विषसपञ्चकम् ।
सप्ताहात्तत्समुद्धृत्य हिंगुलं स्यान्मनोहरम् ॥

(रस कामधेनुः पृष्ठ २७४)

भावार्थ—अशुद्ध पारद १ भाग, गंधक ४ भाग, दोनों लोहे की कड़ाही में डालकर थोड़ी देर तक मन्द आंच से पकावे, बाद में पारद की अपेक्षा दशमांश मनःशिलाचूर्ण मिलाकर

लोह की दूर्वा (कड़ली) से हिलाकर स्वांग शीतल होने पर उतार दे । यह कृष्णवर्ण का एक ढेला सा बन जायगा । फिर इसके छोटे छोटे टुकड़े कर आतिशी शीशी में भर दे और उसपर कपड़मिट्टी करदे । कपड़मिट्टी की तह एक अंगुल मोटी चारों ओर से होनी चाहिए । उसे छाया में सुखाकर वालुका यंत्र से, सिन्दूर विधि से, एक दिन मन्द अग्नि से पाक करे । बाद में क्रम वृद्धाग्नि से पाँच दिन तक अग्नि देता रहे । एक सप्ताह के बाद स्वांग शीतल होने पर आतिशी शीशी सावधानी से तोड़कर हिंगुल निकाल ले । इसी तरह के पाठ रसायनसार पृष्ठ १११, बृहद्रसराज सुन्दर पृष्ठ १३२ और आयुर्वेद प्रकाश पृष्ठ ७५ पर भी मिलते हैं । योरोपीय ढंग से हिंगुल बनाने की विधि का संस्कृत अनुवाद रसतरंगिणी में बहुत सुन्दर दिया है ।

पाश्चात्य ढंग से हिंगुल बनाने के विधि—

“वसुभागमितं गन्धं सूतं नेत्रयुगोन्मितम् ।
 मृदङ्गयंत्रे संस्थाप्य वारङ्गं भ्रामयेत्ततः ॥
 तस्य संभ्रमणादेव श्लक्ष्णचूर्णं प्रजायते ।
 व्यावर्तनपिधानञ्च संभ्राम्य ह्यवतारयेत् ॥
 चूर्णं धूसरवर्णाभं यन्त्रान्निष्कासयेत्ततः ।
 सुदृढायां ततः स्थाल्यां चूर्णमेतन्निधापयेत् ॥
 रेखान्वितमुखी स्थाली बुधैरत्र प्रशस्यते ।
 व्यावर्तनमुखीमन्यां स्थालीं तस्यां निधापयेत् ॥
 स्थालीं संभ्राम्य परितो यत्नतो रोधयेन्मुखम् ।
 ततः संस्थापयेच्चुल्यां वह्निं दद्याच्छनैः शनैः ॥
 अधःस्थालीकण्ठसंस्थं हिंगुलं तु समाहरेत् ।
 ऊर्ध्वस्थालीदलस्थञ्च पुनः पक्त्वा समाहरेत् ॥ (पृष्ठ ८७)

हिङ्गुल से पारदाकृष्टि की विधि

बनावटी हिङ्गुल से अथवा खनिज हिङ्गुल से विद्याधर यन्त्र और डमरू यन्त्र से निकाला हुआ पारद बिल्कुल शुद्ध होता है ।

हिङ्गुलाकृष्टि विद्याधर यन्त्रम् ।

स्थालिको परि विन्यस्य स्थालिसम्यक् निरुध्यच ।

ऊर्ध्वस्थाल्यां जलं क्षिप्त्वा वह्निं प्रज्वालयेद्धः ॥

एतद्विद्याधरं यन्त्रं हिङ्गुलाकृष्टि हेतवे ।

भावार्थ—एक मजबूत हाँडी लेकर उसमें हिङ्गुल का चूरा रखकर दूसरी हाँडी को उसके मुखपर ढककर सन्धि बन्द कर ऊर्ध्व हाँडी में जल भर दे, यह जल उष्ण होनेपर बदलता रहे । हिङ्गुल के अनुसार ८ से २४ प्रहर की आँच देकर स्वाँग शीतल होनेपर ऊपर की हाँडी की पेंदी में लगे हुए पारद को सावधानी से एकत्रित करले ।

डमरूयन्त्रम्

यन्त्रस्थाल्युपरि स्थालीं न्युञ्जां दत्त्वा निरुधयेत् ।

यन्त्रं डमरूकारूपं तद्रस भस्म कृते हितम् ॥

(रस २० स० पृष्ठ ६७)

भावार्थ—एक ढढ़ हाँडी लेकर उसमें हिङ्गुल रखकर ऊपर घिसे हुये मुँह की उलटी हाँडी ढककर उसका सन्धि बन्धन करे एवं ऊपर की हाँडी पर आलवाल (गीली मट्टी का घिरोँदा) शीतल जल प्लोत रखने के लिए बनादे । इस प्रकार के यन्त्र से पारद का ऊर्ध्वपातन बहुत अच्छा होजाता

है। सन्धि लेप बहुत दृढ़ होना आवश्यक है अन्यथा सारा पारा उड़कर सन्धि व्यवधान से बाहर निकल जाता है। इस प्रकार से पारद निकालकर विश्लेषण कर के देखा गया है कि पारद एकदम निर्मल “मर्क कम्पनी के एक्स्ट्रा प्योर मर्करी” के समान ही होता है। पारद निकालने की एक दूसरी क्रिया आजकल प्रचलित हो रही है, उसे वत्ति यन्त्र कहते हैं, इसका उल्लेख ‘सिद्ध भैषज मणिमाला’ और ‘रसायनसार’ में है।

वत्ति यन्त्र

“यावत्प्रमाणं दरदं गृहीतं,
तावत्प्रमाणञ्च पटम्प्रगृह्य ।
प्रसार्य चूर्णं खलु हिङ्गुलस्य,
निर्धौत वस्त्रेऽम्लसुभाषितस्य ॥
वस्त्रन्तथाऽऽकुञ्चयता बुधेन,
यथा न सङ्घातमुपैति चूर्णम् ।
कार्यन्तयोर्वर्तुल गोलकञ्च,
लङ्ङकवर्द्धिगुल वस्त्रयोस्ततः ॥
वद्ध्वा पुनस्सूत्र मुखेन सम्यग्,
लोहस्य तापे निदधीत धीमान् ।
तथा यथानैति चलत्व वृत्तिम्,
गतिङ्कपालैः कतिभिः सुरुध्य ॥
वेद प्रमाणाङ्गुल मुच्छिक्ते द्वे,
दृढेष्टके भूमि तले निदध्यात् ।
लम्बेन पत्रेण समास्तृते च,
तयोर्ऋज्वीषं ह्यपवेशयेत् ॥
प्रज्वालय दीपस्य शलाकया,

तद्गोत्थ नान्धा पिदधीत धीमान् ।

यन्त्रे सुशीते स्वयमेव नान्दी,

मुत्थाप्य गृह्णातु विशुद्धसूतम् ॥

(रसायनसार पृष्ठ १०३.)

इस विधि का संक्षेप यह है कि हिंगुल को अम्लरस की भावना देकर बख में फैलाकर कन्दुकाकार का गोला बनाकर ईंटों पर तवा रख उसपर गोला जमादे और ऊपर से एक नाँद इस प्रकार ढक दे कि जिससे वायु का संचार न रुके और अग्नि बन्द भी न हो सके, ऐसा प्रबन्ध करने के उपरान्त दियासलाई से आँच लगादे। यह आँच कपड़े को धीरे धीरे जलाती है जिससे गंधक जल जाता है और पारद ऊपर की नाँद पर या तवे पर ही मिलता है। इस प्रकार से पारद निकालकर विश्लेषण करके देखा गया तो विदित हुआ कि इस पारे में वे सब अशुद्धियाँ मौजूद थीं जो प्रायः बाज़ार के पारद में पाई जाती हैं। इस प्रकार का पारद औषधि के व्यवहार के सर्वथा योग्य नहीं है।

इसके अतिरिक्त और भी दो तीन विधियाँ व्यवहार में हैं किन्तु डमरु यंत्र के अतिरिक्त कोई विधि विश्वसनीय नहीं है।

आजकल जहाँ पर पारद की बड़ी बड़ी खाने हैं वहाँ पर पारद प्रायः खनिज हिंगुल से निकाला जाता है। जो खनिज पारद निकालने के लिए लिया जाता है उसमें सामान्यतया १ से १ फी सदी तक पारद की मात्रा रहती है। शेष अन्य द्रव्य मिले रहते हैं। पारद उड़नशील है इसलिए पारद की वाष्प को एकत्रित करने के लिए स्नान्ध रहित शीतल रहने योग्य

बहुतही उत्तम यंत्र की आवश्यकता है। साथही मन्द आँच देने वाली भट्ठी भी होना चाहिए, अन्यथा पारद कम प्राप्त होता है। साधारणतया व्यापार के लिए बाजारू पारा नीचे लिखे अनुसार निकाला जाता है।

(१) खुले हवादार स्थान में खुले चीनी की कलई के बर्तन में हिंगुल रखकर मन्द मन्द आँच देते हैं जिससे गंधक उड़ जाता है और पारद नीचे रह जाता है।

(२) इसी प्रकार हिंगुल को चूने के साथ मिलाकर गरम करते हैं जिससे गंधक चूने के साथ मिलकर एक रासायनिक यौगिक में परिणित हो जाता है और पारद पृथक हो जाता है।

(३) पारद निकालने के लिए हिंगुल को लोहचूर्ण के साथ मिलाकर गरम करते हैं जिससे लोह गन्धक का एक रासायनिक योग बनकर अलग हो जाता है और पारद पृथक हो जाता है।

इस प्रकार से निकाला हुआ पारद विशेष कार्य के लिए फिर उड़ाकर वेक्यूम (vacuum शून्य) विधि से या डमरू यन्त्र से शुद्ध करते हैं। मर्क कम्पनी का पारद जो रसायनशाला के लिए आता है वह दो बार उड़ाया हुआ होता है। आयुर्वेद के रसशास्त्रियों ने ऊर्ध्वपातन, अधोपातन और तीर्यक्पातन विधि से पारद का विशेष शोधन करना लिखा है। यह विधि प्रकृति में स्वतन्त्र मिलने वाले खनिज-पारद (Native mercury) के लिए समझना चाहिए। हिंगुल से डमरूयन्त्र (पातन यन्त्र) के द्वारा निकाला हुआ पारद औषधि में व्यव-

हार करने योग्य माना है, वस्तुतः रासायनिक विश्लेषण से भी यह पारद एकदम शुद्ध होता है अर्थात् केवल पारद होता है। उसके अन्दर अन्य कोई भी धातुजन्य अशुद्धि नहीं रहती। इसीलिए लिखा है कि हिंगुलोत्थ पारद सप्तकञ्चुक रहित है। ये कञ्चुक अन्य धातुओं के संयोग से बनते हैं।

“द्वन्द्वं पातने यन्त्रे पातयेत्सलिलाशये ।

सत्त्वं सूतक संकाशं जायते नात्र संशयः ॥

(रसार्णव)

तं सूतं योजयेद्योगे सप्तकञ्चुकवर्जितम् ॥

ज्वरादि हरणे सर्व रसेषु विनयोजयेत् ॥

(रसदर्पण)

भावार्थ—हिंगुल को पातन यन्त्र में रखकर मन्द आँच से उड़ाकर जलाशय में एकत्रित करे। जो पारद इस प्रकार उड़ाकर संग्रह किया जायगा वह एकदम शुद्ध होगा। इस सप्तकञ्चुक वर्जित पारद को ज्वरादि रोगनाशक सब प्रकार के रसों में व्यवहार करे। मेरी राय में ब्रिटिश फार्माकोपिया के औषधि निर्माण निमित्त जो पारद केमिस्ट लोग तय्यार करते हैं वह रसशास्त्र के योगों में भी निःसंकोच व्यवहार किया जा सकता है।

पारद के गुण और दोष

प्राकृतिक पारद हिंगुलोत्थ पारद, और उसके रस कर्पूरादि यौगिक दाहक विष हैं (देखें ट्रीटीज़ आन केमिस्ट्री, भाग दूसरा, दी मेटल्स, रास्को और शोर्लेमर कृत पृष्ठ ५३५) पारद में अन्य धातु भी प्रायः मिले रहते हैं। आजकल पारद से सुवर्ण बनाने की

चेष्टा करने वाले वैज्ञानिकों का विचार है कि पारद से सुवर्ण किसी दशा में भी पृथक् करना प्रायः असम्भव सा है, अर्थात् कदाचित् ही किसी स्थान पर शुद्ध पारद प्रकृति में प्राप्त हो सकता है। सम्भवतः इसी विचार के प्राचीन रस-शास्त्रियों ने पारद में तीन नैसर्गिक दोष माने हैं।

“विषं वह्निर्मलञ्चेति दोषानैसर्गिकास्त्रयः”

(२० २० स० पृष्ठ ११३)

अर्थ—विष, अग्नि और मल ये पारद के स्वाभाविक दोष हैं।

मारक होने के कारण विष, दाहकता के लिए वह्नि और धात्वान्तर संयोग को मल दोष माना गया है एवं क्रमशः अलग अलग इनके प्रभाव लिख दिये हैं।

“रसे मरण सन्ताप मूर्च्छानां हेतवः क्रमात् ।”

भावार्थ—ये दोष क्रमशः मरण, सन्ताप और मूर्च्छा के कारण होते हैं।

यही बात आजकल के विज्ञ भी मानते हैं। घाेष की (मेटेरिया मेडिका) के पृष्ठ ४४ई पर पारद प्रयोग के एक्ज्यूट टोक्सिसन एक्शन (तात्कालिक पारद विष प्रभाव) शीर्षक में लिखा है। उसका भावार्थ यह है कि पारद के यौगिक विशेषकर रस कर्पूरादि (रस कर्पूर, केरोसिन सबलिमेट) रस पुष्प (केलोमल, सुधानिधि रस) मुग्धरस (त्रे पाउडर) कोष्ठ में भयङ्कर प्रभाव करते हैं, जिस से वमन, विरेचन, शूल, रक्तातिसार, मूर्च्छा और अन्त में मरण होता है।

Acute Toxic action—Acute poisoning is not common. Mercurials especially the Mercuric Salts, produce severe gastro-enteritis with vomiting, pains, purging, and bloody stools, collapse, and even death.

Materia Medica and Therapeutics by R. Ghosh.

(Page 446.)

इसीलिए पारद के संस्कार करने की व्यवस्था रस शास्त्रों में की गई है कि जिससे ये दोष कम हों और द्रव्यान्तर संयोग से रोगनाशक व शक्तिप्रद गुण उत्पन्न हो जावे।

पारद का विषप्रभाव तो स्वाभाविक है। जब खान से पारद निकलता है, उसके साथ में संखिया और एन्टिमनी (स्रोतोजन) निकलते हैं (देखो मिनरल डिपोजिट्स पृष्ठ ४४६ *Mineral Deposits by Waldemar-Lindgren*) ये दोनों द्रव्य भयङ्कर विष हैं और उड़नेवाले भी हैं, इसलिए पारद की शुद्धि करते समय इनकी अशुद्धियों को दूर करने का भी अवश्य ध्यान रखना चाहिए। पारद में दो यौगिक-दोष नाग (Lead लेड) और बंग (Tin टिन) के माने गये हैं। यह नव्य दृष्टि से भी बिल्कुल ठीक है।

“यौगिकौ नाग वङ्गौ द्वौ तौ जाऽध्याधानकुष्ठौ।”

(२० २० सं० पृष्ठ ११३)

घोष की मेटेरिया मेडिका ऐण्ड थेराप्युटिक्स नामक ग्रन्थ में लिखा है कि पारद में लेड, टिन और अन्य धातुओं की अशुद्धि रहती है (Impurities—Lead, Tin and other

metals पृष्ठ ४३६)

अन्य धातुओं के विषय में लाडर ब्रन्टन नाम के विद्वान ने अपने 'फार्मकोलोजी थेराप्युटिक्स ऐंड मेटेरिया मेडिका' नामक ग्रन्थ के पृष्ठ ६६१ पर लिखा है कि "Other metals especially lead, arsenic and antimony may be present. अर्थात् अन्य अशुद्धियों में लेड, नाग, आर्सेनिक (संख्या) और एन्टिमनि (घोतोजन) हो सकते हैं। इन अवतरणों से स्पष्ट है कि पारद में अन्य धातु मिले रहते हैं, इस लिए मलदोष मानना सर्वथा सत्य और ज्ञातव्य है।

पारद के मिश्रक

धातुओं के परस्पर मिश्रण को अंग्रेजी में अलोय (Alloy) कहते हैं। पारद के प्रसङ्ग में 'रसरत्नसमुच्चय' में अलोय बनाने की विधि इस प्रकार लिखी है।

"काष्ठौषध्यो नागे, नागो वङ्गेऽथ वङ्गमपि शुल्बे
शुल्बंतारे तारं कनके, कनकं च लीयते सूते ॥"

अर्थात् काष्ठ ओषधियों के सत्वक्षारादिक नाग के साथ मिलकर मिश्रण बनाते हैं, इसी प्रकार नाग और बंग, बंग और ताम्र, ताम्र और रजत, रजत और सुवर्ण, सुवर्ण और पारद मिलकर व्यवहारोपयोगी मिश्रक (Alloy) बनाते हैं। अब विचारणीय यह है कि सप्तकञ्चुक क्या है। आधुनिक रसायन और खनिज विज्ञान के परिशीलन से पता चलता है कि पारद प्रायः सब धातुओं से भारी है। जब यह अन्य धातुओं के साथ मिलकर मिश्रण (अलोय) बनाता है तब यह दूसरे धातुओं के नीचे की ओर रहता है और मिश्रण के अन्य धातु इसके ऊपर आवरण की भाँति तैरते रहते हैं, इसलिए इसके इस प्रकार

के आवरण को कञ्चुक कह सकते हैं। रसायन किंवा रास्को ने नीचे लिखे धातुओं के साथ पारदीय मिश्रक (Alloy of Mercury) बनना लिखा है। ये मिश्रक धातुओं के अनेक व्यवहारोपयोगी रूपान्तर बनाने के लिए किये जाते हैं।

पारद के मिश्रक अत्यधिक दबाव पर (on very high pressure) विश्लिष्ट हो जाते हैं अर्थात् पारद अलग निकल आता है। सम्भवतः इसी ज्ञान के आधार पर आयुर्वेद के रसशास्त्रज्ञों ने पारद को शुद्ध करने के लिए अनेक प्रकार की शोधन विधियों का आधिष्कार किया है। साधारणतया पारद प्लेटिनम गेबर (The Latin Geber) के लेखानुसार बंग, सुवर्ण, ताम्र, रजत, और लोहे के साथ मिलता है। इसके बाद के लेखकों के अनुसार यह यशद, नाग और पेल्लेदियम (Palladium) नामक धातु के साथ भी मिलता है। लोह के साथ कठिनता से मिलता है। बाज़ार में ये मिश्रक व्यापार के लिए आते हैं। पारद और बंग का मिश्रक दर्पण पर कलई करने के काम में लाया जाता है। सुवर्ण और रजत के पारदीय मिश्रक सोनहरी, रूपहरी गिल्ट की कारीगरी में उपयुक्त होते हैं। यशद और बंग के पारदीय मिश्रक विद्युत् यंत्रों की रबर पर चढ़ाने के लिए तय्यार होते हैं। इसी प्रकार भिन्न भिन्न मात्रा से बने हुए रजत, ताम्र, बंग और कभी कभी सुवर्ण और प्लेटिनम के पारदीय मिश्रक दाँतों के खुक्खल भरने के काम में आते हैं। इनके अतिरिक्त पोटासियम (Potassium) सोडियम (Sodium) अमोनियम (Ammonium) कैडमियम (Cadmium) के अमालगम (Amalgams) भी तय्यार होते हैं।

पारद के कञ्चुक

भिन्न भिन्न प्रकार के धातुओं के साथ मिलने से पारद-मिश्रक (Alloys of mercury) का रूप, रङ्ग, गुण, धर्म पृथक् पृथक् होते हैं, इसीलिए कञ्चुक औषाधिक दोष पारद में माने गये हैं।

“औषाधिका पुनश्चान्ये—

कीर्तिताः सप्त कञ्चुकाः” ॥

“पर्पटी पाटिनी भेदी द्रावी मलकरी तथा ।

अंधकारी तथा ध्वांती विज्ञेयाः सप्त कञ्चुकाः ॥

(र. र. स. पृष्ठ ११३)

इस पाठ से स्पष्ट है कि पर्पटी आदि नाम-कल्पना पारदीय-मिश्रक की आकृति, गुण और कार्य के ही आधार पर की गई है। इसीलिए ठीक इसी श्लोक के नीचे लिखा है कि—

“तस्मात्सूत विधानार्थं सहायैर्निपुणैर्युतः ।

संस्कारोपस्करमादाय रसकर्म समाचरेत् ॥

भावार्थ—इसलिए कि पारद में औषाधिक कञ्चुक रहते हैं, अतः सूत विधानार्थ अर्थात् पारद को पृथक् करने के निमित्त निपुण रसायनविज्ञ सहायकों के साथ सब आवश्यक सामान एकत्रित कर रसशोधन कर्म प्रारम्भ करें। इसी प्रकार के अन्य अनेक प्रमाणों से सिद्ध है कि कञ्चुक धात्वन्तर और द्रव्यान्तरसंयोगजन्य पारदीय-मिश्रक का नाम है। यह बात शुद्धि प्रकरण में लिखे हुए पाठों से भी साफ़ साफ़ जाहिर होती है।

“उत्कोषधैर्मर्दित पारदस्य ।
यन्त्रस्थितस्योर्ध्वमधश्चतिर्यक् ॥
निर्यातनं पातन संज्ञमुक्तम् ।
बङ्गाहि संपर्कज कञ्चुकघ्नम् ॥

अर्थात् पारद-शोधन प्रकरण में लिखी औषधियों के साथ पारद को पीसकर पातना यन्त्र द्वारा ऊर्ध्व, अधः और तिर्यक् पातन (ऊँचे नीचे और तिब्छे उड़ने को) करने को पातना संस्कार कहते हैं और पेसा करने से बंग (टिन Tin) और अहि (लेड Lead) संपर्कजन्य कञ्चुक नष्ट होते हैं ।

आधुनिक विद्वानों ने पारद पर वायु विशेष (गैस) का भी कञ्चुक (आवरण) माना है । यह आवरण अत्यन्त सूक्ष्म होता है और विशिष्ट यन्त्र द्वारा ही परीक्षा किया जा सकता है ।

“J. J. Haak and R. Sissingh have shown that a layer of absorbed gas, only one molecule thick can be detected optically on the surface of mercury.” (*Monograph on Mercury Ores* Page 15)

रसशास्त्रियों ने भी भिन्न भिन्न स्थानों पर भिन्न भिन्न प्रकार के पारद के दोष माने हैं । यदि वैद्य लोग भी अहिरात्रि परिश्रम करके नवीन यंत्रों का आविष्कार कर या प्राप्य यंत्रों की सहायता से विश्व समाज को सिद्ध करके यह दिखला दें कि हमारे रसशास्त्र के प्रयोग सब विशेष विज्ञान सम्मत हैं और पाश्चात्य वैज्ञानिकों की गति वहाँ पर अभी तक नहीं पहुँची है तो बृद्ध भारत का कितना मस्तक ऊँचा उठ जावे ! क्या सर जे० सी० बोस का सा वीर वैद्य उत्पन्न होकर हमारी इस

अभिलाषा को कभी पूरा करेगा ?

पारद में अन्य धातु मिलाकर जब मिश्रक बनाते हैं तब जो प्रभाव होता है उसके विषय में रसकामधेनुकार ने रसेन्द्रचूड़ामणि का जोंपाठ उद्धृत किया है वह विचारणीय है—

“आकृष्णश्चपलो रुक्षः कपिलः कालिकावृतः ।

तमारजीर्णं जानीयात् सूतकं वातकोपनम् ॥

श्वेतञ्च विद्धि सुस्निग्धं गुरुभोजन भोजनम् ।

नागजीर्णं विजानीयात् रसेन्द्रं कफकोपनम् ॥

प्रागुक्तलक्षणैर्युक्तं समस्तर्जीर्णितां गतम् ।

तथा रसकजीर्णं च रसेन्द्रं सान्निपातिकम् ॥

तादृशं वर्जयेद्यत्नात्तथा खलु घनं गुरु ।

ध्रियन्ते प्राणिनो यस्य भक्षणात्तं परिन्निपेत् ॥

(रसकामधेनुः पृष्ठ १२९)

रेखांकित शब्दों पर ध्यान देने से स्पष्ट है कि यशद, नाग, रसक आदि खनिज जिस पारद में मिले हों और वह घन (ठोस) और गुरु हो तो उसको त्याग कर देना चाहिये ।

यहाँ पर आर शब्द यशद-वाचक रहते हुवे भी बङ्गार्थ में समझना चाहिये क्योंकि प्राचीन काल में यशद के स्थान पर उसके खनिज रसक (खर्पर) ही का प्रयोग करते थे और यहाँ रसक अलग भी लिखा है । रसक के सत्त्वपातन में भी ‘यशद’ न लिखकर “बङ्गाभं द्रवते सत्त्वम्” ऐसा लिखा है । इस पाठ के अवलोकन से यह और भी स्पष्ट हो जाता है कि अन्य धातुओं के संयोग को ही कञ्चुक कहते थे और इस उपाधि से मुक्त करने के लिये पारद की अष्टदश संस्कार व्यवस्था रस

शास्त्रियों ने की है। कुछ और दोष भी रसग्रन्थों में पाये जाते हैं, पर उनका कोई विशेष उपयोग ऐसा नहीं प्रतीत होता कि जिनका आधिक्य से विचार किया जाना आवश्यक हो। भूमिज, गिरिज, बारिज, जो दोष माने हैं वे सरलता से समझ में आ सकते हैं। जिस भूमि से पारद निकला उसके संसर्गज दोष, जिस स्रोत के जल में घुलकर ऊपर आकर हिंगुल के रूप में बना उसके दोष और जिस पर्वत के अन्तराल की दरार से निकला उसके दोष भी पारद में रहना संभव हैं। इसलिये शुद्धि के समय जहाँ से खनिज पारद एकत्रित किया गया हो वहाँ के स्थान के संसर्ग से होने वाले सब दोषों का परिहार अवश्य कर लेना चाहिये। कितना सूक्ष्म विचार है। किन्तु दुःख है कि आजकल हम लोगों को यह भी पता लगाने की इच्छा नहीं कि बाजार में जो वर्तमान पारद आता है उस का उद्गम देश कहाँ पर है और उस देश में पारद के साथ सहयोगी धातु कौन कौन निकलते हैं और उनका पारद पर क्या प्रभाव पड़ता है, अथवा उसकी शुद्धि क्यों की जाती है और शुद्धि के द्रव्यों का पारद के ऊपर क्या प्रभाव पड़ता है ? हम पारदके सब कृत्य केवल इसलिए करते हैं कि शास्त्र की आज्ञा है ! इसका फल यह हो रहा है कि अन्धकार में प्रयत्न किया जाता है। करने वाले को बिना ज्ञान के काम करते रहने से उद्देश्यहीन की तरह श्रान्ति हो जाती है, और वह उस प्रयत्न से विरत हो जाता है। यही कारण है कि वैद्य समाज पारद के संस्कार करने में इतना उदासीन हो गया है। पूर्वाचार्यों ने पारद पर अथक परिश्रम कर उसके अनेक अद्भुत गुणों का ज्ञान प्राप्त किया और वह ज्ञान ऐसा व्यापक स्थिर किया कि पाश्चात्य

प्रत्यक्ष वादी वैज्ञानिक भी अनेक परीक्षाएँ कर प्रायः उसी फल पर पहुँचे हैं। इस समय पौर्वात्य और पाश्चात्य ज्ञान को एकत्रित करके आगे बढ़ने के लिये प्रयत्न करना परमावश्यक है। जापान इसी कारण उन्नत हो रहा है और सारा संसार उसका मान करके उसके आविष्कारों से लाभ उठा रहा है। अभी हाल ही में उसने मोती को शीघ्र पैदा करने की क्रिया के आविष्कार से संसार में नवयुग उत्पन्न कर दिया है “स्वातौ सागरशुक्तिकुक्षि-पतितं तज्जायते मौक्तिकम्” की युक्ति का शतशः खगड़न कर भरवों का लाभ प्राप्त कर रहा है।

शुद्ध पारद के लक्षण।

शुद्ध पारद चांदी जैसा उज्ज्वल वर्ण का होता है। साधारण ताप-क्रम पर यह द्रवरूप में रहता है। हिलाने से इसके गोल कण बनते हैं। पारद अत्यन्त शीतांश पर सफेद राँगे का सा ठोस हो जाता है और वह चाकू से काटा जा सकता है। द्रवावस्था में पारद की पतली तह पारदर्शक होती है और उसमें नीले रङ्ग की आभा दिखाई देती है। थोड़ा सा पारद एक काँच या चीनी के बर्तन में रखकर उस-पर ऊपर की ओर से पानी की तेज धार गिराई जाय तो पारद के बुलबुले (Bubbles) पानी की सतह पर तैरते नज़र आते हैं, और इनमें नीली आभा दिखाई देती है तथा वे शीघ्र फूटकर ठोस पारद-कण के रूप में बदल जाते हैं।

पारद का आपेक्षिक घनत्व जल की अपेक्षा १३.६ है। ३५७ डिग्री की उष्णता पर पारद उड़ने लगता है। पारद की वाष्प रङ्ग रहित होती है। रसायन शास्त्र के नियमानुसार

यद्यपि पारद बहुत ऊँची डिग्री की उष्णता पर उड़ता है तथापि साधारण ताप-क्रम पर भी अत्यन्त स्वल्प मात्रा में उड़ता देखा गया है। एक चीनी के बर्तन में पारद रखकर ऊपर सुवर्ण का पत्र ढकने से दो तीन मास में इसकी मन्द उड़नशीलता की परीक्षा हो सकती है। इतने समय में सुवर्ण के पत्र पर पारद लगा दिखाई देगा। पारद द्रव होतेहुए भी शक्कर, गन्धक और खड़िया की त्रिगुण मात्रा के साथ घोटने से अत्यन्त सूक्ष्म कणों में विभक्त हो जाता है। इसे पारद की मूर्च्छना या मरण (Extinction or deadning) कहते हैं। (रास्को केमिस्ट्री भाग २ दी मेटल्स पृष्ठ ५१४ और ५१५)

रसशास्त्र में शुद्ध पारद के लक्षण इस प्रकार लिखे हैं—

“अन्तः सुनीलो बहिःस्ज्ज्वलो यो,

मध्याह्नसूर्यप्रतिमप्रकाशः ।

भावार्थ—भीतरी भाग में नीलाभ, बाहरी भाग में रजत सा उज्ज्वल, मध्याह्न के सूर्य की सी आभा वाला पारद शुद्ध है। ये लक्षण उपरोक्त नव्यमत का सारमात्र हैं।

अशुद्ध पारद के लक्षण

साधारणतया बाज़ार का पारद किसी विशेषांश में अन्य धातुओं से संयुक्त रहता है, इस कारण यदि साफ़ चीनी या काँच के बर्तन में थोड़ा सा पारद रखकर उसे तिरछा करें तो पारद के कण पुच्छ युक्त दिखाई देंगे। अशुद्ध पारद को यदि वायु में हिलावें तो पारद के ऊपरी भाग में काले से चूर्ण की सतह जम जावेगी जिससे पारद के छोटे छोटे कण आवृत्त

हो जावेंगे। यह रज पारद के साथ मिले हुवे धातुओं के ओक्सिडेशन (आतंचन) होने से उत्पन्न होती है। इसी बात का संस्कृत अनुवाद रसतरङ्गिणीकार ने बहुत सुन्दर नीचे लिखे पद्य में कर दिया है और कञ्चुक के लिये दबी भाषा में प्राच्य पाश्चात्य सम्मति भी प्रकाशित करदी है।

“धातवो रससंश्लिष्टा यदा विष्णुपदामृतम् ।
गृह्णन्ति हि तदा तेषां कश्चिद्भागोऽवशीर्यते ॥
ततश्चूर्णत्वमापन्ना रसमाच्छादयन्ति ते ।
तेनावरणसाम्येन धातवः सूतसंगताः ॥
कञ्चुकाख्यां भजन्तीति प्राच्यपाश्चात्यसम्मतिः ।
कैश्चिदेते कञ्चुकाख्या दोषा औपाधिकाः स्मृताः ॥

(रस तरंगिणी पृष्ठ २७)

पारद को अन्य धातुओं से मुक्त करने का सिद्ध उपाय पातन संस्कार (Distillation) है। यह एक वैचित्र्य है कि यदि थोड़ीसी भी मात्रा नाग या यशद की पारद के साथ मिली होगी तो उसकी उड़नशीलता बहुत अल्प हो जायगी (रास्को केमिस्ट्री भाग २ पृष्ठ ५१२) यह बात प्राचीन रसशास्त्री भी भली प्रकार जानते थे और इसका उपयोग रससिन्दूर के नीचे लिखे पाठ में पवनाशनस्य (नागस्य) शब्द प्रयोग करके किया है। तीव्र आँच देने पर भी पारद के उड़ जाने की सम्भावना कम रहती है।

“भागो रसस्य त्रय एव भागा,
गन्धस्य माषः पवनाशनस्य ।
समर्थ गाढं सकलं सुभाण्डे,
तां कञ्जलीं काचकृते निदध्यात् ॥

संवेष्ट्य मृत्कर्पटकैर्घटी तां,
मुखे सचूर्णा गुटिकां च दत्वा ।
क्रमाग्निना त्रीणि दिनानि पक्त्वा,
तां बालुकायन्त्रगतां, ततः स्यात् ॥
बन्धूकपुष्पाखण्णमीशजस्य,
भस्म प्रयोज्यं सकलामयेषु ।
निजानुपानैर्मरणं जरां च
निहन्ति वल्लक्रमसेवनेन ॥”

(आयुर्वेद प्रकाश पृष्ठ ४६)

रसशास्त्र के अनुसार अशुद्ध पारद का स्वरूप ।

“धूम्रः परिपांडुरश्च चित्रो नयोज्यो रसकर्मसिद्धौ”

भावार्थ—धूम्र, पांडु और चित्र विचित्र वर्ण वाला पारद व्यवहार में न लावे अर्थात् औषधि के लिए उपयोग न करे । ऐसे पारद में धात्वन्तर संयोग अवश्यम्भावी है ।

रसग्रन्थों में विष, वह्नि, मल, नाग, वज्र आदि दोषों के अतिरिक्त, चापल्य, गिरि और असह्याग्नि ये तीन महादोष और भी माने गये हैं । मेरे विचार से ये पारद में अवश्य विचारणीय दोष हैं । चपल (विस्मयधातु) कभी कभी पारद के साथ मिला रहता है । चपल के साथ पारद उसके द्रवणांक (मेलिंग प्वाइन्ट) को घटाने के लिये मिलाते हैं । अर्थात् पारद मिलाने से चपल शीघ्र ही अत्यन्त मन्द आँच पर पिघल जाता है और स्टीरीयो टाइपिंग (Stereotyping) के व्यापार में आजकल लगाया जाता है । ऐसे व्यवसाय में लगा हुआ पारद यदि काम में लाया जाय तो उसमें चपल धातु की अशुद्धि रहना अवश्य

सम्भव है। प्राचीन काल में भी अनेक व्यापारी चपल के मिश्रक (Alloys of Bismuth) बनाते हों तो क्या आश्चर्य है। इस धातु के जितने गुण लिखे हैं, वे आज भी वैसे ही मिलते हैं। विशेष कर इसको रस बन्धन कारक लिखा है, और लाक्षावत् यह शीघ्र द्रावी भी है। इसका एक यौगिक वुड्स मेटल (Wood's metal) के नाम से बाजारों में आता है। उसका द्रवणांक (Melting point) ६०.५ डिग्री है। सम्भवतः यह बहुत कम मिलता है इसी लिये गौण दोषों में गिनाया गया है। इसी प्रकार गिरिदोष समझना चाहिये, जिसका उल्लेख अन्यत्र किया जा चुका है। तथापि यह स्मरण रखना चाहिये कि आरसेनिक (संख्या) और पेन्टिमनि (सुग्मा) पारद के खनिजों के साथ ही अधिकांश में निकलते हैं और ये उड़नशील भी हैं इसलिये इनके दोषों को गिरि दोष माना जावे तो ठीक ही है। इसी प्रकार पारद के खानिजों के प्रकरण में लिखा गया है कि कुछ पेसे पारदीय खनिज हैं जो ओक्सिजन और नमक की गेस (क्लोरीन) के, अत्यल्प मात्रा में पाये जाने वाले, यौगिक हैं और अपेक्षाकृत अत्यन्त उड़नशील हैं। सम्भवतः इन्हीं यौगिकों को देखकर पारद में असह्याग्नि दोष गौरुरूप में माना गया है। ऊपर लिखा ही जा चुका है कि पारद ३५७ डिग्री के तापक्रम पर उड़ने लगता है। यदि किसी गेस के कारण यह शक्ति अल्पताप क्रम पर उत्पन्न हो जावे तो उसे असह्याग्नि दोष कहना सर्वथा सम्भव है। इसी बात की पुष्टि नीचे के अवतरण से ठीक हो जाती है। इसमें स्वाभाविक और सांसर्गिक दोषों को एकत्र लिखकर फिर पृथक् कर दिया गया है।

“नागो बंगो मलं वह्निश्चापल्यं च विषं गिरिः ।
 असह्याग्निर्महादोषा निसर्गात्पारदे स्थिताः ॥
 विषं वह्निर्मलश्चेति दोषा मुख्यतमास्त्रयः ।
 (आयुर्वेद प्रकाश पृष्ठ ३)

इसके अतिरिक्त कुछ वैद्यों का विचार है कि पारद की जो स्वाभाविक उड़नशीलता है वही इसका असह्याग्नि दोष है और जो इसका साधारण ताप-क्रम पर द्रव रहने का स्वभाव है वही चापल्य दोष है । गिरिदोष के विषय में कोई मत प्रकाशन ही नहीं करते । मेरे विचार में धातु के स्वाभाविक गुण को दोष मानना और उसको दूर करने की चेष्टा करना समय और धन का अपव्यय मात्र है । पेसा मानने से पारद का धातुत्व ही नष्ट हो जाता है, तथा द्रव्यान्तरत्व हो जाना भी सम्भव है । इस ध्रम का कारण अनभ्यास, पारद की क्रियाओं का लोप, और संग्रह ग्रन्थों में पाठ व्यक्तिक्रम है, जो शनैः शनैः फिर विचार पूर्वक अनुशीलन, सतताभ्यास और कर्म-नैपुण्य प्राप्त करने से दूर होगा ।

पारद के संस्कार

उक्त दोषों को दूर करने के लिये प्राचीन रसशास्त्रियों ने बड़ा परिश्रम किया है । पारद के १८ संस्कारों का आविष्कार किया एवं उनसे पारद में अद्भुत गुण उत्पन्न करने का प्रयत्न किया है । किन्तु दुःख है कि इस समय देश में पेसा एक भी व्यक्ति नहीं जो अपने अमुभव से यह दिखा दे कि इन संस्कारों का करना क्यों आवश्यक है और इनके करने से वस्तुतः क्या क्या विशेषतायें

पारद में उत्पन्न हो जाती हैं। आलस्यवश यह दशा ऐसी विकृत हो गई है कि संस्कारोपयोगी सामान औषधिसम्भार आदि भी नहीं मिलते हैं और उनके नामों व परिचय में अनेक प्रकार का भ्रम फैल रहा है। इसका निर्णय “परीक्षकैर्वहुभिः परीक्षितमाप्तवाक्यम्” के चरकोक्त उपदेशानुसार करने से ही निर्णय होगा। यहाँ पर इतना ही लिखना इस समय उपयुक्त प्रतीत होता है कि रसग्रन्थों में अठारह और आठ संस्कारों को करने की सलाह है। इनमें से कम से कम तीन और अधिक से अधिक आठ संस्कार करने की प्रथा कहीं कहीं अब भी प्रचलित है। ये सुखसाध्य हैं। केवल निरन्तर समय लगाने की जरूरत है। मेरी राय में बाजार के साधारण पारद को शुद्ध करने के लिये रसशास्त्रोक्त तीनों प्रकार के पातन संस्कार तो अवश्य ही कर लेने चाहिये अन्यथा पारद औषधि में उपयोग करने के योग्य नहीं रहता।

रस ग्रन्थों में पारद के संस्कार इस प्रकार गिनाये गये हैं—

स्यात्स्वेदनं, तदनु मर्दनमूर्च्छनं च,
 उत्थापनं पतनरोध-नियामनानि ।
 संदीपनं, गननभक्षणमानमत्र,
 संचारणातदनु गर्भगता द्रुतिश्च ॥
 बाह्यद्रुतिः सूतकजारणास्याद्,
 ग्रासस्थता सारणकर्म पश्चात् ।
 संक्रामणं वेधविधिः शरीरे,
 योगस्तथाष्टादशधाऽत्र कर्म ॥

१ स्वेदनं, २ मर्दनं, ३ मूर्च्छनं, ४ उत्थापनं, ५ पातनं, ६ रोधनं,

७ नियामन, ८ संदीपन, ९ गगनभक्षणमान, १० सञ्चारण, ११ गर्भद्रुतिः, १२ बाह्यद्रुतिः, १३ जारण, १४ ग्रासः, १५ सारण कर्म, १६ संक्रामण, १७ वेधन, १८ शरीरयोग ॥

इनके अतिरिक्त, बोधन, रञ्जन और अनुवासन संस्कार भी माने गये हैं । पातन संस्कार ऊर्ध्वपातन, अधोपातन और तिर्यक्पातन भेद से तीन प्रकार का है । उक्त १८ संस्कारों में पूर्व के आठ संस्कार करना अधिक कठिन नहीं है किन्तु शेष दश संस्कार करने में विशेष रासायनिक क्रिया-कुशलता की आवश्यकता है । चारण, संक्रामण, ग्रास, सारण, वेधन, शरीर-योग, द्रुति इन शब्दों का पारिभाषिक अर्थ निश्चित करना और अनेक उपलब्ध ग्रन्थों के परस्पर विरुद्ध पाठों का विचार कर प्रत्यक्ष अनुभव करने की अत्यन्त आवश्यकता है । संस्कारों का अनुभव स्वतन्त्र निबन्ध में प्रकाशित करने का प्रयत्न किया जावेगा । आयुर्वेदप्रकाश लिखित गुरुशिष्य परम्परा चलाये बिना रसायन शास्त्र का उद्धार और प्रचार होना असम्भव है । अनुभवहीनता ने और गोप्यं गोप्यं प्रयत्न की संकीर्णता ने रसों के दिव्य चमत्कारों से हम आज वञ्चित हो रहे हैं और वेदों के अर्थों की तरह आयुर्वेद के अनेकार्थ ज्ञान के लिये मेक्समूलर जैसे संस्कृतज्ञ पाश्चात्य वैद्य की प्रतीक्षा होरही है । जर्मनी वाले मकरध्वज, चन्द्रोदय आदि बनाकर बाजार में भेज रहे हैं इससे अधिक वैद्यों की क्या दुर्दशा होगी । सर्वनाश होने परही क्या हमें जाग्रत होने की बुद्धि प्राप्त होगी ! प्राचीन समय में गुरु शिष्य परम्परा की कैसी सुन्दर व्यवस्था थी—

१ “अध्यापयन्ति यदि दर्शयितुं क्षमन्ते, सूतेन्द्रकर्म गुरुवो गुरुवस्त एव ।

शिष्यास्त एव रचयन्ति पुरो गुरुणां, शेषाः पुनस्तदुभयाभिगत्य भजन्ते ॥

पारद का आयात निर्यात ।

आजकल विदेशी खानों से बाजार में लोहे के या चीनी के मजबूत पात्र में भरकर पारद आता है । प्रत्येक पात्र में ७५ पौंड (लगभग ३७॥ सेर) पारद होता है । इस पात्र को फ्लास्क (Flask) कहते हैं ।

सन् १९१२ से १९२१ तक संसार में पारद नीचे लिखी सारणी के अनुसार भिन्न भिन्न देशों से निकला था ।

(सारिणी क)

पारद भेजने वाले देशों के नाम	१९१२	१९१३	१९१४	१९१५
ऑस्ट्रेलिया	—	—	—	१३००
न्यूजीलैण्ड	—	—	—	—
ऑस्ट्रिया	१६८२३००	१८०७८००	१९४०४००	१६७४४००
हंगरी	१८७१००	१९४८००	१६६०००	१३९६००
इटली	२२०४१००	२२१३४००	२३६४६००	२१७१६००
रूस	—	—	—	६००००
स्पेन	२७६६१००	२७४६४००	२१०००००	२६६४४००
चीन	९४००	४६००	१ १५००	४६४५००
मेक्सिको	३६४०००	३६४४००	३४८०००	०७२००
युनाइटेडस्टेट्स	१८७६६००	१४१६०००	१२४११००	१४७७४००
अन्य देश	१०००	४००००	२१००	२७००

ये अङ्क पाउण्ड की मान से हैं,

(सारिणी ख)

१९१६	१९१७	१९१८	१९१९	१९२०	१९२१
७००	—	—	—	—	—
—	४१००	११३००	११२००	११३००	—
६०४८००	१४३००००	६२६०००	—	—	—
१७६४००	—	—	—	—	—
२४१०५००	२३६२०००	२२८८४००	१८६२६००	२६२०३००	२४२४४००
८२५००	३७५००	—	—	—	—
१७५२४००	१८८६०००	१२५०८००	२७०४१००	१६६००००	१३२४४००
३९१९००	५७६०००	६४६८००	१७७२००	६३३००	—
११५७००	७३०००	३५०७००	२६२२००	१६६७००	२२०४००
२२४४६००	२७११६००	२४६६२००	१६०६१००	१००४४००	४७५४००
७७६००	४७६००	३२००	२१२००	३३७००	२२०४००

(मानोघ्राफ़ ऑन मर्क्युरी बोर्स ग्रुप १८) न्ये अङ्क पाउन्डकी मान से हैं,

युनाइटेड किंगडम (इंग्लेन्ड, वेल्स और स्कॉटलेन्ड) में पारद की आयात नीचे लिखी सारणी के अनुसार सन् १९१२ से १९२१ तक भिन्न भिन्न देशों से हुई है:—

(सारिणी क)

पारद भेजनेवाले देशों के नाम	१९१२	१९१३	१९१४	१९१५	१९१६
स्पेन	२६७११००	२६६२५००	२३१६८००	२१५६०००	२३३२८००
इटली	५९५१००	४८१७००	३७२६००	७६११००	—
आस्ट्रिया, हंगरी	—	१३२५००	—	—	—
फ्रान्स	—	—	—	२००	—
मेक्सिको	१३०५००	६७१००	५४४००	१५००	८००
अन्यदेश	१४८०००	१८६६००	८५८००	९४४००	२२१५००
ब्रिटिशअधिकृतदेश	—	—	—	२७२००	१२००
टोटल	३५४४७००	३४०१२००	३८३२६००	३०४३४००	२५५६३००

ये अङ्क पाउन्ड की मान से हैं ।

(सारिणी ख)

१६१७	१६१८	१६१९	१६२०	१६२१
३६६३००	७७२८००	२४८१८००	१०४४३००	—
८८०९००	३०४३००	३३७०००	१२०८१००	—
—	—	—	१६८३००	—
७७०८००	—	२००	७०७००	—
—	—	६३००	३९००	—
१२२४००	४००	१६६००	१५६७००	—
—	—	—	—	१५४०६
२१७३४००	१०७७५००	२८४१६००	२६८२०००	१५४०६

ये अङ्क पाउन्ड की मान से हैं ।

पारद खरीदने वाले मुख्य देश और उनके खरीदने का
मान-सारिणी :-

(सारिणी क)

देशों के नाम	१९१२	१९१३	१९१४	१९१५	१९१६
युनाइटेड किंगडम	३५४४७००	३४०१२००	२८३२६००	३०४३४००	२५५६३००
भारतवर्ष	—	२९१७००	१४१६००	७७०००	२१९६००
युनियन आफ़ साउथ अफ़्रीका	२८१६००	२६५४००	३००८००	२८५४००	१८४१००
केनाडा	१३७५००	२१९४००	२०४२००	१८४४००	७९२००
आस्ट्रेलिया	११६४००	१०१५००	४६०००	५२६००	७५१००
फ़्रान्स	४६६५००	४३५७००	३६८६००	७२६७००	१२५२०००
जर्मनी	२१८२०००	२११८०००	—	—	—
इटैली	३३००	७००	—	६५००	६२६००
स्वीडन	११३००	११३००	१२८००	३०२००	३५१००
चीन	१०८०००	८८२००	५११००	२६४००	४८१००
जापान	—	—	—	२७१०००	५६२२००
युनाइटेड स्टेट्स	८२७००	१७१७००	६१४६००	४२१६००	४२४४००

ये अङ्क पाउन्ड की मान से हैं ।

(सारिणी ख)

१९१७	१९१८	१९१९	१९२०	१९२१
२१७३४००	१०७७५००	२८४१६००	२६८२०००	१६४०६००
१५८३००	६५६००	४८०६००	२०२६००	१५७१००
१४२३००	२४५५००	१०६४००	१८८०००	१८३०००
७१६००	५६९००	२६५००	२०६०००	३४६००
३६२००	७१०००	२६५००	५२०००	५२२००
१०८००००	१८७७३००	४१३७००	४६२८००	७०५००
—	—	—	—	—
—	—	—	—	—
३६६००	—	—	—	६८००
३१६००	१५६००	७९,५००	७७५००	६६०००
३८३०००	५५५५००	६८३४००	—	—
३६०५००	५०३९००	७६७६००	१०७२७००	७६५०००

ये अङ्क पाउन्ड की मात्रा से हैं।

युनाइटेड किंगडम से अन्य देशों में पारद का निर्यात सम् १९१२ से १९२० तक नीचे लिखे अनुसार हुआ है

पारद लेने वाले देशों के नाम	१९१२	१९१३	१९१४	१९१५	१९१६	१९१७	१९१८	१९१९	१९२०
भारतवर्ष	२८६८००	१९९४००	१२०८००	७८०००	२५७५००	६५९००	२३८००	५३६५००	१०३३००
हांग कांग	७७६९००	६२७५००	१३५७००	६३७००	२६३००	—	—	६१०६००	४६७३००
यूनियन आफ़ साउथ आफ़्रीका	१०७८००	१३६४००	१२१९००	१२०१००	२१०८००	७६५००	२२१६००	९६६००	१८३५००
केनाडा	८६१००	५३९००	१३७८००	६६५००	७३५००	५२००	१३३००	६४००	—
आस्ट्रेलिया	७८०००	६९८००	४६९००	७२८००	४४८००	१६०००	३१४००	२८२००	४६३००
बेल्जियम	६३१००	६८८००	५८७००	—	—	—	—	१०६७००	६२००
फ्रांस	१५४८००	१४९७००	३३१९००	२२७७००	२७६८००	७२८००	११७१००	१४४४००	५०६००
जर्मनी	३१२५००	१३६१००	१००४००	—	—	—	—	२८६००	९६९००
रूस	२१०१००	२४४५००	१२८६००	२०६८००	११८२००	११४९००	—	५६००	६८००
जापान	१००५००	२४४०००	१०४००	८६२००	२०४४००	३८००	३७१८००	८४३०००	११०१००
युनाइटेड स्टेट्स	३७१००	१५४५००	३७६४००	५८५००	२१७६००	—	१००	५८२०००	१८११००
अन्य ब्रिटिश अधिभूत देश	२७६००	३३५००	३००००	१८४००	२६५००	२१८००	२६८००	६८००	७९५००
अन्य बाहरी देश	१४४१००	११३०००	११६६००	७४८००	६८४००	५४३००	३५२००	१५८५००	८०२००

ये आंकड़ पाउण्ड की मान से हैं

इन तालिकाओं के देखने से स्पष्ट है कि भारतवर्ष में दस वर्ष के अन्दर कितना पारद विदेशों से आया है। प्राचीन काल में भी संभवतः इसी प्रकार अल्पाधिक्य मात्रा में विदेशों से पारद का आयात हुआ करता होगा।

पारदीय खनिज प्राप्ति के स्थान

ब्रिटिश बोर्नियो (British Borneo)

इस प्रान्त में रक्त-हिंगुल (रंसपाद) प्राकृतिक पारद और रसपुष्प (केलोमल) अल्प मात्रा में पाया जाता है।

भारतवर्ष (India)

यहाँ अबतक कोई निश्चित स्थान पारद या उसके खनिजों की प्राप्ति का विदित नहीं हुआ है। अभी हालही में चित्राल (पंजाब) की नदी की रेत में हिंगुल के अस्तित्व का पता लगा है। यह स्थान सावधानी पूर्वक सुरक्षित कर दिया गया है। (मानोग्राफ ऑन मर्क्युरी ओर्स पृष्ठ २२) इसके अतिरिक्त अदन (Aden) अफ़ग़ानिस्थान (Afghanistan) अंडमन आइलेन्ड (Andaman Islands) बर्मा (Burma) तिब्बत (Tibet) आदि पार्श्ववर्ती देशों में भी हिंगुल के मिलने की संदिग्ध सूचनाएँ समय समय पर प्रकाशित हुई हैं (विब्लोग्राफी भाग २ पृष्ठ ३६३.)

अफ्रीका (Africa)

न्यासालेन्ड (Nyasaland) नामक स्थान में पारद का होना बताया गया है किन्तु उसकी व्योरेवार रिपोर्ट अभीतक प्रकाशित नहीं हुई है।

यूनियन ऑफ साउथ अफ्रीका (Union of South Africa)

ट्रान्सवाल जिले में स्फटिक के साथ मिला हुआ हिंगुल पाया जाता है एवं इसी देश के अन्य स्थानों में गेलेना (Galena—लेड सल्फाइड) यशद, Blende स्फटिक, रेणुशिला आदि के साथ में मिलता है। एक स्थान पर प्राकृतिक पारद सुवर्ण के साथ भी पाया गया है।

उत्तरीय अमेरिका (North America)

केनाडा (Canada) के सब प्रान्तों में भिन्न भिन्न जातीय खनिजपाषाण और उष्णस्रोतों में प्राकृतिक पारद और हिंगुल पाया जाता है।

ऑस्ट्रेलिया (Australia)

इस देश में हिंगुल और प्राकृतिक पारद अनेक स्थानों में पाया जाता है। सन् १८६२ तक केवल क्वीन्सलैण्ड (Queens-land) से १३७०० पाउण्ड पारद निकाला गया है। यहां ज्वालामुखी पाषाणों में भी अधिकतर पारदीय खनिज मिलते हैं। पारद के खनिज निकालने के लिए यहां अनेक कूप खने गये हैं जिनकी गहराई ५० से २४० फीट तक है।

पापुआ (Papua)

इस देश में भी पारद के खनिज पाए जाते हैं किन्तु अभी तक पारद निकालने का काम प्रारम्भ नहीं हुआ है इस लिए यहां के खनिजों का व्यवहारिक मूल्य का पता नहीं लग सका है।

न्यूज़ीलैण्ड (New Zealand)

इस देश में सोना, चांदी, मात्तक आदि खनिजों के साथ

अनेक स्थानों में पारदीय खनिज पाये जाते हैं। सन् १६१७ से १६२० ई० तक ५०० फ्लास्क पारद पुही पुही (Puhi Puhi) नामक स्थान से निकाला गया था। इस देश के एक स्थान पर उष्णस्रोत में हिंगुल प्राकृतिक गन्ध के साथ अन्य खनिजों के सहयोग में पाया जाता है।

अल्बेनिया (Albania)

यह विदित हुआ है कि इस देश में भी पारद के खनिज हिंगुल और प्राकृतिक पारद पाये जाते हैं किन्तु ब्योरा अभी तक मालूम नहीं हो सका है।

जोकोस्लोवेकिया (Czechoslovakia)

इसके दो तीन प्रान्तों में हिंगुल पारद-मिश्रक (Amalgam), मात्तिक, स्फटिक आदि के साथ पाया जाता है। खड़िया के रूपान्तरित श्लेट और लावा के तर (sheet) के बीच में हिंगुल, गेलेना और यशद भी पाये जाते हैं।

फ्रान्स और कॉर्सिका (France and Corsica)

इस देश के अनेक प्रान्तों में हिंगुल और प्राकृतिक पारद चूने (Calcite) की भूमि में मात्तिक, स्फटिक, यशद, खर्पर (Calarmine), गेलेना (Galena), पारदीयमिश्रक (Amalgam), पण्टिमनि, गन्धक, आर्सेनिक, प्लेटिनम् (Platinum) आदि के साथ पाया जाता है। इसमें प्लेटिनम् का अल्पांश ही मिलता है।

जर्मनी (Germany)

जर्मनी में पारद के खनिज अधिक नहीं प्राप्त होते हैं, जितने भी अब तक प्राप्त हुए थे वे सब काम में आ गये हैं।

तथापि किसी किसी स्थान विशेष पर अनेक अन्य खनिजों के साथ धागे की शकल के तार से हिंगुल के रेशे पाये जाते हैं। एक स्थान पर फोसिल मच्छियों में भी हिंगुल जमा हुआ पाया गया है।

इसके अतिरिक्त प्राकृतिक पारद, रजतमिश्रक (Silver amalgam), केलोमल (ससुष्य), मेटे सिन्नाबार (कृष्ण हिंगुल), मर्क्युरियल फेह्लोर (Mercurial Fehlore ताम्र मिश्रक) भी पाये जाते हैं। इनके साथ साथ माक्षिक, रक्त और पीत गैरिक, साइडराइट (Siderite), सुरमा (Gelena), टेट्रा हीडराइट (Tetrahedrite), सुवर्ण-रौप्यमाक्षिक, स्फटिक, पन्डिमनि, अयस्कान्ति (Pyrolusite), सिलोमेलन (Psilomelane) आदि खनिज भी मिलते हैं। एक स्थान पर २७०० फुट और दूसरे स्थान पर १२०० फुट की विस्तृत भूमि पर फैले हुए पारदीय खनिज पाये गये हैं। राइनलेन्ड (Rhineland) के जिले में ९० फलास्क पारद प्रतिवर्ष यशद खनिज के साथ निकलता है।

हंगरी (Hungary)

महानुद्ध के पूर्व हंगरी में वार्षिक ६० टन पारद निकलता था। अब उसके प्रान्त बदल गये हैं। हंगरी में पन्डिमनि के साथ पारदीय खनिज पाये जाते थे, जहाँ तक विदित हुआ है आजकल इस देश में पारद निकलने का व्यवसाय नहीं होता है।

इटली (Italy)

इटली में सर्वत्र पारदीय खनिज प्राप्त होते हैं। वहाँ पर कई एक पुरानी बड़ी बड़ी खानें हैं। पारदीय खानों का प्रबन्ध

राजकीय तरफ से किया जाता है। इटली में पारद के मुख्य चार खनिज पाये जाते हैं।

१—स्टील ओर (Steel ore = Stahlerz)—दैत्येन्द्ररक्त । इसमें ७५ फीसदी पारद मिलता है ।

२—लीवर ओर (Lever ore = Lebererz) यकृदाकार हिंगुल या दरदः । यह मृत्तिका जातिका हिंगुल है इस पर स्टेहलर्ज Stehlerz का कञ्चुक (Kernels) चढ़े रहते हैं ।

३—कोरे लाइन (Coralline-Korallenerz) प्रवालाभ हिंगुल (श्वेतेरेखः प्रवालाभः)

४—ब्रिक ओर (Brick ore) गिरि सिन्दूर या रक्तहिंगुल (जपा कुसुम संकाशः हंसपादोमहोत्तमः) यह पारदीय खनिजों के किनारे पाया जाता है, सम्भवतः इसी प्रकार के खनिजों को देखकर ऊपर के वाक्य प्राचीनों ने लिखे हैं । इटली के इड्रिया (Idria) नामक स्थान में सब से पुरानी पारद की बड़ी खाने हैं, इन खानों में एक स्थल पर फनल (Funnel) की शकल के पाइप (नल) या छिद्र हैं । सम्भव है ऐसे ही कृपाकार छिद्र देख कर रसरत्न समुच्चय में “जाता कूपा च पंच च” वाक्य किसी महर्षि ने लिखे हों । इस विषय में मानो ग्राफ़ आफ़ मर्करी के पृष्ठ ४५ का निम्न लिखित अवतरण ध्यान में रखने योग्य है—

In the immediately neighbouring rock are several funnel-shaped cavities, also filled with metalliferous sands and clays, the proportion of Cinnabar increasing with the depth. These

funnel-shaped cavities appear to bear some analogy to the vertical pipes or holes (Trajas) in Gypsum—at the mercury mines of Huitzuco,—Guerrero, Mexico. Broadly speaking, the whole deposit forms a large funnel, the position of which is marked on the surface by a distinct depression.

पोर्तुगाल (Portugal)

कुछ वर्षों से इस देश में भी पारद की निकासी होने लगी है ।

रुमानिया (Rumania)

इस प्रदेश के जलाटना (Zalatna) नामक स्थान के पारदीय खनिजों से पारद निकालने का व्यवसाय किया जाता था, किन्तु व्यवसाय लाभकारक न होने के कारण प्रायः बन्द सा हो गया है ।

रशिया (Russia)

यूरोप और एशिया के अन्दर यूक्रेन (Ukraine) सहित ।

इस देश में सन् १८९७ में ६१६ मेट्रिक टन पारद निकला था । सन् १९१० में तीन चार सौ मेट्रिक टन के लगभग पारद की निकासी हुई और उसके एकही वर्ष के बाद सन् १९११ में केवल २५ मेट्रिक टन की उपज रह गई । अब बहुत अल्पमात्रा में इस देश में पारद का रोजगार होता है । सारे रशिया में हिंगुल, प्राकृतिक पारद, आदि पारदीय खनिज प्राप्त होते हैं । मग्नेतिक, पेन्टिमनी, गन्धक, गेलेना, स्फटिक

चूना आदि खनिजों के साथ साथ व पत्थर के कोयले के साथ भी हिंगुल मिला पाया जाता है ।

स्केन्डिनेविया (Scandinavia)

यहां पर प्राकृतिक रजत के साथ पारद पाया जाता है । स्वेडन के साला (Sala) नामक स्थान पर पारदीय रजत-मिश्रक (Silver amalgam) प्राकृतिक पारद और किसी किसी स्थान पर अल्प मात्रा में हिंगुल भी पाया जाता है ।

स्पेन (Spain)

इस समय संसार में स्पेन देशीय अल्माडन (Almaden) नामक स्थान की पारदीय खनिजों की खानें सर्व प्रधान हैं । संसार की पारद की माँग एक तिहाई इसी की खानों से पूरी होती है । इस स्थान की खानों में विशेषता यह है कि गहराई के साथ साथ ऊँचे दर्जे के उत्तम पारदीय खनिज निकलते जाते हैं । इस समय तक १३०० फुट की गहराई की खानें खुद चुकी हैं । इस देश में शताब्दियों से पारद निकालने का व्यवसाय हो रहा है । यहां का मुख्य खनिज पारद निकालने योग्य रक्तहिंगुल (Cinnabar) ही अधिकता से मिलता है । यह हिंगुल बहुत तेज़ लाल रङ्ग का होता है (Cinnabar of a bright red colour) यहीं से सम्भवतः रसशास्त्रियों का “जपाकुसुम संकाशो हंसपादो महोत्तमः” हिंगुल आता रहा है ।

यहां शुद्ध रवेदार हिंगुल अल्पमात्रा में पाया जाता है । जितना भी मिलता है वह स्फटिक, मात्तक और बराइट के रवों के साथ में मिलता है । ढेले की शकल का हिंगुल जिसमें ७५ से ८५ फी सदी पारद रहता है बहुतायत से पाया जाता

है। इसके सहयोग में अन्य खनिज बहुत कम मिले पाये जाते हैं। प्राकृतिक-पारद, केलोमल, बहुत कम मात्रा में मिलता है। स्पेन के एक प्रान्त में रक्त और कृष्ण हिंगुल, हरिताल, मनःशिला, आर्सेनिक (Metallic Arsenic) सुधा पाषाण (Lime Stone), रेणु पाषाण (Sandstone) आदि के साथ में पाया जाता है।

अल्माडन की खानों में सन् १५६४ ई० से १९१९ ई० तक नीचे लिखी सारणी के अनुसार पारद की निकासी हुई है।

समय	मेट्रिक टन्स	वार्षिक निकासी
१५६४—१७००	१७८६३	१०३
१७००—१८००	४२१४९	४२१
१८००—१८७५	६०१६	८०२
१८७६—१९१९	४३००० (अनुमान)	१००० (अनुमान)

युगोस्लेविया (Yugoslavia)

इस स्टेट में बोसनिया (Bosnia) सर्बिया (Servia) स्लोवेनिया (Slovenia-Carniola) प्रान्तों में मुख्यतः पारद के खनिज पाये जाते हैं।

एशिया माइनर (Asia Minor)

इस देश में ३००० वर्षों से पारद निकालने का व्यवसाय हो रहा है। सन् १९०६ और १९०७ में वार्षिक ३००० फ्लास्क पारद कोनिया और केरोबुरम माइन (खान) (Konia and Karo Burum Mines) में निकला था। इसी प्रकार एनाटोलिया (Anatolia) में ४००० से ५००० फ्लास्क प्रतिवर्ष निकलता रहा है। सन् १९०९ में तुर्कस्थानीय (Turkish) पारद की निकासी १४२ टन्स (३७८६ फ्लास्क) हुई थी। महायुद्ध के समय एसियाटिक तुर्की की पारदीय खाने जर्मनी के अधिकार में आ गई थीं।

चीन (China)

चीन के अनेक स्थानों में पारदीय खनिजों के मिलने की सूचनायें समय समय पर प्रकाशित होती रही हैं। इस समय केवल युआनशानचङ्ग (Yuanshanchang) नामक स्थान की खाने ही प्रसिद्ध हैं। यहाँ पर दो प्रकार का हिंगुल पाया जाता है। एक का रंग तेज लाल (Bright-red) और दूसरे का गहरा लाल (Dark opeque-red) होता है। यहाँ बहुत ही प्राचीन प्रणाली से हिंगुल एकत्रित किया जाता है। एवं इसे ईंगुर (Vermillion) के रूप में ही तय्यार करते हैं। जिसका स्थानीय व्यापारी रंगसाज़ी में उपयोग करते हैं। प्राचीन काल में इसी प्रकार के हिंगुल के व्यापार के कारण भारतीय रस-शास्त्रियों ने 'चीन पिष्ट' और 'चूर्णपारदः' पर्याय शब्द रखकर हिंगुल के चीन सम्बन्धी व्यापार को चिरस्मरणीय बना दिया है। चीन

में सन् १९०५ ई० के पूर्व अनेक वर्ष तक प्रति वर्ष ६४० फ्लास्क पारद निकलता रहा है। सन् १९१८ ई० में ६४६८०० पाउन्ड पारद चीन से निकला था।

जापान (Japan)

वर्तमान में जापान में केवल एक स्थान की खाने पारद निकालने के लिये खनी जा रही हैं। यहां पर हिंगुल चूने के पाषाण (Calcite) और रेणुशिला के साथ पाया जाता है।

न्यू कैलेडोनिया (New Caledonia)

न्यू कैलेडोनिया के बोरेल (Bourail) केनाला (Canala) कोनोआना (Konaona) और पिवाका (Piwaka) नामक स्थान पर पौने-दो से सवा-दो फीसदी पारद निकालने वाले खनिज प्राप्त होते हैं; किन्तु आजकल यहांपर पारद की निकासी का कारोबार बन्द है।

फारस (Persia)

प्राचीन समय से ही फारस में पारदीय खनिजों का होना विदित था। तख्तई-सुलेमान (Takht-i-Suleiman) नाम के प्रदेश के जिलों में हिंगुल, प्राकृतिक पारद, पत्र हरिताल और मनःशिला मिलते हैं। हरिताल और मनःशिला पर्सियन कुर्दिस्तान (Persian Kurdistan) नामक स्थान पर भी पाये जाते हैं।

अफ्रिका (Africa)

अफ्रिका के एलजीरिया (Algeria) नामक स्थान से कुछ समय पूर्व थोड़ा पारद विदेशों में भेजा गया था। इस देश

में यशद रजत युक्त स्रोतोञ्जन (Argentiferous) खर्पर (Calamine) नीलांजन (Antimony) आदि के साथ में हिंगुल पाया जाता है ।

एलजीरिया (Algeria) के अतिरिक्त बीर-बेनी-सालाह (Bir-Beni-Salah) नामक स्थान में जो कोलो (Collo) से ६ माईल की दूरी पर है, गेलेना के साथ में हिंगुल मिलता है । और भी अफ्रिका के अनेक प्रदेश हैं जिनमें गेलेना या यशद के साथ हिंगुल पाया जाता है । कहीं कहीं स्वतन्त्र रूप से भी हिंगुल मिलता है ।

इटालियन सोमेलिलेण्ड (Italian Somaliland)

इस देश के उत्तरी भाग में हिंगुल होने की सूचना प्रकाशित हुई है ।

ट्युनिस (Tunis)

एलजीरिया के समान यहाँ भी अनेक प्रकार के खनिजों के साथ हिंगुल का जमाव मिलता है ।

अपर सेनेगल और नीगर (Upper Senegal and Neger)

इस देश के बम्बोक (Bambouk) प्रान्त में पारदीय खनिज मिलते हैं ।

नार्थ अमेरिका (North America)

उत्तर अमेरिका के पारदीय खनिज अलस्का (Alaska) से सेन्ट्रल अमेरिका (Central America) तक कार्डिलेरन-रीजियन (Cardilleran region) में प्राप्त होते हैं ।

होन्डुरास (Honduras)

होन्डुरास के प्रजासत्तात्मक राज्य में पारदीय खनिजों का

होना चिरकाल से विदित है। सन् १६०६ ई० में १३८ फ्लास्क पारद की निकासी हुई है। स्पेनिश लोगों के राज्यकाल में उत्तम हिंगुल का जमाव कोमायागुआ (Comayagua) विभाग में रहा किन्तु फिर उसका उपयोग नहीं किया गया।

मेक्सिको (Mexico)

मेक्सिको में सर्वत्र पारदीय खनिजों का जमाव पाया जाता है। किन्तु मुख्यतः सान लुइस पोटासी (San Louis Potasi) और ग्वेरेरो (Guerrero) राज्य में पाये जाते हैं।

यहां के सब पारदीय खनिज ज्वालामुखी के उद्गम स्थानीय उष्णस्रोतों की रासायनिक क्रिया से उत्पन्न हुए विदित होते हैं। इस देश में रक्तहिंगुल, कृष्णहिंगुल और रसपुष्प (केलोमल) व प्राकृतिक पारद बहुतायत से पाये जाते हैं। जहां पर पारदीय खनिज मिलते हैं वहां १०० से १३० फीट की गहराई के फनल की शकल के कूप या त्रिद्र हैं। ये गर्त तेज चक्कर के साथ बहने वाले जल से बने हुए प्रतीत होते हैं। मेक्सिको के सब स्थानों की पारद निकालने की खानों का वर्णन पढ़ने से ऐसा विदित होता है कि रसरत्नसमुच्चय में जो पारद-गन्धक के यौगिक बनने का वृत्त लिखा है वह यदि आलङ्कारिक भाषा में न होता तो इसी प्रकार से लिखा हुआ आज मिलता। (देखें मानोग्राफ आफ़ मर्करी थ्रोस पृष्ठ ६२ से ६५ तक) गन्धक जो नवीन तथा उष्ण स्रोतों के किनारे जम कर स्वच्छ दशा में प्राप्त होता है उसे वर्जिन सल्फर (प्रथमे रजसि स्नाता) कहने की प्रथा आज भी प्रचलित है। प्रकृति में पारद गन्धक के साथ मिलकर ही हिंगुल बनता है इसी क्रिया को नीचे लिखे श्लोक में वर्णित किया है।

खनिज हिंगुल की उत्पत्ति

प्रथमे रजसि स्नातां, हयारूढां स्वलंकृताम् ।
 वीक्षमाणा वधूं दृष्ट्वा जिघृक्षुः कूपगो रसः ॥
 उद्गच्छति जवात्सापि, तां दृष्ट्वा याति वेगतः ।
 अनुगच्छति तां सूतः सीमानं योजनोन्मितम् ॥
 प्रत्यायाति ततः कूपं वेगतः शिवसम्भवः ।
 मार्गं निर्मित गर्तेषु स्थितं गृह्णन्ति पारदम् ॥
 पतितो दरदे देशे गौरवाद्बद्धि वक्त्रतः ।
 सरसो भूतले लीनस्तत्तद्देशे निवासिनः ॥
 तां मृदं पातनायन्त्रे क्षिप्या सूतं हरन्ति च ।

(रस रत्न समु० अ० १)

तात्त्विकार्थः.

जब पारद अपने कूपाकार खान से उष्ण जल के खोनों में घुला हुआ बाहर आता है वहाँ यदि गन्धक के खान से वेगवान् द्रवित गन्धक भी निकल रहा हो तो दोनों मित्र खनिज परस्पर मिलकर रासायनिक योग बनाने के लिये प्राकृतिक आकर्षण नियम से एक दूसरे की तरफ आकृष्ट होते हैं और रासायनिक क्रिया के लिये मीलों साथ साथ बहने रहने हैं । रसायन शास्त्र के नियमानुसार पारद के दोस्रो भाग में गन्धक केवल ३२ भाग ही मिलता है शेष गन्धक और पारद प्रायः पृथक् पृथक् रह जाते हैं । ऐसी दशा में पारद भूभाग के अनेक गर्तों में एकत्रित हो जाता है । उसे वहाँ के निवासी प्राकृतिक पारद के रूप में (मार्ग निर्मित गर्तेषु स्थितं गृह्णन्ति पारदम्) इकट्ठा कर लेते हैं और जो पारद गन्धक का यौगिक द्रव (हिंगुल) सृष्टिकाकृति का मिला उससे पातनायन्त्र में पारद

पृथक् कर लिया करते हैं। 'मिनरल डिपोजिट्स' नामक पुस्तक में पारदीय खनिज प्रकृति में कैसे निकलते हैं इस विषय का वर्णन विचारणीय है। उसमें लिखा है—

(1) At steam boat springs in Newada near the California boundary, Cinnabar is contained in the hot ascending Sodium Chloride waters together with antimony, arsenic and sulphur, and is actually being deposited in the Sinter. Close by, but at a higher level, is a low grade quicksilver in decomposed granite, and this in all probability was also formed by the same springs when issuing at a higher level. Underneath the Sinters of the present springs the gravels contain crystallized Stibnite and Pyrite.

(2) At Sulphur Bank in the California Quicksilver Belt. Le Conte, Crysty, Rising, Becker and Pasepny have studied the deposition of Cinnabar and Sulphur by ascending hot sodium carbonate and boarate waters and have all arrived at the conclusion that such deposition together with that of pyrite and opal is actually taking place. The cretaceous sandstones and associated Fransiscom. Metamorphic rocks are here overlain by flaws both normal and glossy

basalt and by cinder cones, pointing to very recent eruption, the hot springs have altered and bleached the basalt. Sulphur is deposited at the surface by the oxidation of H_2S or by reaction between SO_2 and H_2S . Below the superficial deposit of sulphur, cinnabar is found in the basalt, as well as in the underlying shales and sandstones; it occurs mostly in verbets, and joints together with the Pyrites-opal above mentioned.

(3) The Rebbit Hal sulphur deposit in Humboldt County Nevada described by G. I. Adams, is evidently a product of springs and near it are considerable areas of rhyolite. The rocks are silicified and opal, alunite, gypsum and some cinnabar are present as associated minerals
(*Mineral Deposits by Lindgren. Page 499.*)

इन अवतरणों का भावार्थ यह है कि —

(१) कैलिफोर्निया की सीमा के निकटवर्ती निवाडा स्थान के स्टीम बोट नामक ऊर्ध्वगामी उष्णस्रोत के सोडियम-क्लोराइड (नमक) घुले हुए जलमें हिंगुल भी रहता है और उसके साथ एन्टिमनी, आर्सेनिक, और गंधक भी मिले रहते हैं। यहां जो हिंगुल जमता है वह प्रत्यक्ष खनिज रूप में जमता हुआ दीख पड़ता है और उसी के निकटवर्ती कुछ ऊंचाई पर अल्पमात्रा में पारदीय खनिज का जमाव ग्रेनाइट प्रायणखंडों

में पाया जाता है, संभवतः यह भी उष्णस्रोतों से ही किसी समय निकल कर जमा हुआ है। इन स्रोतों के बने जमाव के नीचे रवेदार एण्टिमनि और रौप्यमाक्षिक शिला पाषाण खंडों (Gravels) के साथ में मिलते हैं।

(२) केलिफोर्निया की पारदीय खनिज वाले सल्फर बैंक नामक स्थान पर लेकान्त, क्रिस्टी, राइजिंग, बेकर, पाजेपनी आदि विद्वानों ने सोडियम कार्बोनेट (कपड़ा धोने का सोडा) और बोरेट (बुहागा) वाले ऊर्ध्वगामी जलों के हिंगुल और गंधक के जमाव को अध्ययन किया है और अन्त में वे इस सिद्धान्त पर पहुँचे हैं कि रौप्यमाक्षिक और ओपल (उपलः) के साथ पेसा जमाव वस्तुतः आजकल हो रहा है। इस स्थान में क्रिटेशस (Cretaceous—भूगर्भिक) समय के रेणु शिला, रूपान्तरित पाषाण और बेसाल्ट नामक ज्वालामुखी पाषाण व सिन्डरकोन ढके हुए हैं, जिससे विदित होता है कि यहाँ पर वर्तमान काल ही में ज्वाला-मुखी का उद्गम हुआ है।

उष्णस्रोतों ने बेसाल्ट का रूप रंग बदल दिया है। भूभाग के ऊपरितल में गंधक का जमाव याता हाइड्रोजन के ओक्सिडेशन से अथवा सल्फर डाई ऑक्साइड और हाइड्रोजन सल्फाइड की प्रतिक्रिया से होता है। ऊपरी तह वाले गन्धक के जमाव के नीचे हिंगुल बेसाल्ट में पाया जाता है। मृत्तिकापाषाण और रेणुशिलाओं में भी हिंगुल यहाँ पर पाया जाता है। हिंगुल प्रायः पृथ्वी की शिरा (veins) और सन्धियों में उपरोक्त ओपल और रौप्यमाक्षिक में स्थित रहता है।

निवादा स्टेट के हंबोल्ट जिजे में रेबिटडोल नामक गंधक का जमाव है। इसका उल्लेख एडम्स नाम के विद्वान् ने किया है। यह वस्तुतः उष्णस्रोतों का ही फल है और इसके निकट रायोलाइट नामक ज्वालामुखी पाषाण के बड़े बड़े मैदान हैं। वहाँ की चट्टानों में सिलिका, ओपल, अल्गुनाइट, जिप्सम और कुछ हिंगुल भी सहयोगी खनिज के रूप में विद्यमान है। (मिनरल डिपोजिट्स लेण्डप्रेन कृत पृष्ठ ४६८) इन अवतरणों से स्पष्ट है कि उष्णस्रोतों से अन्य खनिजों के सहयोग में गंधक और हिंगुल निकलता है। शुद्ध गंधक के ही साथ पारद मिलकर प्रायः हिंगुल बनाता है। जहाँ पर यह क्रिया होती है, वहाँ पर ज्वालामुखी के उद्गम का चिह्न भी अवश्य पाया जाता है। इस प्रकार के स्रोतों का उद्भवगामी होने के कारण वेगवान होना अवश्यभावी है। जहाँ स्रोत होते हैं वहाँ पर आस पास में इधर उधर गतों का होना और उसमें प्राकृतिक पारद का जमा होना कोई असंभव बात नहीं। ऐसी दशा में रसरत्नसमुच्चय की यह कथा रस गंधक यांगिक (हिंगुल) बनाने की क्रिया द्योतक होने में कोई सन्देह नहीं रह जाता। केवल यह भाव संस्कृत की ऐसी भावगर्भित काव्य शैली में वर्णित है, कि जिसका ठीक ठीक भावार्थ प्रत्यक्ष देखे बिना या प्रत्यक्ष दर्शियों के वर्णन को पढ़े बिना हृदय में जमना कठिन है। इसी लिये ये अवतरण देखकर वैद्यों से निवेदन है कि वे खनिज विषयक प्राच्य प्रतीच्य प्राप्य अनेक ग्रन्थ पढ़कर अपने पूर्वाचार्यों के वर्णन को समझ कर वर्तमान काल में शुद्ध द्रव्य प्राप्त करने का दृढ़ प्रयास करें।

• यूनाइटेड स्टेट्स (United States)

प्रायः सारे युनाइटेड स्टेट्स आफ़ अमेरिका में पारदीय खनिज पाये जाते हैं। संसार में स्पेन के उपरान्त कैलिफोर्निया का नम्बर दूसरा है। इस देश में रक्तर्हिगुल, कृष्णर्हिगुल रसपुष्प (केलोमेल) और प्राकृतिकपारद प्रायः सहयोग में मिलते हैं। पारदीय अन्य खनिज भी साधारणतया इस देश में यत्र तत्र मिल जाते हैं। अमेरिका के संयुक्त राज्य के पारदीय खनिज हलकी जाति के हैं, इनमें पारद ०.५% फी सदी निकलता है। सन् १९१८ के उपरान्त पारद का मूल्य गिर जाने से और खान के व्यवसाय का व्यय बढ़ जाने से यहां के पारद की निकासी पर बुरा प्रभाव पड़ा है जिससे सन् १९२१ में ६३३९ फ्लास्क ही पारद निकाला गया। यह मात्रा सन् १९२० की अपेक्षा अधिक है और सन् १९१२ से १९१९ तक की अपेक्षा चतुर्थांश के लगभग है और जो सन् १८५० से अबतक के निकासी को देखने से सबसे अल्प मात्रा मानी जाती है। इस निकासी में भी टेक्सास से ३१ फ्लास्क, कैलिफोर्निया से ३०६१, नवाडा से १०० और इडाहो से १ फ्लास्क पारद निकला है। सन् १९१७ से अलस्का और एरिज़ोना से पारद बिलकुल नहीं निकाला गया, इसी प्रकार इडाहो से सन् १९१९ और १९२० में ओरेगन से १९२१ में एकदम पारद की निकासी नहीं हुई।

अलस्का (Alaska)

इस प्रदेश में जार्ज टाउन (George Town) के १५ मील ऊपर नदी के उत्तरी किनारे पर १९०६ में र्हिगुल के अस्तित्व

का पता लगा और वहाँ पारद निकालने का कार्य प्रारम्भ किया गया। यहाँ पर स्टिबनाइट (Stibnite) स्फटिक (Quartz) साइडराइट (Siderite) आदि खनिजों के सहयोग में हिंगुल पाया जाता है। स्टिबनाइट (एन्टिमनी सल्फाइड) और हिंगुल मालूम होता है साथही साथ भूगर्भ से निकल कर जमा हुए हैं, क्योंकि एक दूसरे पर जमे हुए पाए जाते हैं। कहीं पर स्टिबनाइट पर हिंगुल जमा हुआ मिलता है तो कहीं पर स्टिबनाइट हिंगुल पर जमा मिलता है। जहाँ पर ये खनिज प्राप्त होते हैं वह स्थान दुर्गम होने के कारण पारद निकालने का कार्य बन्द सा रहा। तथापि सन् १९१६ में वहाँ पर नवीन पद्धति से कार्य प्रारम्भ किया गया और जो माल निकला वह वहाँ के ही व्यवसायियों के हाथ बेच दिया गया। इसी नदी के बहाव की तरफ १०० मील नीचे की ओर एक स्थान पर हिंगुल पाया गया है। किन्तु वहाँ पर भी पारद निकासी का कार्य अबतक प्रारम्भ नहीं हुआ है। इसके अतिरिक्त भी अन्य कई स्थानों में हिंगुल पाया जाता है और सैकड़ों पाउन्ड निकाला जा सकता है। नोमे सीवार्ड पेनिन्सुला (Nome Seward Peninsula) से लगभग ६० मील की दूरी पर 'फ्लेसर माइनिंग डेनियल क्रीक' नामक स्थान है। वहाँ पर एकत्रित संगृहीत रूप से थ्रच्छी मात्रा में हिंगुल मिलता है। इसी जिले में एक स्थान और है जिसे 'फ्लेसर आफ़ पेरन क्रीक' कहते हैं। वहाँ पर हिंगुल का जमाव अधिकमात्रा में है।

एरिज़ोना (Arizona)

इस प्रदेश में ६ मील तक लम्बे और ११ मील तक के चौड़े फैलाव में पारदीय खनिज पाये जाते हैं। जिस भाग में

हिंगुल मिलता है वह ३०० से ५०० फीट की दूरी पर क्षेत्र रूप से विभक्त है। पारद निकालने का सारा कार्य खनिज की अधिकता को देखकर बीच के भाग में प्रारम्भ हुआ है। यहां पर हिंगुल पृथ्वी की शिरा और छोटे छोटे गर्त व खंडहरों में पाया जाता है। कभी कभी रौप्यमाक्षिक, सुवर्णमाक्षिक, गैरिक आदि के साथ में भी हिंगुल मिल जाता है। एक स्थान पर ३ मील चौड़ा हिंगुल प्राप्ति का क्षेत्र है, जहां पर कृष्ण और रक्त दोनों प्रकार का हिंगुल, स्फटिक, सुधापाषाण, गैरिक आदि की भूमि में पाया जाता है। सन् १९१७ में ४० फ्लास्क पारद इस प्रदेश से निकला था।

कैलिफोर्निया (California)

सन् १८५० से १९२१ तक कैलिफोर्निया पारद निकालने का प्रधान देश रहा है। यहां से २२६१८१ फ्लास्क या ७६२६३ मेट्रिक टन्स पारद वार्षिक निकला है। यह मात्रा प्रसिद्ध स्पेनदेशीय अल्माडन की खानों की निकासी से ५० वर्ष की पारद की पैदाइश के बराबर है। किसी कारणवश कैलिफोर्निया की अपेक्षा टेक्सास की पारद की निकासी सन् १९२१ में अधिक रही है। लगभग ८०% फीसदी अमेरिका के संयुक्त राज्य की पारद की पैदाइश १० खानों से हुई है। इन खानों में मुख्य न्यूएल्माडन की खान है, जहाँ से सन् १८५० से १९१७ ई० तक १०२११८३ फ्लास्क पारद निकला है। इससे दूसरे नम्बर पर न्यूइड्रिया की खाने हैं, जहाँ से सन् १८५८ से १९१७ ई० तक ३०६४७५ फ्लास्क की निकासी हुई है। तीसरा नम्बर ओटहिल का है, यहां से

१८७६ से १९१७ ई० तक १५२०६६ फ्लास्क पारद की निकासी हुई है। केलिफोर्निया का पारदीय खनिज प्राप्ति का स्थान ४०० मील लम्बा और ७५ मील चौड़ा है और यहां पर प्राचीन व अर्वाचीन ज्वालामुखी के उद्गम चिन्ह अनेक पाये जाते हैं। सन् १६१६ ई० में पारदीय खानों के मुख्य जिले सान बेनीटो (San Benito, New Idria Mines) सान्टा क्लेरा (Santa Clara) सोनोमा (Sonoma) सान लुइस ओबिस्पो (San Luis Obispo) नापा (Napa) और लेक (Lake) गिने जाते हैं।

कार्न कौन्टी (Karn County)

कार्न नाम के प्रान्त में पारदीय खनिज प्राप्ति का जो स्थान है वह केलिफोर्निया के श्वात पारदीय खनिज प्राप्ति स्थान से भिन्न है। यहाँ का कारखाना हाल ही के शोध का फल है। यहाँ की गहराई केवल ३० फीट ही भूगर्भ में है। यहाँ से पारद का निकासी हुई है किन्तु उसका व्यापार उपलब्ध नहीं है। ग्रेट वेस्टर्न नामक खान से सन् १८१३ से १६०६ तक ९८३१६ फ्लास्क पारद निकाला गया। बादका यह खान बन्द कर दी गई है। प्रसिद्ध सल्फर-बैंक नामक गन्धक की खान से, जहाँ पहिले केवल गन्धक की ही निकासी होती थी, ७२४०० फ्लास्क पारद निकाला गया है। यहाँ के स्रोत के जल से जो गैस निकली हैं वे कार्बोनिक एसिड, सल्फ्युरेटेड हाइड्रोजन, सल्फर डाई ऑक्साइड, और मार्शगैस हैं। इन जलों में कार्बोनेट्स, बोरेट्स, सोडियम् क्लोराइड (नमक) पोटैशियम् क्लोराइड, अमोनियम् क्लोराइड (नोसादर) व अलकलाइन सल्फाइड घुले पाये जाते हैं। दिगुल ध्रुवित बेसाल्ट नामक ज्वालामुखी

पाषाण खंडों के तले पाया जाता है जो किसी स्थान पर दानेदार और किसी स्थान पर मृत्तिकाकृति का हिंगुल जमा मिलता है। यहां के हिंगुल के सहयोग में गन्धक, ओपल, स्फटिक और रौप्यमाक्षिक पाये जाते हैं। बेकर (Backer) का कथन है कि सल्फरबैक के अन्तराल की खान केलिफोर्निया के प्रधान पारदीय खानों के मुक्राबले की है।

१६१७ में सल्फरबैक नामक खानों का माल ८००,००० टन बाष्प यन्त्रों से पीसा गया था और सब से अधिक पारद इस देश से सन् १६१८ में निकाला गया किन्तु सन् १६१६ में फिर पारद की निकासी नाम शेष रह गई। लेक जिले में पारद निकालने के स्थान सेन्ट जोन्स (St. Johns) और हेलन (Helen) हैं। नापा जिले में सन् १८६३ से १९१९ तक ३३८६५१ फ्लास्क पारद की निकासी हुई। इसके अतिरिक्त कोरोना (Corona) नाक्स विल (Knox ville) मनहाटन (Manhattan) नामक खानों में भी रक्त हिंगुल, कृष्ण हिंगुल रौप्यमाक्षिक, गन्धक, स्टिबनाइट के साथ पाया जाता है किन्तु सन् १६२० से इन खानों का व्यवसाय बन्द है।

ओट हिल (Oat Hill) की खान में रेणुशिला के अन्दर जमा हुआ हिंगुल पाया जाता है। सन् १८७६ से १६१७ तक १५२५६६ फ्लास्क पारद की निकासी हुई है।

सान बेनिटो (San Benito) जिले में ३३४२५६ फ्लास्क पारद सन् १८६५ से १६१६ तक निकाला गया। अमेरिका के संयुक्त राज के पारद निकासी का यह जिला सब से अधिक उपजाऊ समझा जाता है। न्यू इड्रिया की खान से इस स्टेट

के सब पारद निकासी की अपेक्षा आधा पारद निकाला गया है। न्यू इड्रिया की खान में अधिकतर कृष्णहिंगुल पाया जाता है। यहां पारद प्राप्ति का स्थान २॥ मील के फैलाव में है। १५—२० मील भूगर्भ के अन्तराल में खुदाई का काम हो रहा है।

सान, लुइस, ओबिस्पो जिलों में (San, Luis, Obispo County) वहां के आदिमनिवासी (Indians) शताब्दियों से हिंगुल को रँग के काम में उपयोग करते हैं। व्यापारियों ने सब से प्रथम सन् १८६२ में इस स्थान के खान की रक्षा की और सन् १८७६ से १९१८ तक ४९६०० फ्लास्क पारद निकला।

क्लो (Klau) नामक खान से १४२१३ फ्लास्क पारद निकाल कर सन् १९१६ में काम बन्द कर दिया गया था और फिर सन् १९१६ में प्रारम्भ हुआ। यहां पर हिंगुल, स्फटिक और रौप्य मात्तिक के सहयोग में पाया जाता है। यहाँ पर के खनिजों के साथ प्राकृतिक गन्धक भी पाया जाता है।

ओसीनिक (Oceanic) नामक खान से १९१७ के अन्त तक २३५१ फ्लास्क पारद निकाला गया था। इस जिले में केवल इसी खान से सन् १९१८ में १४६० फ्लास्क पारद की निकासी हुई। यहाँ की भूमि में हिंगुल एकसा सर्वत्र पाया जाता है। यहां सन् १९१६ में पारद का एक और खनिज ५'१० फुट की गहराई पर पाया गया है।

सेन्टा क्लेरा काउन्टी (Santa Clara County)

इस प्रान्त में न्यू एल्माडन की खानों का पता सन् १८२४ में लग गया था, किन्तु सन् १८४९ तक यहाँ के पारदीय खनिज

हिंगुल की पहिचान न हो सकी। यहां की खानों से पारद की बड़ी मात्रा निकालने का उल्लेख अन्यत्र किया जा चुका है। इस समय तक १८ कूप (Shafts) खोदे गये हैं। यहाँ के भूगर्भवर्ती कन्दराओं की लम्बाई १०० मील के लगभग है। इन कन्दराओं में से अनेक कन्दराएँ अपने आप बैठ भी गई हैं। सन् १६१७ में सब से अधिक गहराई २४४० फुट मानहिल नामक पहाड़ी की चोटी (जो १६०० फुट ऊँची है) के नीचे थी। इसलिये संसार में यह सब से बड़ी और गहरी खान गिनी जाती है। ८०० फुट गहराई के नीचे का भाग कुछ वर्ष हुए बन्द कर दिया गया है। स्पेन की अल्माडन खानों के हिंगुल की अपेक्षा यहां का माल अत्यन्त निम्न श्रेणी का है, जिसमें केवल १॥ से १ फीसदी तक पारद पाया जाता है। इस खान का वर्णन पढ़ कर यह सहज में ही समझ में आ जाता है कि रसरत्न-समुच्चय में जो “शतयोजन निम्नास्ते जाता कृगस्तु पंच च” लिखा है, वह कहाँ तक सत्यतायुक्त है। संसार में अनेक परिवर्तन होते रहते हैं। उस समय पारद निकालने के केवल पांच ही कूप खुदे मिले होंगे। आज यहां पर छठारह कूप खुदे पाये जाते हैं। शतयोजन निम्न मानना इस दशा में ठीक हो सकता है कि पृथ्वी के उपरितल से जो पारद निकालने के लिये भूगर्भ में खुदाई की गई वह खुदाई नापकर जोड़ने से शत योजन अर्थात् ४,२०० मील के लगभग गहराई समझी जावे। आजकल भी इसी प्रकार की मापने की प्रथा प्रचलित है। योजन शब्द से चार कोस साधारणतया माने जाते हैं, किन्तु इसका भी शास्त्रीय विचार करने से पता लगता है कि एक योजन ४ मील नौ सौ साठ गज का होता है। मेदिनीकार

ने “योजनं परमात्मनि चतुष्कोश्यां च योगे च” लिखा है जिससे चार कोस स्पष्टतया माना है। इसी प्रकार तारानाथ ने “स्याद्योजनं कोशचतुष्टयेन” लिखा है। लीलावती ने भी विशेष गणना करके चार कोश ही का योजन माना है। किन्तु उस गणना से ३२००० हाथ का योजन होता है। हाथ के नाप के लिए मान शास्त्र में १२ अंगुल का हाथ माना है। लीलावती और मान-शास्त्र की संज्ञाओं में कुछ भेद है।

“द्वादशांगुलिकाहस्त तद्वयं तु शयः स्मृतः
तच्चतुष्कं धनुःप्रोक्तं कोशो धनुसहस्रिकः ॥
तच्चतुष्कं योजनं स्यात्.....

(मान शास्त्र)

इस हिसाब से १६००० हाथ का एक योजन होता है।

हस्तैश्चतुर्भिर्भवतीह दंडः।

कोशः सहस्र द्वितयेन तेषाम् ॥

स्याद्योजनं कोश चतुष्टयेन।

इस हिसाब से ३२००० हाथ का एक योजन होता है।

इन हिसाबों का आजकल के हिसाब से मुकाबला करें तो ८००० गज का एक योजन होता है। एक मील १७६० गज का होता है।

इन अवतरणों को देखने से साधारणतया यह विदित होता है कि निम्न का अर्थ वही करना चाहिये जो ऊपर किया गया है अर्थात् निम्न का अर्थ एकदम गहरा नहीं किन्तु भूगर्भ में जो अनेक गुफायें पारद निकालने के लिये खोदी जाती हैं उनकी नाप करके एकत्रित लिखी गई है। एक स्थान पर कूप

की गहराई २४५० फुट तक हुई है। यह गहराई यदि एक योजन तक चली जावे तो वहां पर मनुष्य का जीवन सम्भव नहीं है। मेरे विचार में आजकल की प्रथा के अनुसार गणन और नाप का व्यवहार पूर्व काल में भी था और उसका उपयोग उसी तरह समझने के लिये इस समय भी करना चाहिये। पेसा करने से व्यवहार में सरलता होजाती है और असम्भवता का दोष दूर हो जाता है। इस भाव को स्पष्ट समझने के लिये आजकल पारद की खान के विषय में जो प्रत्यक्ष है वह नीचे लिखे अवतरण को विचारने से ठीक समझ में आ सकता है।

Santa Clara County—

The new Almadan groups of mines was discovered in Santa Clara County by two Mexicans in 1824, but the ore was not recognized as a Cinnabar until 1845. The large output of mercury from this mine has already been mentioned, altogether 18 shafts have been sunk, and there are nearly 100 miles of underground workings, a large proportion of which have of course caved in the greatest depth in 1917 was 2450 ft. below the top of Mine Hill (1600 ft. Altitude). So it is the deepest and most extensive mercury mine in the world. (*Monographs on mercury ore* Page 757).

सोलनो (Solano) नामक जिले में सन् १८७३ से १९१८ तक १७११६ फ्लास्क पारद की निकासी हुई। यहाँ की खान

का नाम सेंट जोन्स (St. Johns) है । इस खान का पता सन् १८५२ में लगा और सन् १८७३ में यहां से पारद निकालने का व्यवसाय प्रारम्भ हुआ । तब से सन् १९१७ तक १६४५५ फ्लास्क पारद निकाला गया था । यहां पर हिंगुल रौप्यमाक्षिक या विमल (Marcasite) के साथ पाया जाता है । हिंगुल के समीप जाड़ों में गाढ़ा गाढ़ा खनिज तैल भी जमा मिलता है । यह खान ६५० फुट गहरी है ।

सोनोमा (Sonoma) जिले में सन् १८७३ से १६१६ ई० तक ६९०६३ फ्लास्क पारद निकाला गया । जिसमें ग्रेट ईस्टर्न और माउन्ट जेक्सन नामक खानों से १८७५ से १९१७ तक ४२०६२ फ्लास्क पारद की निकासी हुई । यहां पर भी हिंगुल रौप्य माक्षिक के साथ में पाया जाता है । इसी जिले में रेटल स्नेक (Rattle snake) खान में प्राकृतिक पारद (Native mercury) काली मट्टी की शकल में जमा हुआ मिलता है । इसके साथ स्नेहयुक्त शिलाजन्तु (Oily Bitumen) भी मिला पाया जाता है ।

सोक्रेट की खान (Socrate's mine) में भी प्राकृतिक पारद पाया जाता है । नीचे की गहराई में हिंगुल भी मिलता है । सन् १६१८ में यहां से कुछ पारद की निकासी की गई किन्तु १६१६ में काम बन्द रहा ।

ट्रिनिटी (Trinity) जिले में १८७५ से १९१७ तक ३११६६ फ्लास्क पारद उत्पन्न हुआ । इसमें से केस्टेला (Castella) के पास की अल्टूना (Altoona) खान से २६००० फ्लास्क पारद निकला, शेष अन्यत्र से निकला । यहां पर जो हिंगुल मिलता है उसका क्षेत्रफल ४०० फुट लम्बा और ४ से

१० फुट चौड़ा है। येलो (Yellow) जिले में रीड (Reed) नामक खान में कृष्णहिंगुल ही मुख्य खनिज रौप्यमाक्षिक के साथ पाया जाता है। यहां की खान ३०० फुट गहरी है।

इडाहो (Idaho)

वेली (Velly) जिले में १ मील लम्बी चौड़ी भूमि में हिंगुल रौप्यमाक्षिक के साथ मिला पाया जाता है। यहां की फर्ने नामक खान से १६१७ में ५ फ्लास्क और १९१८ में २२ फ्लास्क पारद की निकासी हुई।

निवाडा (Nevada)

इस स्टेट में बहुत सी जगह फैला हुआ हिंगुल पाया जाता है। पिलोर नामक पहाड़ के उत्तर-पूरब दो मील की दूरी पर और मिना स्थान से दक्षिण-पूरब आठ मील की दूरी पर एक पहाड़ है। उसमें हिंगुल अधिकता से मिलता है, इस लिये उसका नाम हिंगुल पर्वत (Cinnabar mountain) रख दिया गया है। क्या हमारे देश में भी आसाम की हिंगुलाज देवी का इसी कारण से तो गाम नहीं स्थिर हुआ है, प्रति वर्ष हजारों यात्री वहां पर दर्शन करने जाते हैं। सन् १९१० से १६१० तक निवाडा से १३७४६ फ्लास्क पारद निकाला गया है। किन्तु १९१९ से यहां का कार्य शिथिल हो गया है और १६२० में ७६ फ्लास्क ही पारद निकाला गया। सन् १६२१ में १०० फ्लास्क पारद की निकासी हुई।

ओरेगन (Oregon)

इस राज्य में हिंगुल सर्वत्र पाया जाता है किन्तु पारद के निकालने की खानें थोड़ी सी हैं।

जेक्सन जिले में गोल्ड हिल (सुमे६) के उत्तर १२ मील दूरी पर हिंगुल अधिक मात्रा में पाया जाता है। यहाँ पर १०० से २०० फुट चौड़ा क्षेत्र है जहाँ पर ग्रेनाइट रेणु पाषाण का सांयोगिक जमावा है। यहाँ के खनिज में हिंगुल, प्राकृतिक पारद, रौप्यमाक्षिक, सुवर्ण, यशद और कृष्णहिंगुल सा एक भारी खनिज पाया जाता है। सर्वत्र उत्तम श्रेणी का खनिज मंडूर की शकल का १ से २० इञ्च मोटा और वृक्क की आकृति में पाया जाता है। यहाँ पारद निकालने का व्यवसाय कमशः उन्नति कर रहा है। यहाँ की खान २७२ फुट गहरी और ६० फुट लम्बी इस समय है। यहाँ से १५०० टन खनिज से ४२३७५ पाउन्ड पारद निकाला गया।

लेन (Lane) जिले में हिंगुल और प्राकृतिक पारद साथ साथ पाये जाते हैं। रौप्यमाक्षिक और विमल भी हिंगुल के सहयोगी खनिज हैं। यहाँ का मुख्य खन्दाक (Stapa) १९० फुट लम्बा और १५ फुट चौड़ा है जिसकी गहराई लगभग ४०० फुट के नीचे चली गई है। इसका अन्दर का खनिज १५०००० टन कूता गया था। यहाँ की खान पारद निकालने की मुख्य खान समझी जाती थी किन्तु १९१९ में बन्द कर दी गई। सन् १९१६ से १९२० तक १८५२ फ्लास्क पारद की निकासी ओरेगन राज्य से हुई।

टेक्सास (Texas) राज्य की सारी पारद की निकासी ब्रिक्स्टर जिले (Brewster County) से हुई। इस स्थान की खोज १८६४ में हुई और १८६६ से १९१६ तक ८९६७० फ्लास्क पारद निकाला गया। यहाँ का पारद प्राप्ति का क्षेत्र १५ मील लम्बा और २ मील चौड़ा है। यहाँ की सब से

अधिक गहराई १६०६ में ३०० फुट थी किन्तु चर्नड्रिल (Churn drill) से ४४७ फुट की गहराई पर भी हिंगुल के चिह्न प्राप्त हुए। यहाँ पर पारद के अनेक खनिज पाये जाते हैं। किसी किसी कन्दरा में ओक्सी क्लोराइड, टर्लिंग्वाइट, इंग्लस्टोनाइट, मेट्रोडाइट, प्राकृतिक पारद और अल्प मात्रा में केलोमल (सुगुण) हिंगुल के साथ साथ पाये जाते हैं। टेक्सास के टर्लिंग्वा (Terlingua) जिले में केलिफोर्निया की अपेक्षा अधिक उत्तम श्रेणी का हिंगुल प्राप्त होता रहा है। यहाँ की खान २५०० फुट लम्बी और ७५० फुट गहरी है। यहाँ पर चूने के कङ्कड़ के साथ साथ हिंगुल, प्राकृतिक पारद, खालिस गन्धक, रौप्यमाक्षिक और विमल अन्य खनिजों के सहयोग में पाये जाते हैं। १८६६ से १९२० तक टेक्सास से ६३२७१ फ्लास्क पारद की निकासी की गई। सब से अधिक माल १६१७ में १०७६१ फ्लास्क पारद निकाला गया, बाद में काम शिथिल पड़ गया तथापि सन् १६२१ में केलिफोर्निया की अपेक्षा टेक्सास में पारद अधिक निकाला गया। उसकी मात्रा ३१४४ फ्लास्क थी।

उटाह (Utah)

यहाँ पर मृत्तिका जाति के हिंगुल से बहुत मात्रा में पारद निकालने का अध्यवसाय होता रहा। यहाँ पर सोने की खान में से ही पारद के खनिजों के निकास का पता लगा। इस खान में टिममनाइट (Tiemannite Hgsse) और ओनाफ्राइट (Onofrite Hgsse) नामक पारदीय खनिजों से भी थोड़ा पारद निकाला गया। १६०५ में १११३ फ्लास्क पारद निकाला गया था।

वाशिंगटन (Washington)

यहां के प्रान्तों में भी पारद की पर्याप्त निकासी हुई है, तथापि १९१२ के उपरान्त पारद के भाव के गिर जाने से और निकासी का खर्च बढ़ जाने से इसका व्यवसाय मन्द पड़ गया है। स्पेन की सरकार अपने यहां पारद की निकासी अधिक बढ़ाने के लिये नवीन आविष्कारों का बाहुल्य से उपयोग कर रही है, ऐसी दशा में अमेरिका के संयुक्त राज्य के पारद व्यवसाय को अवश्य हानि पहुँचेगी। यहां पर १०% फीसदी वर्तमान में पारद निकासी पर कर लगता है। सन् १९१४ से १९२१ तक नीचे लिखी सारणी के अनुसार संयुक्तराज्य में पारद निकाला गया है। यह मान ७५ पाउन्ड फ्लास्क का है।

	कैलि- फोर्निया	टेक्सास	निवादा	मोरेगन	एरिजोना इडाहो. वाशिंगटन	टोटल	फ्लास्क
१९१४	११३०३	३१५६	२०८६	—	—	१६५४८	,,
१९१५	१४२८३	४४२३(अ)	२३२७	(क)	—	२१०३३	,,
१९१६	२१०४५	६३०६ (ब)	२१६८	३७८	५ (ख)	२६६३२	,,
१९१७	२३६३८	१०७६१	६६७	३१३	१२०(ग)	३६१५६	,,
१९१८	२२६६४	८४५१	१०४४	७०२	२२ (घ)	३२८८३	,,
१९१९	१५२०५	५०१९	७५६	४३५	—	२१४१५	,,
१९२०	६८६६	३४३६	८३	२४	—	१३३६२	,,
१९२१	३०५५	३१२३	१००	—	१ (घ)	६३३६	,,

- (अ) इसमें पेरिजोना की निकासी भी सम्मिलित है ।
 (ब) इसमें भी पेरिजोना और ओरेगन की निकासी मिली हुई है ।
 (क) टेक्सास के साथ निकासी दी गई है ।
 (ख) केवल पेरिजोना की उत्पत्ति है ।
 (ग) पेरिजोना ४०, वाशिंगटन ७५ और इडाहो ५ फ्लास्क है ।
 (घ) केवल इडाहो की निकासी है ।

दक्षिण अमेरिका (South America)

ब्राजिल (Brazil) यहाँ पारद के खनिज पेट्रोलियम वाले शिलाजतु की भूमि में छोटे छोटे कणों के रूप में बिखरा पाया जाता है या सुवर्ण युक्त स्फटिक के साथ हिंगुल मिला पाया जाता है ।

चिली (Chile)

इस देश में हिंगुल रेड पाउडर (Red Powder Oxide) गिरिसिन्दूर प्राकृतिक पारद टिट्रेहाईड्रेट (Tetrahydrite) आदि पारद के खनिज पाये जाते हैं । इनके सहयोग में रौप्य-माक्षिक, सुवर्णमाक्षिक, गैरिक, कठिन स्फटिक आदि मिले रहते हैं । इसी जिले में प्राकृतिक पारद रजतमिश्रक चिरकाल से पारद निकालने के लिये ज्ञात रहा है । इसके आसपास के स्थानों में हिंगुल भी पाया जाता है ।

कोलम्बिया (Columbia)

इस देश में हिंगुल सूक्ष्म चूर्ण के रूप में इधर-उधर फैला हुआ पाया जाता है । रौप्यमाक्षिक और हिंगुल के साथ साथ प्राकृतिक पारद भी मिला पाया जाता है । सुवर्ण और रजत

के प्राकृतिक पारदीय मिश्रक भी यहां पर प्राप्त होते हैं। यहां के खनिज हलकी जाति के होने के कारण पारद निकालने का व्यवसाय चिरकाल तक नहीं चल सकता।

डच गायना (Dutch Guiana)

इस देश में ६ मील के फैलाव में हिंगुल का विस्तार मालूम हुआ और परीक्षा के लिये जो कूप खोदा गया उसमें २० फुट की गहराई पर उत्तम श्रेणी का खनिज प्राप्त हुआ। इसके उपरान्त यहाँ का विशेष विवरण प्रकाशित नहीं हुआ न व्यापार के लिये यहां कोई अभ्यवसाय ही किया गया।

यूकोडर (Ecuador)

यहाँ पर पारद निकालने का व्यवसाय बहुत प्राचीन काल से चलता है। आजकल खान में खनिज शेष नहीं है तथापि आसपास की भूमि में, प्राकृतिक पारद पाया जाता है। कहीं कहीं पर हिंगुल भी मिला है।

पेरू (Peru)

पेरू के आदिम निवासी लोग हिंगुल को रंगसाजी में व्यवहार करते थे; ऐसी किंवदन्ती प्रसिद्ध है। यहाँ पर पारद के खनिजों का बहुत बड़ा व्यापार रहा है। सन् १५६६ से १५७० के लगभग स्पेन राज्य ने २५०००० ड्यूकेटस (लगभग ११७००० पाउन्ड) देकर यहाँ की पारद की खान खरीद ली थी। यह खान २२० फुट लम्बी, १११ फुट चौड़ी और ४४५ फुट गहरी थी। बाद में निरन्तर कार्य होते रहने से यहाँ की गहराई १४०४ फुट तक हो गई थी। इस खान का काम बेसिल-सिले रहा, पर खुदाई का काम खूब होता रहा। यहाँ पर एक

स्थान की खुदाई मुरब्बा ४००० गज और उपरितल पर गहराई १०० से २०० फुट की है। सन् १५०१ से १६०३ तक इस खान से माल इस प्रकार निकाला गया—

समय	टोटल पारद की उत्पत्ति	वार्षिक उत्पत्ति किन्टल्स सेट्रिकन में	वार्षिक उत्पत्ति फ्लास्क के हिसाब में
१५०१—१७८९	१०४०४६६	२१८	६४२४
१७९०—१८४३	६५७६६	४५	१६३०
१८४४—१९०३	१००००	७०६	२२५

यहां पर की गहराई की नाप करने के लिये २१३ फुट गहरा कूप खोदने के लिये प्रयत्न किया गया किन्तु वह १९७ फुट पर जाकर विफल हुआ, तब अन्यत्र प्रयत्न किया गया। वहाँ पर ९८५ फुट गहराई तक पहुँच कर फिर पूर्व खनित भूमि के अन्तराल में पहुँचने का प्रयत्न किया जा रहा है। यदि यह खुदाई पूर्ण हो गई तो ३९३७ फुट की गहराई होगी, इस प्रयत्न के लिये भट्टियाँ (Furnaces) तैयार हो गई हैं। इस खान के पास में उष्ण जल के कई स्रोत हैं।

जुनिन (Junin)

इस विभाग के योलि (Youli) जिले में स्फटिक की शिराओं में और रेणु-पाषाणों में हिंगुल जमा हुआ पाया जाता है। हिंगुल के सहयोग में रौप्यमासिक पाया जाता है। यहाँ पर हिंगुल प्राप्ति के स्थान के समीप उष्णजल का स्रोत है और उसकी तह पर प्राकृतिक गन्धक पाया जाता है। इस

जिले में एक स्थान अनकाचस (Ancachs) कहलाता है । वहां पृथ्वी की शिराओं में गेलेना, यशद, रौप्यमाक्षिक और सुवर्ण-माक्षिक के साथ साथ हिंगुल भी पाया जाता है ।

हुवानुको (Huanuco)

इस विभाग के चोन्टा (Chonta) जिले में तीन जमाव हैं जिसमें रौप्यमाक्षिक, यशद, गेलेना, हिंगुल, टेट्राहिड्रेट (Tetrahydrite) आदि रेणु-पाषाण और स्फटिक-पाषाणों के साथ पाये जाते हैं ।

वीनेजुए (Venezue)

सन् १९०४ में यह सूचना प्रकाशित हुई थी कि यहाँ उष्णस्रोत के गन्धक के जमाव के साथ साथ हिंगुल भी पाया जाता है । हिंगुल के साथ रौप्यमाक्षिक भी मिलता है ।

व्योरेवार विवरण का कारण

ऊपर के पारदीय खनिज के व्योरेवार विवरण के लिखने का उद्देश यह है कि रसशास्त्रोक्त पारद गन्धक सम्बन्धी अनेक बातों पर विचार करने के लिये उपयुक्त सामग्री प्राप्त हो सके और साथ ही हमारे देश के भ्रमणशील वैद्य उपयुक्त उष्णस्रोतों के पूज्य धार्मिक कुण्डों व तीर्थों पर जाकर गन्धक व हिंगुल या तत्सम्बन्धी अनेक जानकारीयां प्राप्त करने का प्रयत्न कर सकें । बद्रीनाथ की यात्रा में और बिहार आदि अन्य प्रान्तों में अनेक उष्णस्रोत हैं और वहाँ पर धर्मार्थी प्रतिवर्ष तीर्थ करने जाते हैं । यदि उनका ध्यान इस तरफ आकर्षित

होने लगे तो सम्भव है अनेक प्रकार के अमूल्य खनिजों का पता लग जावे और भविष्य में विदेशियों का मुँह न ताकना पड़े तथा हमारे ही देश में हमारे रसशास्त्र की सामग्री एकत्रित करने की सुलभता हो सके।

पारद और पारदीय क्षारों का शरीर के अवयवों पर प्रभाव

बाह्य शरीर पर प्रभाव.

स्वस्थ चर्म पर रगड़ने से अथवा धूँझ देने से पारदक्षि योग शरीर के अन्दर प्रविष्ट हो जाते हैं। इनका प्रवेश मार्ग रोम कूप और स्वेद-स्रोत हैं। रुग्ण या घृष्ट (Broken) चर्म अथवा श्लेष्मधरा कला पर लगाने से पचन-निवारक (Antiseptic) और संक्रमण-नाशक (Disinfectant) प्रभाव करते हैं। विशेषकर यह प्रभाव रसकर्पूर का है। वह एक भाग, पाँच लाख भाग जल में घुला हुआ कीटाणुओं की वृद्धि रोकता है और पचीस हजार भाग में घुला हुआ साधारण जीवाणुओं का नाश करता है। जर्मनी का जो प्लेग-कमीशन बम्बई में प्लेग की जाँच के लिये आया था उसने परीक्षण करके देखा कि एक फीसदी के रसकर्पूर का घोल प्लेग के कीटाणुओं को तत्क्षण नष्ट कर देता है। इसी प्रकार पारद के अन्य क्षार भी पराश्रयी (Parasiticide) कीटाणुनाशक हैं। रसकर्पूर का तनुघोल ($1/4$ से $1/8$ ग्रेन रसकर्पूर और जल १ औंस) और अन्य रसपुष्प और पारदीय क्षारों के लेप आदि शोथहर (Antiphlogistic) संकोचक (Astringents) शक्तिप्रद

(Stimulant) और प्रतिद्रावक (Resolvent) माने जाते हैं । इसके विपरीत घनद्रव शोथोत्पादक होते हैं ।

आन्तरिक शरीर पर प्रभाव

आन्तरिक शरीर पर भी वैसा ही प्रभाव होता है जैसा बाहर के शरीर पर होता है । अधिकांश में भीतरी भाग में श्लेष्मधरा कला का ही आवरण होने के कारण चर्म की अपेक्षा पारदीय चारों का प्रभाव शीघ्र होता है ।

महास्रोत (Gastro—intestinal tract) पर प्रभाव—

पारद के रस कर्पूरादि क्षार मुख, दन्तमूलवेष्टक और लाला ग्रन्थियों पर प्रभाव करते हैं जिससे लाला-स्राव और मुख-पाक हो जाया करता है । यह प्रभाव रसकर्पूर खिलाने के समय स्थानीय नहीं होता किन्तु जब वह शरीर में व्याप्त होकर पुनः बाहर लाला ग्रन्थियों द्वारा निकलता है उस समय देखा जाता है । जो वैद्य फिरंग रोगी को बड़ी मात्रा में रस कर्पूर शीघ्र लाभ होने के लिये खिलाया करते हैं उन्होंने देखा होगा कि कुछ ही समय के उपरांत रोगी का मुख सूज जाता है और उससे लाला स्राव अविरत प्रवृत्त होने लग जाता है एवं यह स्राव-धीरे धीरे गाढ़ा होने लगता है और दाँत प्रायः सब हिल जाते हैं । पारदीय क्षार आमाशय में पहुँचने पर विशेष जटिल यौगिक के रूप में परिवर्तित होकर प्रथम अघुलन शील बनते हैं । इनमें मुख्यतः अल्युमन सोडियम क्लोराइड (साधारण लवण) और क्लोरिन मिले रहते हैं । ये प्रारम्भ में अघुलन शील होते हैं किन्तु फिर अल्युमन या नमक जो आमाशय में रहता है उसके आधिक्य से घुलन शील होकर

शीघ्र शरीर में प्रवेश कर जाते हैं। सम्भवतः इसी लिये पारद प्रयोग के समय में वैद्य लोग नमक का पट्टेज कराते हैं। लघु अंत्र के ऊपरि भाग और ग्रहणी में खनिज पारद, कज्जली, रस पर्पटी, मुग्ध रस (Grey-powder) रस पुष्प (Calomel) के जाने से स्थानीय ग्रान्थिक उद्रेचन (Glandular-secretions) आंत्र गति (Peristalsis) बढ़ाते हैं। इस प्रभाव का फल यह होता है कि आंत्रिक द्रव इतनी शीघ्रता से नीचे की ओर गति करने लगते हैं कि जिससे साधारण पित्त जो स्वाभाविक दशा में शरीर में पुनः शोषित हो जाता है वह नहीं हो पाता और दस्त गहरा हरा (Dark-green) सा होने लगता है; इस लिये पारदीय क्षारों को रेचक मानते हैं। यह रेचक शक्ति क्षार विरेचनों के योग से अधिक हो जाती है। इस प्रभाव के लिये मेगनेसियम सल्फास कृष्णलवण मिश्रित पंचसकारादि योग व्यवहार किये जा सकते हैं। आजकल ब्लु पिल (इच्छा भेदी) केलोमल (रसपुष्प) आदि रात्रि में सेवन करा कर प्रातः काल क्षार विरेचन पिलाने की प्रथा प्रायः पाश्चात्य चिकित्सकों में प्रचलित है। पेसा करने से मृदु-विरेचन हो जाया करता है। किसी शारीरिक क्षमता आदि के कारण रसपुष्प आदि लेने पर विरेचन न हो तो ये शारीरिक विकृति पैदा करते हैं। अतः रोगी की पारदीय क्षमता का पूर्ण विचार कर सावधानी से इसका प्रयोग करना चाहिये। पारद के यौगिक लघु अंत्र में होने वाली सड़ाई को भी दूर करते हैं। इस लिये रस चिकित्सक रसपर्पटी, ताम्रपर्पटी, पंचामृतपर्पटी, सुवर्णपर्पटी, आदि प्रयोग व्यवहार में लाते हैं। ऐसे प्रयोगों से फूले हुवे दस्त बन्द हो जाते हैं और पेट का

फूलना भी कम हो जाता है एवं रोगी के शरीर में शक्ति पैदा होती है। इन प्रयोगों के साथ नमक वाले भोजन बन्द कर देना अच्छा है।

यकृत पर प्रभाव—

आजतक मल के रंग को देखकर यह विश्वास किया जाता रहा है कि पारद के क्षार पित्त स्रावक हैं। किन्तु यह विश्वास भ्रमात्मक है। सम्भवतः रसकर्पूर का प्रभाव किसी अंश तक होता है परन्तु साधारणतया शरीर में पुनः प्रवेश होने वाले पित्त की गति अधोगामी हो जाने से पारद और रसपुष्प मल के साथ अधिक पित्त को निकालने में सहायक होते हैं और इनका प्रभाव पित्तस्रोत और पित्ताशय पर उत्तेजक होता है—इस लिये ये पित्त रेचक समझे जाते हैं।

रक्त पर प्रभाव—

रक्त के लाल कणों की वृद्धि करने के कारण पारद के यौगिक शक्तिप्रद (Tonic) माने जाते हैं। आयुर्वेद में रस सिन्दूर, स्वर्ण सिन्दूर, मल्ल सिन्दूर, ताल सिन्दूर, विष सिन्दूर, ताम्र सिन्दूर, शिला सिन्दूर, संग्रह सिन्दूर, चन्द्रोदयमकरध्वज, मकरध्वज, बृहच्चन्द्रोदयमकरध्वज, सिद्ध सूत, स्वल्पचन्द्रोदय मकरध्वज, आदि योग काम में लाते हैं और इनका बहुत उत्तम प्रभाव देखा जाता है। पारद के अतियोग से पांडुरोग होता है। पारदीय प्रयोग रक्त के धवल कणों की गति को मन्द करते हैं। यह प्रभाव पाचन शक्ति की विकृति होने के कारण होता है या उन्नति होने से

होते हैं इसका ठीक ठीक निर्णय नहीं हो सकता है।

वृक्क पर प्रभाव—

रसपुष्प या ब्लूपिल (इन्का मेरी) का प्रयोग करने से मूत्रल प्रभाव देखा जाता है। यह प्रभाव स्क्विल (Squill) और डिजिटेलिस (Digitalis) के सहयोग से अधिक हो जाता है। वृक्क रोगों में सावधानी के साथ रस पुष्पादिक का प्रयोग करना चाहिये। हृदय दौर्बल्य के कारण यदि जलोदर रोग हो जावे तो उसमें इसका प्रयोग लाभकारक हो सकता है।

पारद का शरीर से बहिर्निर्गम (Elimination)

पारद शरीर से मूत्र, पित्त, दूध, स्वेद, लाला द्वारा निकलता है। वृक्क रोग के होने से यह गति और भी मन्द हो जाती है। पारद का मल के साथ निकास कज्जली (Sulphide) के रूप में होता है। यह शरीर के सब अवयवों में जमा पाया जाता है, विशेष कर यकृत और अस्थि के सुधांश भाग में पाया जाता है। लाला स्राव द्वारा निकलते समय मसूड़ों का शोथ हो जाता है और दाँत हिल जाते हैं। यह प्रभाव लाला स्रावोत्पादक कोषों पर होता है या उनके अन्दर आने वाली चेष्टोत्पादक नाड़ियों पर होता है।

फिरंग (Syphilis) के लिये पारद विशिष्ट औषधि मानी जाती है; विशेष कर प्राथमिक और माध्यमिक फिरंग में इसका लाभ प्रदर्शित होता है। संभवतः यह प्रभाव फिरंगोत्पादक कीटाणुओं के नाश करने की शक्ति के कारण होता है। फिरंगोत्पादक पराश्रयी कीटाणुओं को स्पिरोचेटापेलिडा (Spirochoetapallide) कहते हैं।

क्षमता (Toleration)

आयु, स्त्री पुरुषों की भिन्न २ प्रकृति, स्वभाव आदि के कारण पारद के प्रभाव में अन्तर पड़ जाता है। यह नियम सा है कि युवा की अपेक्षा बालक और स्त्रियों की अपेक्षा पुरुष इसको भली भाँति सहन कर सकते हैं। वृक्-रोग, गंडमाला, रक्तपित्त, शारदीयज्वर आदि से पीड़ित रोगी इसके प्रभाव से शीघ्र प्रभावित होते हैं। कुछ प्रकृति पर पारद का इतना शीघ्र विष प्रभाव हो जाता है कि एक मात्रा रसपुष्प की देने से लालास्राव प्रारम्भ हो जाता है। डाक्टर घोष का अनुभव है कि उन्होंने ने एक रोगी को ३ ग्रैन (१॥ रत्ती) केलोमल केलोमिन्थ के सत के साथ मिलाकर दिया और उससे विरेचन भी हो गया किन्तु फिर भी रोगी के लाला स्राव आदि पारदीय विष प्रभाव उत्पन्न हो गये। लेखक का भी एक बार रसपुष्प देने का ऐसा ही कटु अनुभव है। स्त्रियों को गर्भ रहते पारदीय औषधियों का प्रयोग करने में कोई विशेष हानि नहीं है। भेषज्य रत्नावली का “गर्भविलास” रस उप-युक्त औषधि है।

तत्कालिक विष लक्षण (Acute Toxic-action)

साधारणतया पारद के प्रयोग से संस्त्रिया आदि ऊग्र विषों की भाँति तत्क्षण भयंकर विष प्रभाव नहीं देखा जाता; तथापि रसकर्पूरादि पारदीय क्षार यौगिक उग्र विष हैं। इनके प्रयोग से महास्रोत के अन्दर भयंकर प्रभाव होता है जिससे वमन, शूल, विरेचन, रक्तातिसार, मूर्च्छा और मृत्यु तक हो जाया करती है।

प्रतिविष (Antidotes)

प्रारम्भ में सावधानी के साथ वमन कराना या स्टमक पम्प (Stomach Pump) से स्नेह पान कराने के उपरान्त प्रक्षालन करना स्नेहन द्रव दुग्ध अंडे की सफेदी (मल्ब्युमन) तैल आदि का खूब प्रयोग करे। बाद में अल्कोहल और मोर्फाइन (Morphine) का उपयोग करें।

चिरकालिक विष प्रभाव (Chronic Toxic action)

यह प्रभाव उन्हीं रोगियों पर प्रायः देखा जाता है जो या तो पारद का दुरुपयोग करते हैं या आकस्मिक घटना द्वारा पारद धीरे धीरे शरीर में प्रवेश होने दिया करते हैं। उदाहरण के लिए रसकर्पूर के व्यवसाई, पारद की खानों में काम करने वाले या आईनों पर क्रलई चढ़ाने का व्यवसाय करने वाले लिखे जा सकते हैं। इसके विष का प्रथम लक्षण श्वास में दुर्गंध का आना और मसूड़ों में सूजन का उत्पन्न होना समझना चाहिये। इन लक्षणों के देखते ही पारदीय प्रयोग यदि सेवन कराया जा रहा हो तो तत्क्षण बन्द कर देना चाहिये। प्राथमिक लक्षणों के उपरान्त रोगी को मुख में धातु का सा अरुचिकर स्वाद अनुभव होने लगता है। मसूड़े ऐसे सूज जाते हैं कि थोड़े से स्पर्श से रक्तस्राव होने लगता है और दाँत हिल जाते हैं। मुख से लालास्राव प्रारम्भ हो जाता है और गले में कण्ठ शालुक और कण्ठ नाड़ी का शोथ हो जाता है। ज्योंही ये लक्षण अधिकाधिक बढ़ने लगते हैं त्यों ही जिह्वा पर चीरे पड़ने लगते हैं और वह सूज जाती है। कर्णमूल और हनुमूल ग्रन्थियाँ सूज जाती हैं, मसूड़ों में व्रण हो जाते हैं और धीरे धीरे लालास्राव गाढ़ा

और चिकना अविरत मुख से बहने लगता है। ज्वर होता है और रोगी बहुत क्षीण हो जाता है। यदि पारद की मात्रा बढ़ी और चिरकाल तक सेवन की जावे तो उक्त लक्षण अधिक भयङ्कर हो जाते हैं। इसके साथ ही दाँत प्रायः गिर जाते हैं और सारे मुख में ग्रन्थिशोथ हो जाता है। हृन्वस्थिका क्षय, शरीर शैथिल्य, पांडु आदि रोग हो जाते हैं और बार बार रक्तस्राव होने से रोगी की मृत्यु हो जाती है।

साधारणतया पारद के वाष्प से यदि शरीर लगातार सम्बन्धित रहता है तब एक विशेष प्रकार का शरीर में कंप होता है। यह प्रथम मुख मण्डल पर दिखाई देता है और धीरे धीरे हाथ और पैरों की ओर बढ़ता है। जिन मांसपेशियों पर इसका प्रभाव पड़ता है, वे अत्यन्त दुर्बल हो जाती हैं; साथ ही मानसिक दौर्बल्य और ज्ञानेन्द्रियों का क्षय होने लगता है। सामान्य वाताभिहत (लकवा) और इसमें भेद यह है कि इसका कंप पेच्छिक है। किसी कार्य की इच्छा करके मांसपेशियों की गति करते समय इसका प्रकोप अनुभव होने लगता है। पारद साधारण तापक्रम पर उड़ने लगता है। इसकी उड़नशीलता कितनी ही अल्प क्यों न हो बराबर शरीर पर प्रभावित होने से विष लक्षण उत्पन्न हो ही जाते हैं। इसकी शरीर में शोषण होने की गति अविरत प्रवृत्त रह सकती है इसलिये द्रवण आदि पर लगी पारदीय क्रलई से रक्षित रहना चाहिये। समय समय पर ऐसी वाष्प से भी पारद विष का प्रभाव देखा गया है।

पारद और उसके यौगिकों का औषध-विज्ञान

वाह्य प्रयोग

वाह्य शरीर पर पचन निवारक (Antiseptic) क्रिया के लिये रसकपूर और सायानाइड (Cyanide) के घोल व्यवहार किये जाते हैं। विशेष कर रसकपूर का घोल संक्रमण नाशक (Disinfectant) कार्य के लिये और शस्त्र व प्रसव कर्म के निमित्त उपयोग किया जाता है। १ भाग रसकपूर १००० भाग शुद्ध जल में घोलकर शस्त्रागार, टेबल, मेज, कुर्सी, पट्टी, रुई आदि उपयोगी सामान, जिनमें संक्रमण की सम्भावना है, धोये जा सकते हैं। इसी घोल से सर्जन के हाथ और जिस स्थान पर या शरीर के अङ्ग विशेष पर शस्त्रकर्म किया जाय उसको तथा तौलिया आदि व्रणोपचार द्रव्यों को शुद्ध कर सकते हैं। १—१००००, भाग का घोल साधारणतया व्रण प्रक्षालन के लिये व्यवहार कर सकते हैं, किन्तु यदि व्रण दुर्गन्ध युक्त फिरङ्ग रोग सम्बन्धी हो तो पूर्वोक्त घोल (१—१००००) विशेष उपयोगी हो सकता है। गर्भाशय और योनिमार्ग के प्रक्षालन निमित्त १—भाग ५००० भाग जल में घोल कर साधारणतया काम में लाया जा सकता है। यदि इसको चिरकाल तक उपयोग करने की आवश्यकता हो तो १ भाग १०००० भाग जल में ही घुलाकर काम में लावे। प्रोफेसर लोकबुड घुलनशील आयोडाइड का उपयोग पसन्द करते हैं क्योंकि यह शरीर के प्लैयुमन के साथ मिलता नहीं, इसलिये शरीर में शोषण होने का भय अल्प रहता है और रसकपूर के जैसा व्रण पर दुःप्रभाव भी नहीं करता है।

पराश्रयी कृमिनाशक प्रभाव के लिये सिट्रिन (Citrine) और धवलनिक्षेप (White precipitate) के लेप या रस कर्पूर का घोल (१-२ ग्रेन १ औन्स जल) व्यवहार किये जाते हैं । दद्रु, पामा, विचर्चिका आदि चर्म रोगों में भी इसका उपयोग किया जा सकता है । भयंकर पामा, कन्डू की खाज दूर करने के लिये ब्लू आइन्टमेन्ट—केलोमल आइन्टमेन्ट (१ ड्राम रसकर्पूर, वेसलीन १ औन्स) ब्लेकवाश, येलोवाश के प्रयोग से बहुत लाभ होता है । धवल निक्षेप का पूरा शुद्ध नाम (Mercuric Ammonium chloride मर्क्युरिक अमोनियं क्लोराइड) है । पारद के अनेक लेप उत्तजक और शोषक हैं, इस का प्रयोग गंडमाला, गलगंड, अर्बुद, अस्थि का अर्बुद, चिरकालिक सन्धिशोथ, आदि में किया जाता है ।

अङ्गवेन्ट हाइड्रार्जिरं आयोडाइडं—रूब्रम् (लाल मरहम) गलगंड की उत्तम औषध है । इसको लगा कर आँच के पास बैठने से अधिक लाभ होता है । आँखों के विशेष रोगों में केलोमल का अंजन विशेष लाभ कारक माना जाता है ।

शोथहर प्रयोग के लिये हलका सिट्रिन आइन्टमेन्ट ग्रन्थियों पर लगाकर प्लास्टर लगा देने से वे शीघ्र फट जाती हैं । अनेक प्रकार के स्तनविद्रधि आदि शोथों में ओलिफंट हाइड्रार्जिरि का द्रव ५% फीसदी मोर्फाइन (१—६०) मिलाकर लगाने से अधिक लाभ करता है ।

दाहक प्रभाव के लिये मर्क्युरिक नाइट्रेट घोल कर प्रयोग किया जाता है ।

विशिष्ट प्रभाव के लिये मर्क्युरियल लेप ब्लेकवाश, येलो-

वाश प्रतिदिन फिरंग आदि के ब्रणों के धोने के लिये उपयुक्त औषधियाँ हैं। जिन ब्रणों में फिरंग के उपद्रव का सन्देह हो उनको रसकर्पूर के (१—५००) घोल से धो देना अच्छा है। फिरंग के मतानुसार सायानाइड आफ़-मर्करी का घोल (५ से १५ ग्रैन जल १ औंस) फिरंग के लिङ्गब्रण, कंठब्रण, जिह्वाब्रण, गुदब्रण, धोने के लिये बहुत उत्तम है। इसके अतिरिक्त फिरंग जन्य सब प्रकार के कंडु में यह लाभ करता है। बाह्य प्रभाव का उत्तम फल प्रदर्शित करने के लिये पारदीय औषधियों का आन्तरिक प्रयोग साथ २ प्रारम्भ रखना चाहिये। केलोमल का सूक्ष्म चूर्ण फिरंग जन्य नेत्ररोगों में व अन्य आँखों की बीमारियों में लगाया जाता है। इसके लगाते समय पोटाशियं आयोडाइड का प्रयोग पीने की दवाइयों में नहीं करना चाहिये। अन्यथा आंसुओं की ग्रन्थियों के उद्वेजन द्वारा वहिर्निर्गम होते समय केलोमल के साथ मिलकर आयोडाइड ऑफ़ मर्करी बन जावेगा, जिसके प्रभाव से आँखों का भयंकर शोथ हो जाना संभव है।

आन्ध्रान्तरिक प्रयोग—महास्रोत

फिरंगज स्थानीय मुखब्रण रसकर्पूर के घोल से धोने से शीघ्र भर जाते हैं। इस काम के लिये रसकर्पूर ४ ग्रैन, तनु-हाइड्रोक्लोरिक अम्ल १० विन्दु, जल १० औंस का घोल अच्छा है। बच्चों के वमन, जो प्रायः दूध पिलाने के उपरान्त तत्क्षण या दो चार घंटे के उपरान्त हो जाया करते हैं, वे मुग्धरस (ग्रेपाउडर) १/१२ ग्रैन से १/३ ग्रैन की मात्रा दो तीन घण्टे के अन्तराल से देने पर रुक जाते हैं।

बच्चों के फटे हुए हरे, सफेद, भूरे, मटियाले, चिकने

दस्त अल्पमात्रा में रसपुष्प (केलोमल) और मुग्धरस (त्रै पाउडर) के प्रयोग से मिट जाते हैं । शिशु विशूचिका के वमन विरेचन प्रति घण्टा के अन्तराल से मुग्धरस १/६ ग्रेन की मात्रा देने से बन्द हो जाते हैं । युवा पुरुषों की विशूचिका में भी रसपुष्प की २ से ३ ग्रेन की मात्रा अनेक बार देने से लाभ होता है । इसके साथ विस्मिथ और कपूर मिलाकर प्रयोग करना और भी अधिक लाभ कारक है । २० से ३० ग्रेन की बड़ी मात्रा देना विशूचिका रोग में व्यर्थ है । कण्डू क्षत (Quinsy) और रक्त ज्वर (Scarlatina) जिसमें श्वास लेने में कष्ट होना अवश्यम्भावी है उसमें रिंगर का परामर्श है कि मुग्धरस १/३ ग्रेन प्रति घण्टा के अन्तराल से दिया जावे । कष्टप्रद हिका रोग में अल्प मात्रा से रसपुष्प और ब्लु-पिल के प्रयोग से लाभ होता है । यदि रसपुष्प विरेचन के लिये दिया जावे तो अधिक उपयोगी होता है किन्तु अफीमचियों को यह लाभ नहीं करता, इसलिये अफीम के अभ्यास वाले को या अफीम मिश्रित औषधियों के सेवन कराते समय इसका प्रयोग नहीं करना चाहिये क्योंकि यह शरीर में शोषित होकर विष प्रभाव कर सकता है । किसी भी दशा में रसपुष्प का प्रयोग किया जावे तो उसके अन्त में क्षारीय रेचन प्रयोग करना अच्छा है । पारदीय विरेचक औषधियां प्रतिदिन नहीं देना चाहिये । प्रतिदिन के प्रयोग से इनका प्रभाव न्यून हो जाता है और शरीर में संग्रहीत होने का भय रहता है । कभी कभी पेसा करने से भयङ्कर आंत्रिक कष्ट हो जाता है । युवा पुरुष को पानी से पतले दस्तों में या प्रवाहिका की दशा में रसकर्पूर १/१०० ग्रेन की मात्रा में प्रति घण्टा या दो घण्टा के अन्तराल से देना लाभ कारक है ।

आंत्रिक क्षत रोग में सहन करने योग्य मात्रा में रसकपूर का प्रयोग बहुत लाभ करता है। अनेक प्रारम्भिक रोगों में जब जीभ बहुत मैली होती है उस समय अल्प मात्रा में विरेचक रूप से रसपुष्प या मुग्ध रस प्रयोग करने से जिह्वा साफ हो जाती है।

यकृत सम्बन्धी पैत्तिक विकृति में रात्रि में रसपुष्प या ब्लू-पिल देकर प्रातःकाल सनाय के रेचक यौगिक सिडलिटज पाउडर (Seidlitz powder) या यष्ट्यादि चूर्ण (Liquorice powder) *देने से अच्छा लाभ होता है। शरीर के अन्तराल में जब शोथ के रोग होजाते हैं तब पारदीय यौगिकों का प्रयोग करने की बहुत से लेखक राय देते हैं। अमेरिका के चिकित्सक हृदयावरण के शोथ में विशेष कर प्रयोग करते हैं।

जलोदरादि उदर रोगों में दिन में अनेक बार रसपुष्प देने से हृदय सम्बन्धी जलोदर में विशेषतः मूत्रल प्रभाव करता है। यदि रसपुष्प डिजिटेलिस (Digitalis) और स्क्विल (Squill) के साथ मिला कर दिया जावे तो यह प्रभाव अधिक होजाता है। यकृत विकार जन्य जलोदर में अस्थायी लाभ करता है। वृक्कविकारजन्य जलोदर में इसका प्रयोग नहीं करना चाहिये। वृक्क के विकारों में पारद घटित औषधियाँ सावधानी से प्रयोग करना चाहिये, इस बात का उल्लेख ऊपर में किया जा चुका है।

* सनाय ५ तोला, मुलेठी का चूर्ण ५ तोला, सोंफ का चूर्ण २॥ तोला, शुद्ध गंधक २॥ तोला, चीनी १५ तोला मिला कर चूर्ण बना ले।

फिरङ्ग

पारद फिरङ्ग विष के लिये प्रतिविष है। प्राथमिक और माध्यमिक फिरङ्ग के विकारों में इसका प्रभाव शीघ्र देखा जाता है। अन्तिम तृतीयक अवस्था में कसा प्रभाव करता है इस विषय में अनेक मतभेद हैं। फिरंगज लिङ्गवर्णों पर स्थानीय और आभ्यन्तरीय पारदीय औषधों का प्रयोग ब्रणनाश होने तक करते रहना चाहिये। केवल यह ध्यान में रहे कि पारदीय विषलक्षण उत्पन्न न होने पावें। फिरंग रोग में रसपुष्प, मुग्धरस, ब्लुपिल, प्लुम्मर्सपिल (Plummer's pill) आदि औषधियां मसूड़ों के फूलने तक या लालास्राव का कष्ट प्रारम्भ होने पर्यन्त सततः सेवन कराते रहना चाहिये। उक्त लक्षण उत्पन्न होने के आसार नज़र आते ही तत्क्षण कुछ समय के लिये औषधि प्रयोग बन्द कर देना आवश्यक है। इस दशा में मुग्धरस १ रत्ती; रसपुष्प १/३ रत्ती; अहिफेन १/८ रत्ती मिलाकर प्लुम्मर्सपिल दो रत्ती की मात्रा में व्यवहार की जाती है।

आन्तरिक प्रयोग के अतिरिक्त नीचे लिखे प्रयोगों से भी फिरङ्ग के उपद्रव शान्त किये जा सकते हैं। यद्यपि फिरंग की तृतीयावस्था में पारदीय प्रयोग करने का परामर्श चिकित्सक लोग नहीं देते हैं तथापि डाक्टर घोष पोटासियंआयोडाइड के साथ प्रयोग करके अनेक बार उत्तम लाभ का अनुभव कर चुके हैं। डाक्टर केयोज (Keyes) का मत है कि अल्पमात्रा से लगातार २ वर्ष तक पारदीय यौगिक खिलाने से फिरंग रोग का विष शरीर में सदा के लिये नष्ट किया जा सकता है। इस कार्य के लिये अब तक ग्रीन आयोडाइड (Green Iodide)

प्रयोग करने की प्रथा चली आती है। किन्तु इसका प्रभाव एकसा नहीं होता, इसलिये कम पसन्द किया जाता है। मुग्धरस (Grey Powder) पारिवारिक (Congenital) फिरंग के उपद्रवों के लिये उत्तम औषधि है। साधारणतया द्वै मास के शिशु को १/४ रक्ती की मात्रा में तीन दिन लगातार देकर फिर रात्रि में एक मात्रा तब तक बराबर दी जावे जबतक कोई विषलक्षण प्रतीत न हों। पारद फिरंगोत्पादक जीवाणु (Spirochaeta of schondinn) को नाश करता है। मेचनीकाफ (Metchnikoff) ने परीक्षा करके देखा है कि फिरंगविष यदि बन्दर के शरीर में या मनुष्य के शरीर में प्रवेश कराकर घंटे दो घंटे के बाद इंजेक्शन करने के स्थान पर पारद के लेप मसल दिखे जावें तो फिरंग का कोई उपद्रव नहीं पैदा होता। इस कार्य के लिये मेचनीकाफ नीचे लिखा यौगिक व्यवहार करने का परामर्श देते हैं।

हाइड्रार्जिरि अमोनियेट २५ ग्रेन

„ सबक्लो २५ „

„ सालिसिल आर्सेनेटिस २५ „

लेनोलिन आवश्यकतानुसार मिलावे

जिससे मरहम सा बन जावे।

स्त्री प्रसंग करने के ३-४ मिनट के बाद इसको मलना चाहिये। डाक्टर, नर्स और चिकित्सा शास्त्र के विद्यार्थियों को यह प्रयोग तय्यार रखना चाहिये और फिरंग रोगियों के उपचार अन्य क्षत के सन्देह होते ही इसका उपयोग करना आवश्यक है।

शरीर में पारद प्रविष्ट करने की विधियाँ

मुख—के द्वारा ब्लु-पिल, केलोमल (रसपुष्प) ग्रे-पाउडर (मुग्धरस) करोसिव सब्लिमेट (रसकर्पूर) आदि औषधियों को प्रयोग करते हैं। शरीर में इन औषधियों का शोषण श्लेष्म-धरा कला द्वारा होता है। यह कला मुख से लगाकर गुदा पर्यन्त सारे महास्रोत में आवृत्त रहती है।

गुदा—पारद की गुदवर्ति (Mercurial Suppository) फिरङ्ग जन्य गुदा के विकार में गुदा के अन्दर प्रवेश की जाती है।

नस्य—(Inhalation) का प्रयोग कभी कभी फिरङ्गजन्य नासा के विकारों में उपयोगी होता है।

धूम्रीकरण—(Fumigation) उड़नशील रसपुष्प को इस प्रकार से शरीर में प्रवेश करने के लिये व्यवहार करते हैं। पामा आदि चर्म रोगों में गन्धक को भी सारे शरीर में धूम्रद्वारा पहुँचाया जाता है। गन्धक और पारद को शरीर में पहुँचाने के लिये अथवा शरीर के किसी अङ्ग विशेष पर प्रभाव पैदा करने के लिये यह व्यवस्था की जाती है। जब पारद का धूम्र दिया जाता है तब उसके साथ ही जल-वाष्प से भी स्वेद कराया जाता है या जाबारेन्डी (Jaborandi) औषधरूप से पसीना लाने के लिये दी जाती है। पेसा करने से प्रभाव अच्छा होता है। कभी कभी धूम्रीकरण से अत्यन्त दुर्बलता और अवसन्नता प्रतीत होती है, किन्तु चिकित्सकों का अनुभव है कि इस विधि से शरीर में पाचन और रेचन क्रिया की विकृति नहीं होती और रोगी को लाभ हो जाता है। बहुत से रोगी मुख से पारदीय यौगिक व्यवहार करने पर भी अच्छे

नहीं होते। वे धूस्रीकरण और लेपन के पारदीय यौगिक से अच्छे हो जाया करते हैं। धूस्रीकरण सर्वाङ्ग या एकाङ्ग पर प्रभाव पैदा करने के लिये व्यवहार किया जा सकता है।

लेपन (Uction)

शरीर के किसी अङ्ग विशेष पर ब्लु-ग्राइन्टमेन्ट, लिनिमेन्ट या पारद के ओलियेट रगड़ने से पारद रक्त के अन्दर प्रवेश कर जाता है। इस कार्य के लिये जंघा का भीतरी भाग और हाथ की कक्षा (axilla) अधिकतर उपयोगी स्थान है। यह विधि बच्चों की चिकित्सा के लिये विशेष रूप से काम में लाई जाती है। २० से ६० ग्रेन ब्लु-ग्राइन्टमेन्ट प्रति रात्रि में या एक दिन के अन्तराल से व्यवहार किया जा सकता है। जिस स्थान पर यह लेप मला जावे उसे बदलते रहना चाहिये अन्यथा स्थानीय दाहादिक उपद्रव हो जाने की सम्भावना है। जर्मन आइन्टमेन्ट (१ भाग पारद ३ भाग बेसलीन) बी० पी० के यौगिक की अपेक्षा अच्छा है। फिरंग रोग की चिकित्सा में विशेष लाभ नियमित जीवन और उत्तम जलवायु वाले स्वास्थ्य कर स्थान में रहने से शीघ्र होता है। शरीर के प्लोषित या धृष्ट स्थान पर अथवा ब्रण पर पारदीय लेप, घोल और रसपुष्प के उपयोग से पारद शरीर में शोषित होकर प्रभाव करता है। शरीर की भीतरी त्वचा अथवा मांस के माध्यम द्वारा पारद प्रवेश करने की विधि ब्रिटिश सेना और अन्य देशों में बहुतायत से प्रचलित है। इस कार्य के लिये यदि घुलनशील पारदीय क्षारों के यौगिक लिये जायँ तो प्रति दिन इनजेक्शन करना चाहिये और केवल पारद या उनके घुलनशील क्षार लिए जायँ तो साप्ताहिक इनजेक्शन करना

आवश्यक है। आजकल घुलनशील क्षार-यौगिकों में रसकपूर १/३ ग्रेन १७ विन्दु सूत जल में घुलाकर उसमें थोड़ा सा सोडियम क्लोराइड (खाने का नमक) १/८ ग्रेन मिलाकर प्रयोग किया जाता है या बाइनायोडाइड (Biniodide) १/३ ग्रेन की मात्रा में प्रयुक्त हो सकता है। अघुलनशील पारदीय क्षारों में रसपुष्प (Calomel) सब से अधिक शक्तिशाली और निःसन्देह अधिक प्रभाव कारक है। रसपुष्प १ ग्रेन, सन्तप्त जेतून का तैल (Sterilized Olive oil) १७ विन्दु में मिलाकर सप्ताह में एक बार इनजेक्शन करना चाहिये। जेतून के तैल के अभाव में वेसलीन (Vaseline) काम में लाया जा सकता है। इसके प्रयोग से कभी कभी बहुत कष्ट होता है इसलिये नीचे लिखा यौगिक अधिक उपयोगी समझा जाता है। इसे ग्रे आइल (Grey oil) कहते हैं।

हाइड्रार्जिर	१ औंस
एडेप्सलेनी एनहाइड	४ ड्राम
लिक्विड पेराफिन	१० ड्राम
(कर्बोलाइड २%)	

इस यौगिक का सप्ताह में १० विन्दु इनजेक्शन करने का व्यवहार है। अनेक विद्वानों ने इसके प्रयोग करने की सम्मति दी है। सर जे० हचिन्सन (Sir. J. Hutchinson) इसका मांसमाध्यम इनजेक्शन (Intramuscular injection) करने का विरोध करते हैं। उनकी राय है कि यह पारद का अघुलनशील क्षारीय योग है। इसके अघुलनशील पारदीय क्षार का शरीर में शोषण होने में सन्देह है, अतः यह शरीर में संग्रह होकर पारदीय विष का प्रभाव पैदा हो

जाने से रोगी मरते हुए देखे गये हैं। शिरामाध्यम इनजेक्शन (Intravenous injection) कोहनी के नीचे की प्रधान शिरा में लेन (Lane) नामक विद्वान ने सफलता पूर्वक २० विन्दु फीसदी साइनाइड आफ़-मर्करी (Cyanide of mercury) का घोल इनजेक्शन द्वारा प्रवेश किया है।

पारद स्नान (Bath)

हेनरी ली (Henry Lee) का यन्त्र इस प्रकार की चिकित्सा के लिये उपयुक्त है। इस यन्त्र में एक स्पिरिट लैंप लोह जाली से चारों तरफ़ मढ़ा रहता है। जाली के ऊपरिभाग में चीनी की तश्तरी लगी रहती है उसमें एक औंस के करीब जल भर दिया जाता है और लैंप जला दिया जाता है। जब पानी उबलने लगता है तब उसमें २० से ३० ग्रेन के लगभग उड़ाया हुआ रसपुष्प (Calomel) डाल दिया जाता है और इसको रोगी के पलंग या कुरसी के नीचे रख कर उस पर नग्न रोगी रबड़ के क्लोक (Cloak) नामक चोंगे से कण्ठ पर्यन्त इस प्रकार ढक कर बैठा दिया जाता है कि जिससे यह अङ्ग से चिपटे नहीं और समस्त शरीर ढक दे। बीच बीच में क्लोक उठाकर वाष्प को मुख तक आने का आवश्यकतानुसार प्रयत्न भी करते रहते हैं। यह क्रिया १५ मिनट तक की जाती है और चिकित्सक पूर्णरूप से देख रेख करता है अन्यथा रोगी के मूर्च्छित होने का भय रहता है। इस क्रिया के समाप्त होने पर क्लोक सहित रोगी को सावधानी के साथ उठाकर लिटा देते हैं और क्लोक हटाकर शरीर पोंछ कर साफ़ बख़ पहना दिये जाते हैं।

सावधानी

रोगी की पाचन क्रिया शुद्ध न हो तो मुख द्वारा पारदीय यौगिक नहीं सेवन कराने चाहिये । दुर्बल, पांडुरोगी, कंठमालावाला और वृक्क-रोगियों को पारद कम मार्फिक आता है । शरीर के किसी अधिक लम्बे चौड़े भाग पर पारद लगाने से वह शोषण होकर विष प्रभाव कर सकता है, अतः जहाँ तक सम्भव हो थोड़े से स्थान में ही पारदीय लेप लगाने की व्यवस्था करे । योनि और गर्भाशय में पारदीय घन-घोलों (Concentrated solutions) का इनजेक्शन न करे । जब चिरकाल तक पारदीय यौगिक देने की आवश्यकता हो तब रोगी को नीचे लिखे पथ्य रखने के लिये अवश्य सावधान करदे:—

(१) फल, हरे शाक, काफी (Coffee) और मृदुविरेचक (Aperients) आदि का उपयोग अत्यन्त अल्प करे ।

(२) मद्य, आसव, अरिष्ट आदि उत्तेजक द्रव्य जहाँ तक सम्भव हो छोड़ दे ।

(२) तमाखू, सिगरेट, सिगार आदि का पीना एक दम बन्द कर दे ।

(४) प्रायः उष्ण वस्त्र पहने और शीत से बचा रहे । (घोष की मेटेरिया मेडिका और लाडर ब्रन्टन का फार्माकोपिया और थेराप्युटिक्स) ।

(५) पारद का सेवन करने वाला पेठा, ककड़ी, करेला, तरबूज, कुसुम, कर्कोटी का शाक, केला, मकोय का शाक, कुलथी, तिल, अलसी का तेल, उड़द, कबूतर का मांस,

सिरका, दही, भात, बेर, नारियल, आम, राई, खी प्रसंग,
रात का जगना आदि से बचा रहे ।

पाश्चात्य चिकित्सानुसार पारद के कुछ योग

निर्णीति यौगिक (Official Preparations)

(१) इंफ्लास्ट्रं हाईड्रार्जिरी (Emplastrum Hydrargyri)

पारद ३ औंस	mercury 3 ozs.
जैतून का तैल ५६ ग्रेन	Olive Oil 56 grs.
शुद्ध गंधक ८ ग्रेन	Sublimed Sulphur 8 grs.
सीसक प्लास्टर ६ औंस	Lead Plaster 6 ozs.
सब चीज मिलाकर प्लास्टर (पलस्तर) बनाले ।	

(२) इंफ्लास्ट्रं अमोनियेसि कम हाईड्रार्जिरो (Emplastrum Ammoniaci cum Hydrargyro.)

अमोनियेकम् १२ औंस	Ammoniacum 12 ozs.
पारद ३ औंस	Mercury 3 ozs.
जैतून का तैल ५६ ग्रेन	Olive Oil 56 grs.
शुद्ध गंधक ८ ग्रेन	Sublimed Sulphur 8 grs.
सब मिलाकर प्लास्टर (पलस्तर) बनाले ।	

(३) हाइड्रार्जिरं कम क्रीटा (ग्रे-पाउडर) मुग्धरस (Hydrargyrum cum, creta grey powder)

पारद १ भाग	mercury. 1
विशुद्ध चाक मिट्टी २ भाग	Chalk. 2

दोनों मिलाकर घोटे । यह हलका सा भूरेरंग का चूर्ण बन जाता है । मात्रा ३ से ५ ग्रेन । इसमें मर्क्युरिक आक्साइड की

अशुद्धि पाई जाती है। यह रसायन चूर्ण (Alterative) है। इसका उपयोग बच्चों के अतिसार; पीले हरे या मृत्तिका के रंग वाले दुर्गंध युक्त दस्तों में होता है। यह दही के जैसे फटे दस्त, कामला, मन्दाग्नि और कंठशालूक आदि में भी लाभ कारक है। इसकी मात्रा $1/4$ से $1/2$ ग्रेन तक दिन में ३-४ बार दे। यही मात्रा एक वर्ष की आयु के बालक को दी जा सकती है।

(४) लिनियमेंट हाइड्रार्जिरी (Linimentum Hydrargyri.)

पारद का मलहर १ भाग Ointment of mercury 1
अमोनिया का घन विलयन Strong solution of Ammonia
 $1/2$ भाग $\frac{1}{2}$

लिनियमेंट आफ़ कैम्फर $1\frac{1}{2}$ भाग Liniment of Camphor
 $1\frac{1}{2}$;

सब मिलाकर मालिश करने योग्य बना ले।

इसके मर्दन से पुरानी संधि-वृद्धि (Enlargment of joints) में लाभ होता है। यह उत्तेजक और शोषक (Absorbent) है। कपड़े पर लगा कर कत्ता में लगाने से लालास्राव उत्पन्न करता है, प्लास्टर और मलहर की अपेक्षा अधिक ज्वाला-उत्पादक है।

(५) पारद वटी (ब्लूपिल) (Pilula Hydrargyri, Blue pill)

पारद २ औंस Mercury 2 ozs.

गुलकन्द ३ ,, Confection of Roses 3 ozs.

मुलेठी का चूर्ण १ ,, Liquorice Root powder 1 ozs.

मिलाकर ४ से ८ ग्रेन तक की गोली बना ले। यह रसायन और मृदु विरेचक है। पित्ताधिक्य में इसकी पांच ग्रेन की मात्रा

रात्रि में देकर प्रातः काल क्षार धिरेचन देना लाभकारक है। यदि पारद का शीघ्र प्रभाव उत्पन्न करना हो तो ५ ग्रेन, १/२ ग्रेन अफीम के साथ मिलाकर प्रातःकाल दे और ५ से १० ग्रेन, १/२ ग्रेन अफीम के साथ सायंकाल दे। ठीक इसी प्रकार का उपयोग रसशेखर में भी लिखा है।

(६) अंगवेन्ट हाइड्रार्जिरी (Unguentum Hydrargyri)

(ब्लू आइंटमेंट—Blue ointment)

पारद	१ पाउन्ड	Mercury	1 lb.
शूकर वसा	१ „	Lard	1 „
प्रीपैयर्ड स्यूट	१ औंस	Prepared suet	1 ozs.

मिलाकर लेप बना ले। इसका प्रयोग पारद का विशेष प्रभाव उत्पन्न करने के लिये किया जाता है। इसको कक्षा या उरु के अन्तराल में मर्दन करने से शीघ्र लाभ प्रतीत होता है। रोगी को स्वयं नहीं मलना चाहिये, क्योंकि हथेली के द्वारा भी पारद का शरीर में प्रवेश होने से सहसा शरीर में अधिक पारद प्रवेश कर सकता है। इस लिये दूसरा व्यक्ति मर्दन करे और वृद्ध भी अपने हाथों की रक्षा के लिये किसी चर्म के द्वारा मालिश करे। पारिवारिक उपदंश वाले बच्चों की नाभि पर १/२ से १ ड्राम लेप को फलालेन के कपड़े पर लगाकर बांधना अच्छा है। यह चर्म के अथवा जननेन्द्रि के रोगों में भी व्यवहार किया जाता है।

(७) अङ्गवेन्ट हाईड्रार्जिरी कम्पोजिटम् (Unguentum Hydrargyri Compositum)

पारद का मलहर	१० औन्स	Mercury ointment	10 Ozs
पीला मोम	६ „	Yellow bees wax	6 „

जैतून का तैल	६	„	Olive Oil	6	„
कपूर	३	„	Camphor	3	„

सब को उत्तमतया मिलाकर मलहर (मल्हम) बनाले ।

यह शोथ के शमन होने पर भी जहाँ स्थानीय कठोरता रह जाती है उसको दूर करने के लिये मर्दनार्थ काम में लाया जाता है । इसको लगाने के बाद खूब कसकर दबाव देने योग्य बन्धन बाँधना चाहिये । गण्डमाला, गलगण्ड आदि में भी इसके लगाने से लाभ होता है ।

अनिर्णीत यौगिक (Non official Preparations)

(१) लेनोलीम हाइड्रार्जिरी (Lanolinum Hydrargyri)

पारद	१००	Mercury	100
लेनोलीन	२००	Lanoline	200
पारदीय मलहर	५	Mercurial ointment	5
मटनस्यूट	५०	Mutton Suet	50

सब मिलाकर मलहर बनाले । फिरङ्ग के रोगों में शरीर पर मलने से अत्यन्त शीघ्र अन्दर प्रवेश करता है ।

(२) ओलियं सिनेरियं (ग्रे ब्राइल Oleum Cinereum.)

पारद	३९	Mercury	31
पारदीय मलहर	२	Mercurial ointment	2
वेसलीन	५६	Vaseline	59

इसे मिलाकर चर्म के द्वारा फिरङ्ग में इनजेक्शन करते हैं । यह प्रयोग सावधानी से बर्तना चाहिये, इसके प्रयोग में खतरा है ।

(३) मर्क्युरी प्लास्टर मुल (Mercury Plaster Mull)

इसमें पारद १ ग्रेन प्रति घन इञ्च पर रहता है। शेष प्लास्टर के समान समझे।

(४) सपोजिटोरिया हाइड्रार्जिरी (Suppositoria Hydrargyri)

प्रति सपोजिटोरी में ५ ग्रेन पारद का मरहम रहता है। यह पाचन क्रिया के ऊपर किसी प्रकार का प्रभाव किये बिना ही सारे शरीर पर असर करती है। इसको गुदवर्ति के समान ही प्रयोग करना उचित है।

(५) हिर्गोल (Hyrgol, Hydrargyrum Collaidale)

यह जल में विलयनशील है और इसमें २० फीसदी के लगभग पारद रहता है। इसका १० फीसदी का लेप लाभकारक है।

(६) मर्कुरियल (Mercuriol)

यह पारद, प्ल्युमिनियं और मेगनेसियं का मिश्रण है, और चूर्ण के रूप में बनता है। इसमें ४० फीसदी पारद रहता है। यह उष्णता तथा आर्द्रता पर उड़नशील है। फिरंग रोगों में चर्म पर यह लगाया जाता है।

(७) मर्क्युरोल (Mercuriol)

यह पारद और न्यूक्लियन (Nuclein) का यौगिक है इन्जेक्शन के लिए व्यवहार किया जाता है। पूयमेह (Gonorrhoea) में लाभ करता है।

(८) अंगुवेन्ट हाइड्रार्जिरी मीटियस (Unguentum mitius Hydrargyri mitius)

पारद का लेप १ Ung. Hydrargy 1

शुकरवसा २ Lard 2

मिलाकर मरहम का प्रयोग करे। यह पराश्रयी जीवाणु नाशन के लिए उत्तम है।

उपरोक्त प्रयोगों के अतिरिक्त नीचे लिखे पारद के प्रसिद्ध प्रयोग हैं और उनके निर्णीत और अनिर्णीत शतशः प्रयोग हैं। पाठक यदि इस विषय का विशेष ज्ञान प्राप्त करना चाहें तो घोष की मेटेरिया मेडिका तथा टी लाडर ब्रन्टन का फार्मकोलोजी थेराप्युटिक्स और मेटेरिया मेडिका नामक बृहद् ग्रन्थ देखें।

(१) हाईड्रार्जिरी आयो डाइडम रुब्रम (Hydrargyri Iodidum Rubrum)

(मर्क्युरिक आयोडाइड—Mercuric Iodide)

इसे आयोडाइड आफ़ मर्करी भी कहते हैं। यह रवेदार हिंगुल का सा लाल चूर्ण मर्क्युरिक क्लोराइड और पोटैसियं आयोडाइड के रासायनिक संयोग से बनता है। यह जल में विलयनशील नहीं है पर ईथर और पोटैसियं आयोडाइड के विलयन में शीघ्र घुल जाता है।

प्रभाव—संक्रमनिवारक, बद्बू दूर करने वाला, छाला उठाने वाला, ज्वालोत्पादक, रसायन, अधिक मात्रा में ज्वालाकारक विष है।

मात्रा—१/३२ व १/१६ ग्रेन गोली के रूप में। गोली मिल्क शुगर और ग्लुकोज़ के संयोग से बनाई जाती है। अथवा पोटैसियं आयोडाइड के मिश्रण में दिया जाता है।

(२) हाईड्रार्जिरी ओलीएटम् (Hydrargyri Oleatum)

(मर्क्युरिक ओलिएट—Mercuric Oleate)

यह हलका सा भूरे वर्ण का चूर्ण मर्क्युरिक क्लोराइड और सोडियम ओलियेट के रासायनिक संयोग से तय्यार किया जाता है। इसका प्रभाव लिनिमेन्ट या मरहम जैसा होता है किन्तु यह शरीर में अधिक शीघ्रता से प्रवेश करता है।

(३) हाईड्रार्जिरी ओक्साइड फ्लेवम् (Hydrargyri oxidum Flavum)

(येलो मर्क्युरिक ओक्साइड (yellow mercuric oxide HgO .) यह रवा रहित चूर्ण मर्क्युरिक क्लोराइड और सोडियम हाइड्रोक्साइड के रासायनिक योग से प्राप्त किया जाता है। यह जल में विलयनशील नहीं है। खाने की दवा में इसका प्रयोग नहीं किया जाता। यह अञ्जन के लिए मरहम के रूप में प्रयोग किया जाता है। इसका एकही प्रसिद्ध प्रयोग है “अंगवेन्ट हाइड्रार्जिरी ओक्साइडीफ्लेवी” (Unguentum Hydrargyri oxidi flavi.) यह पराश्रयी जीवाणु नाशक और रसायन है। जब आखों के पलक में कंड़ आदि होती है तब उसके दूर करने के लिए इसका प्रयोग किया जाता है

(४) हाइड्रार्जिरी ओक्साइडम् रुब्रम् Hydrargyri oxidum Rubrum)

(रेड मर्क्युरिक ओक्साइड Red Mercuric oxide HgO .)

नारङ्गी का सा लाल चूर्ण मर्क्युरिक नाइट्रेट की एसिड वाष्प उड़ने तक तपाने से प्राप्त होता है। यह जल में विलयनशील नहीं है। इसका प्रयोग खाने की दवाओं में नहीं किया

जाता। यह भी पूर्ववत् लेप ही के प्रयोगों में व्यवहार होता है।

(k) हाइड्रार्जिरी परक्लोराइडम् (Hydrargyri Perchloridum)
(मर्क्युरिक क्लोराइड Mercuric Chloride. $HgCl_2$)

नव्य रसकपूर

इसे परक्लोराइड आफ़ मर्करी और करोसिव सब्लिमेट भी कहते हैं। यह लवण मर्क्युरिक सफेद (कज्जली) सोडियम क्लोराइड (खाने का नमक) अल्पकृष्ण मेंगनीज का आक्साइड, त्रयस्कांति का भस्म, मिलाकर उड़के प्राप्त करते हैं।

स्वभाव—यह गुरु, वर्णरहित, श्वेत, सुई के से रवे वाला होता है। यह १ भाग ६ भाग शीतल जल, १ भाग २ भाग खोलता जल, १ भाग ३ भाग मद्यसार (६० फी सदी), १ भाग ४ भाग ईथर, १ भाग २ भाग शीतल ग्लिसरिन में विलयन शील है। इसमें उड़नशीलता रहित स्थिर क्षार की अशुद्धि रहती है।

यह क्षार और क्षारीय कार्बोनेट, पोटैशियम आयोडाइड, चूने का पानी, टार्टर इमेटिक, सिल्वर नाइट्रेट, अल्युमन, लेड एसेटेट, साबुन, किसी वनस्पति के काथ के साथ मिलाने से तलकट के रूप में बैठ जाता है। रसकपूर स्रुतजल से भी विघटित (Decompose) हो जाता है और केलोमल (रसपुष्प) के रूप में तलकट में बैठ जाता है। यदि पेन्ट्रिक (Arganic) पदार्थ जल में मौजूद हो तो यह क्रिया और भी तीव्रता से होती है, इसलिये रसकपूर का विलयन बनाने के लिये साधारण कृषजल उत्तम द्रव नहीं है। यदि अन्य जल न मिल

सके तो साधारण अम्ल (सिरका या इमली का सत Tartaric acid) मिलाने से यह दोष दूर हो सकता है।

प्रभाव—संक्रम निवारक, पचन निवारक, पराश्रयी कृमिनाशक, रसायन, फिरङ्ग नाशक और अत्यन्त उग्र ज्वालाकारक विष है।

मात्रा—१/३२ से १/१६ ग्रेन बिलियन के रूप में नमक के बिलियन के साथ द्रव बनाकर इनजेक्शन किया जा सकता है।

(६) हाई डार्जिरी सक्लोराइडम् (Hydrargyri Subchloridum.)

(मर्क्यूरस क्लोराइड—Mercurous chloride. $Hg_2. cl_2$.)

हाईड्रार्जिरी क्लोराइड; सब क्लोराइड आफ़ मर्करी और केलोमल भी इसी को कहते हैं।

यह क्षार साधारण लवण और पारद गंधक का बोगिक मर्क्युरस सल्फेट (गंध मूर्च्छित पारद) को मिलाकर उड़ाके प्राप्त करते हैं।

स्वभाव—स्वाद रहित, गुरु श्वेतवर्ण का रवे रहित चूर्ण होता है। यह जल, मद्यसार (६० फी सदी) और ईथर में विलयनशील नहीं हैं। ताप पर उडनशील है। जल में विलयनशील मर्क्युरिक क्लोराइड (रस कर्पूर) और अन्य क्लोराइड की अशुद्धि इसमें पाई जाती है।

शुद्धता का परीक्षण (Test)—सन्देहवाले रस पुष्प को लेकर एक साफ़ चाकू के फल पर एक बिन्दु जल के साथ रखे। एक मिनट के बाद चाकू के फल को धो डाले। यदि उस पर कृष्ण वर्ण का दाग न हो तो समझो की शुद्ध

है। यदि मेगनेटिक ओक्साइड का काला दाग नजर आवे तो उसमें रसकर्पूर का मिश्रण समझे।

प्रभाव—रसायन, विरेचन, मूत्रल, मात्रा १/२ से ५ ग्रेन तक। एक वर्ष के शिशु के लिये एक ग्रेन की मात्रा का प्रयोग करे।

(७) हाईड्रार्जिरम् अमोनियेटम् (Hydrargyrum Ammoniatum)
(अमोनियेटेड मर्करी—Ammoniated mercury. $NH_2 Hgcl.$)

इसे अमोनियो क्लोराइड आफ मर्करी, मर्क्युरिक अमोनियं क्लोराइड, हाइट प्रेसिपिटेड भी कहते हैं। यह श्वेत रंग का चूर्ण होता है। इसका खाने की औषध में व्यवहार नहीं करते। इसका एक मरहम आता है जिसे अङ्गवेन्ट हाईडार्जिरी अमोनियेटि (Unguentum Hydrargyri Ammoniate) कहते हैं। यह उत्तेजक, रसायन के तरीके में खुजली आदि पुराने चर्म रोगों में व्यवहार किया जाता है। पामा, विचर्चिका, दद्रु आदि में लाभ करता है और इस से सर के जुँप मर जाते हैं।

(८) लाइकर हाईडार्जिरी नाइट्रेटिस एसिडस (Liquor Hydrargyri Nitratis Acidus.)

(एसिड सोल्यूशन आफ मर्क्युरिक नाइट्रेट—Acid
Solution of mercuric Nitrate)

यह रंग रहित पारद, नाइट्रिक एसिड और जल का विलयन (सोल्यूशन) है। इसमें मर्क्युरिक नाइट्रेट की अशुद्धि पाई जाती है।

प्रभाव—पचन निवारक, दाहक, उपदंशजन्य ब्रण, मांसार्वद आदि के विकारों को जलाने के लिए प्रयोग करते हैं। यह

सावधानी रखे कि स्वस्थ चमड़े से न छूने पावे। गंडूष (Gargle) के लिए १ से २ विन्दु एक औंस जल में मिलाकर कुरले कराये जाते हैं। गनोरिया (पुष्पमेह-मुज्राक) के दोष दूर करने के लिए जननेन्द्रिय में एक विन्दु दो औंस जल में मिलाकर पिचकारी करते हैं। (घोस की मेटेरिया मेडिका पृष्ठ ६८० से ६८६ तक के आधार पर)

आयुर्वेदिक रस-शास्त्र के अनुसार पारद के कुछ चुने हुये प्रयोग।

रस शास्त्रियों का मत है कि पारद अनेक प्रकार से रोगों का नाश करता है। इस लिये इसका नाम ही पारद “रोग पङ्काब्धि मग्नानां पारदानाञ्च पारदः” रख दिया गया है। पारद के नीचे लिखे गुण विशेषतः लिखे पाये जाते हैं।

“मूर्च्छार्तिं गदहृत्तथैव खगतिं दत्ते निवद्धोऽर्थद
स्तद्भस्मामयवार्धकादि हरणं दृक्पुष्टिं कान्तिप्रदम् ।
वृष्यं, मृत्युविनाशनं, बलकरं, कान्ताजनानंददम् ।
शार्दूलातुलसत्वकृत्कमभुजां योगानुसारिस्फुटम् ॥”
मूर्च्छित्वा हरति रुजं बन्धनमनुभूय मुक्तिदो भवति ।
अमरी करोति हि मृतः कोऽन्यः करुणाकरः सूतात् ॥

आज भी इसके भस्मादिक प्रयोग से प्रत्येक रोग में लाभ पहुँचाया जाता है। अन्य विकृति सापद्धति वालों के लिये यह आश्चर्य की बात है कि वेद्य लोग प्रायः सब रसों में पारद मिलाते हैं और उनका सब रोगों में प्रयोग करते हैं। कुछ विपत्ती इस प्रकार के व्यवहार की तीव्र आलोचना भी करते हैं। किन्तु निष्पक्ष भाव से विचारने पर यह सहज में ही

समझ में आ सकता है कि पारद में अद्भुत गुण हैं और इसके आविष्कार से केवल चिकित्सा पद्धति में ही नहीं संसार के अनेक उपयोगी व्यापारिक कार्यों में भी बड़ी उन्नति हुई है। पारद का उपयोग प्रायः सब व्यवसायों में किया जा रहा है। आज कल उन्नतदेशों के चिकित्सा व्यवसायियों में इस बात का उद्योग हो रहा है कि ऐसी औषधि मनुष्य को सेवन कराते रहना चाहिये जिससे उसके अन्दर रोगों का आक्रमण सहसा न होने पावे। इस प्रकार की पद्धति को वे प्रोफिलैक्टिक्स (Prophylactics—प्रतिषेधक) चिकित्सा कहते हैं और इस कार्य के लिये अनेक प्रकार के 'सिरम' और 'इंजेक्शन' व्यवहार में लाये जा रहे हैं। किन्तु उनका अभी तक स्थायी और निश्चित फलप्रद व्यापक गुण स्थिर नहीं हुआ है। अमेरिका और जर्मनी में इस प्रकार के अनेक परीक्षण हो रहे हैं और वहाँ पर पारद के यौगिकों पर विशेष मत मिल रहे हैं कि यह संक्रमण निवारक है और थोड़ी सी मात्रा में भी अच्छा लाभ करता है। इसके निरंतर सेवन से शरीर में मल सञ्चय नहीं होने पाता और शरीर की जो स्वाभाविक क्रिया है वह अविरत हो सकती है। रक्त-कण इसके सेवन से बढ़ते हैं जिससे शरीर में बल रह सकता और मनुष्य आजीवन व्यवहारिक कार्य भली प्रकार कर सकता है। किन्तु उनके जितने यौगिक अब तक ज्ञात हुए हैं वे सभी विषात्मक हैं, और अधिक समय तक सेवन कराने से शरीर में संग्रहीत होकर सहसा पारदीय विष उत्पन्न कर मारक हो सकते हैं। इस भय से अभी तक इसका प्रचार रुक रहा है। पर जर्मनों ने पारद विषयक हमारे "जरारुग्मृत्यु-

नाशनः” वाक्य की परीक्षा प्रारम्भ करदी है और वे चन्द्रोदय का उपयोग करने लग गये हैं और वह वहाँ से बनकर भारतवर्ष के बाज़ारों में भी आने लग गया है। विश्वास है कि थोड़े समय में चन्द्रोदय का उपयोग संसार व्यापी होजायगा। पारद का सुवर्ण और गन्धक के योग से ४ दिनकी निरंतर आँच पर बना यह रक्तवर्ण का यौगिक अल्प मात्रा में निरंतर पथ्य पूर्वक सेवन किया जाय तो बिना किसी प्रकार के विष प्रभाव के मनुष्य सबल रह कर अपना नित्य नैमित्तिक कार्य भली प्रकार कर सकता है। इसके प्रचार की बड़ी आवश्यकता है। अन्यथा संसार के उन्नत लोग इसे अपनाकर नवीन आविष्कार के रूप में संसार के सामने रख देंगे और ऋषि सन्तान होने का अभिमान करने वाली आर्यजाति अपने पूर्वजों के घोर तपस्या के फल को खोकर पश्चात्ताप ही करती रह जायगी। लिखने का तात्पर्य यह है कि पारद के जितने गुण लिखे हैं वे प्रायः सब ठीक हैं और उसका ज्ञान पूर्वक उचित प्रयोग करने से असम्भव प्रतीत होने वाले गुण भी सिद्ध किये जा सकते हैं। इसके लिये निरंतर परीक्षण की आवश्यकता है।

वाह्य शरीर पर पारद के प्रयोग ।

पचन निवारक व फिरंग व्रणनाशक प्रयोग ।

भूतघ्न चक्रिका

रसं कर्पूरनामानं गुणपर्वतभागिकम् ।
 निम्बूकाम्लञ्च विशदं वसुपात्रकसंमितम् ॥
 समादाय विधानज्ञो मेलयेदतियत्नतः ।
 चक्रिकाः कारयेद्वैद्यो गुञ्जषट्कमिताः पृथक् ॥

रसजैस्तु समाख्याता नाम्ना भूतघ्नचक्रिका ।
न जातु विकृतिं याति भूतसङ्ग विषापहा ॥

रसकर्पूरद्रव की निर्माण विधि

भूतघ्न चक्रिकामेकां षष्टितोलक संमिते ।
जले क्षिपेत् विद्रुतायां द्रवं तु विनियोजयेत् ॥
रसकर्पूरमानात्तु द्विसहस्रगुणाम्भसा ।
द्रवोऽयमेवं निर्दिष्टो यथायागं प्रयोजयेत् ॥

रसकर्पूरद्रव के गुण

फिरङ्गस्फोटविषहृत् सपूयव्रणशोधनः ।
हस्तपादस्मरागारगेहादिगतभूतनुत् ॥
संक्रामकगदोत्थानभूतघ्नस्तु विशेषतः ।
रसजैस्तु समाख्यातो रसकर्पूरजो द्रवः ॥

रसकर्पूरद्रव का प्रयोग

फिरङ्गजानां स्फोटानां व्रणानां विविधात्मनाम् ।
क्षालनार्थं विशेषेण सहस्रगुणिताम्भसा ॥
व्रणेषु तु चिरोत्थेषु दिक्सहस्रगुणाम्भसा ।
कृतं द्रवं प्रयुञ्जीत शल्यतन्त्ररहस्यवित् ॥
हस्तपादादिकाङ्गानां गेहादीनाञ्च धावने ।
कृतं द्रवं प्रयुञ्जीत सहस्रगुणिताम्भसा ॥
योन्यादिकोमलाङ्गानां क्षालनार्थं प्रयोजयेत् ।
सहस्रपञ्चकगुणनीरनिष्पादितं द्रवम् ॥

(रसतरंगिणी पृष्ठ ४६ से ४८ तक)

ऊपर के श्लोकों और प्रयोगों का अर्थ स्पष्ट है । रसकर्पूर

अर्थात् 'परक्लोराइड आफ्-मर्करी' और निम्बूकाम्ल अर्थात् साइटिक एसिड लेना चाहिये ।

धूप प्रयोग

पारदः कर्षमात्रः स्यात्तावानेव हि गन्धकः ।

ताण्डुलश्चाक्षमात्राःस्युरेषां कुर्वीत कज्जलीम् ॥

तस्याः सप्तवटीःकुर्यात्ताभिर्धूमं प्रयोजयेत् ।

दिनानि सप्त तेन स्यात् फिरङ्गान्तो न संशयः ॥

जैसा सात दिन का प्रयोग मेटेरिया मेडिका में पारद स्नान का प्रकार लिखा है उसी सावधानी से करना चाहिये ।

केवल पारद प्रयोग

पीतपुष्पबलापत्ररसैश्छुमितं रसम् ।

हस्ताभ्यां मर्दयेत्तावद्यावत्सूतो न दृश्यते ॥

ततः संस्वेदयेद्धस्तावेवं वासरसप्तकम् ।

त्यजेत्पुष्पमम्लं च फिरंगस्तस्य नश्यति ॥

(भावप्रकाश भाषा टीका पृष्ठ १००२)

यह प्रयोग बहुत लाभ करता है पर रोगी को पथ्य पर विशेष ध्यान देना चाहिये ।

रसपुष्प मलहर

रसपुष्पं चतुर्गुणं मेलयेत्तोलकोन्मिते ।

क्षालिते नवनीतेतु शतधा विमलाभसा ॥

मतो मूलहरोऽयन्तु रसपुष्पसमाह्वयः ।

लितोऽयं नाशयत्याशु फिरङ्गं व्रणजंरुजम् ॥

रस पुष्पाद्यमलहर

रसपुष्पं चतुर्गुञ्जं सिक्थतैलञ्च तोलकम् ।
 खल्वेऽतिमसृणे क्षुद्रे दत्त्वा यत्नेन मर्दयेत् ॥
 ततो विशालवक्त्रायां काचकुप्यां तु विन्यसेत् ।
 गदितोऽयं मलहरो रसपुष्पाद्यसंज्ञकः ॥
 प्रलिप्तोऽयं मलहरः प्रत्यहं स्वल्पमात्रया ।
 नाशयत्यचिरादेव फिरङ्गव्रणमुल्वणम् ॥
 तथा पायुप्रदेशोत्थां त्वथवोपस्थदेशजाम् ।
 विचर्चिकां चिरोद्भूतां नाशयत्येष निश्चितम् ॥
 सिंहादिकानां हन्त्याशु तथा तत्कालं संभवम् ।
 षण्मासिकं चार्षिकं वा नखदन्तोद्भवं क्षतम् ॥

ऊपर के दोनों मलहर (मरहम) फिरंग के ब्रणों पर लेप किये जाते हैं ।

प्रसङ्गात्सिक्थतैल की पहली निर्माण विधि

भागैकं विमलं सिक्थं तैलन्तु रसभागिकम् ॥
 आदाय वङ्गलिप्तायां स्थापिकायां निधाययेत् ।
 पचेत्तावन्मन्दवह्नौ यावत्सिक्थं द्रवीभवेत् ॥
 स्थालिकामथ यत्नेन धारयामवतारयेत् ।
 तावत्प्रचालयेद्द्वयां यावदेति प्रगाढताम् ॥
 सिक्थतैलं समायोगात् सिक्थतैलमिदं स्मृतम् ।

सिक्थ तैल की द्वितीय निर्माण विधि

भागैकं विमलं सिक्थं तैलन्तु शरभागिकम् ।
 पूर्वोद्दिष्टविधानेन पचेद्रसविशारदः ॥

जायते नवनीताभं यामं दर्व्या प्रचालितम् ।
 रसज्ञैः कीर्तितमिदं सिक्तयतैलं द्वितीयकम् ॥
 आद्यंतु शीतसमये ग्रीष्मर्तौतु द्वितीयकम् ।
 सिक्तयतैलं मलहरप्रयोगेषु नियोजयेत् ॥

(रसतरङ्गिणी पृ० ४२ से ४४)

कज्जलिकोदय मलहर

वस्वब्धितोलकमिदं सिक्तयतैलं तु निर्मलम् ।
 श्लक्ष्णपिष्टा कज्जलिका तोलकद्वयसंमिता ॥
 शुद्धं मृदारशृङ्गंतु युगतोलकनमितम् ।
 कम्पिल्लकञ्च विमलं वसुतोलकसंमितम् ॥
 माषत्रयोन्मितं चैव तुल्यं निर्मलीकृतम् ।
 आदाय खल्वे विन्यस्य पेपयेदतियत्नतः ॥
 ततो विशालवक्त्रायां काचकुप्यां तु विन्यसेत् ।
 मतो मलहरोऽयंतु नाम्ना कज्जलिकोदयः ॥
 शोधनो रोपणश्चायं व्रणानां तु विशिषतः ।
 नाडीव्रणहरश्चापि विविधव्रणनाशनः ॥
 व्रणाः ये न प्रशाम्यन्ति भेषजानां शतैरपि ।
 अचिरादेव शाम्यन्ति मृशमस्य प्रयोगतः ॥

(रसतरंगिणी पृष्ठ १०)

प्रथमो लेपः

विषतिन्दु लौहपात्रे मलाक्ते निम्बुक द्रवः ।
 घर्षेत् कृष्णसुधामूलं प्रत्येकं माक्षिकं दृढम् ॥
 तुल्यं तदनु सूतञ्च लौहदण्डेन तदयुतम् ।
 सर्वं तदेकतांयातं तेन लिङ्गं प्रलेपयेत् ॥

लेपे शुष्के पुनर्लेपं दद्यात् शुष्के पुनस्तथा ।
शुष्कं न संस्येच्छेपं शुष्कस्थोपरि दापयेत् ॥
(संग्रहे)

द्वितीयो लेपः

रसेन्द्रेण समायुक्तो रसो धत्तरपत्रजः ।
ताम्बूलपत्रजोवापि लेपो यूकविनाशनः ॥
(चक्रदतः)

धूप वटी

रसं वङ्गञ्च खदिरं हरीतक्याश्च भस्मकम् ।
कोमलं कदलीभस्म गुवाकफलभस्म च ॥
एतत्तोलकमानं स्याद्विगुलं हरितालकम् ।
गन्धकं तुत्यकञ्चापि पद्मकं सरलं तथा ॥
द्वे चन्दने देवदारु वक्रमंकाष्टमेव च ।
तथा केशरकाष्ठञ्च माषमानं प्रकल्पयेत् ॥
एकीकृत्य चूर्णयित्वा सर्वञ्चाङ्गेरिकाद्रवैः ।
तुलसीपत्रजरसेः पुरातनगुडेन च ॥
घृतेन सह षट्कार्ण्या वटिका मन्त्ररक्षिताः ।
वेदनायामुक्तयायाञ्चतलः शुक्लवाससा ॥
वेष्टयित्वा च निर्धूमाङ्गारोपरि च दापयेत् ।
तन्धूपं परिगृह्णीयान्नरो वस्त्रादि वेष्टितः ॥
मुखनासाकर्णं बहिर्निश्वासस्य निरोधतः ।
स्वेदे जातेऽस्य नैरुज्यं सायं प्रातर्दिनत्रयम् ॥
मासमात्रन्तु पथ्याशी शाकाम्लदधिवर्जनम् ।
गुर्वन्नपायसादीनि चापथ्यानि विवर्जयेत् ॥

दिनत्रये व्यतीते तु स्नानमुष्णाम्बुना चरेत् ।
 एवंधूमे कृते शान्तिं व्रणाश्च पिड्का अपि ॥
 तथा शोथश्चामवातः खञ्जता पङ्कतापि च ।
 कुष्ठोपदंशशान्त्यर्थं भैरवेण प्रकीर्तितः ॥

(भैषज्यरत्नावली उपदंशधिकारः)

हेमक्षीरी प्रलेप

हेमक्षीरी विडङ्गानि दरदंगंधकं तथा ।
 दद्रुघ्नः कुष्ठसिन्दूरं सर्वाण्येकत्रमद्वयेत् ॥
 धत्तूर निम्ब ताम्बूली पत्राणां स्वरसैः पृथक् ।
 यस्य प्रलेप मात्रेण पामादद्रु विचर्चिकाः ।
 कण्डूश्चरकसश्चैव प्रशमयान्तिवेगतः ॥

(शाङ्गधर सं० ३, अ० ११)

लिङ्गवर्तिहरलेपः

स्वर्जिकातुल्यशैलेयमञ्जनं च रसाञ्जनम्* ।
 मनःशिलाले च समे चूर्णं मांसांकुरापहम् ।
 उपदंशार्शसां तुल्या क्रिया लिंगार्शसां स्मृता ॥

(रस कामधेनु भाग २ पृष्ठ ३४३)

सिन्दूरादि तैलम्

सिन्दूर† गुग्गुलुरसाञ्जन सिन्दु तुल्यैः ।
 कल्कीकृतैश्च कटुकतैलयुतैर्विपक्वम् ॥

*रसाञ्जन—येलोआक्साइड आफ़ मर्करी

† गिरिसिन्दूर—रेडआक्साइड आफ़ मर्करी ।

कण्डूसवान् प्रपिडिकामथवाऽपि शुष्का

मभ्यञ्जनेन सकृदुद्धरति प्रसह्य ॥

(रस कामधेनु भाग २ पृष्ठ ३१८)

इच्छाभेदी रसः

शुंठीमरिचसंयुक्तं रसगन्धकं टंकणम् ।

जैपालास्त्रिगुणाः प्रोक्ता सर्वमेकत्र चूर्णयेत् ॥

इच्छाभेदी द्विगुञ्जः स्यात् सितयासहदापयेत् ।

यावन्तश्चुल्लुकापीतास्तावद्द्वारान् विरेचयेत् ॥

तत्कौदनं खादितव्यमिच्छाभेदीयथेच्छया ॥

(रसेन्द्रसार संग्रह पृष्ठ ७०)

फिरङ्गहरयोगः

(रसकर्पूर खाने की विधि)

फिरङ्ग संज्ञकं रोगं रसः कर्पूर संज्ञकः ॥

अवश्यं नाशयेदेतदूचुः पूर्वचिकित्स्काः ।

लिख्यते रसकर्पूरप्राशने विधिरुत्तमः ॥

अनेन विधिना खादेन्मुखे शोथं न विन्दति ।

गोधूमचूर्णं सन्नीय विदध्यात् सूक्ष्म कूपिकाम् ॥

तन्मध्ये निक्षिपेत्क्षतं चतुर्गुञ्जमितं भिषक् ।

ततस्तु गुटिकां कुर्याद्यथा न दृश्यते बहिः ॥

सूक्ष्मचूर्णैर्लवङ्गस्य तां वटीमवधूलयेत् ।

दन्तस्पर्शो यथा न स्यात्तथा तामग्भसा गिलेत् ॥

ताम्बूलं भक्षयेत्पश्चाच्छाकाम्लं लवणांस्त्यजेत् ।

श्रममातपमध्वान् विशेषात्स्त्री निषेवणम् ॥

सप्तशालिवटी

पारदष्टङ्कमानः स्यात् खदिरष्टङ्क संमितः ।
 आकारकरभश्चापि ग्राह्यष्टङ्कद्वयोन्मितः ॥
 टङ्कल्लयोन्मितं क्षौद्रं खल्वे सर्वश्च निक्षिपेत् ।
 संमर्द्य तस्य सर्वस्य कुर्यात्सप्तवटीर्भिषक् ।
 स रोगी भक्षयेत्प्रातरेकैकामम्बुना वटीम् ॥
 वर्जयेदम्बुजलवर्णं किरङ्कस्तस्य नश्यति ।
 (भावप्रकाश पृष्ठ १००० और १००१)

रसपुष्प की निर्माणविधि

विशुद्धं रसराजन्तु पञ्चतोलकसंमितम् ।
 तत्समं लवणञ्चैव काशीसं विमलं तथा ॥
 खल्वे सम्पेष्य यत्नेन शृङ्गाचूर्णञ्च कारयेत् ।
 अथ चूर्णं समादाय हण्डिकायां विनिक्षिपेत् ॥
 मध्ये सच्छिद्रया काचलिप्तयाऽयतवक्त्रया ।
 आच्छादयेद्धण्डिकया रसकर्मविशारदः ॥
 सन्धिन्तु वाससाच्छाद्य लेपयेत्स्वल्पया मृदा ।
 न लेपयेदूर्ध्वपात्रं भानुतापेऽयं शोषयेत् ॥
 चुल्ल्यां निधाय विपचेदत्यल्पानलयोगतः ।
 ऊर्ध्वपात्रस्थं क्षिद्रेण वाष्पमुदयाति वेगतः ॥
 निर्याति जलवाष्पे तु विधिना परिपाकतः ।
 खटीपिधानपिहितं क्षिद्रं खट्वा प्रलेपयेत् ॥
 अतिमन्दानलेनैव यामद्वितयमादितः ।
 विपाचयेत्प्रयत्नेन स्वाङ्गशीतमथोद्धरेत् ॥
 न्युञ्जं कृत्वा समुत्तार्य सन्धिदेशं विलिख्य च ।
 शशिप्रभं लभ्यमानं रसपुष्पं समाहरेत् ॥

रसपुष्प का परीक्षणम्

महोज्ज्वले लोहपत्रे जलबिन्दुं तु विन्यसेत् ।
रसपुष्पं समादाय जलबिन्दौ विनिक्षिपेत् ॥
क्षणादूर्ध्वं जलं क्षिप्त्वा यदि काष्ण्यं न लभ्यते ।
रसपुष्पं तदा शुद्धं जानीयाद्भिषजां वरः ॥

रसपुष्प के गुण

रसपुष्पं पित्तहरं मूत्रलं व्रणदोषहृत् ।
परं विरेचनकरं तथा भूतविषापहम् ॥
स्वस्थीकरणमत्यन्तं जलीयांशविशोषणम् ।
पित्ताशयं तु वित्तोभ्य मलपित्तापसारकम् ॥
कृमीन् विषूचिक्रोद्धूतान् हिक्काश्चैव फिरङ्गकम् ।
जलोदरादिकान् रोगान् नाशयत्यविलम्बितम् ॥

रसपुष्प का मात्रा निरूपण ।

गुञ्जाद्धतः समारभ्य सार्द्धगुञ्जद्वयोन्मिता ।
रसपुष्पस्य मात्रा स्यान्मात्राविन्मतसम्मता ॥
गुञ्जाष्टमांश प्रमिता मात्रा हिक्कामये हिता ।
रेचनाय मता मात्रा सार्द्धगुञ्जद्वयोन्मिता ॥
फिरङ्गरोगाय मता गुञ्जापादांशसंमिता ।
इयमेव मता मात्रा शिशूनां तु विरेचने ॥

रसपुष्प का ग्रामयिक प्रयोग ।

रसपुष्पं सार्द्धगुञ्जद्वितयं स्वर्जिकान्वितम् ।
शीलितं रेचयत्येव कामं यामद्वयोत्तरम् ॥
शीलितं रसपुष्पंतु वारिणा गुञ्जपादिकम् ।
विसृज्यास्तु समारम्भे विसृची कृमिसङ्घनुत् ॥

रसागमपरिज्ञानविहीनो भिषगल्पधीः ।

निरन्तरं विशेषेण रसपुष्पं न योजयेत् ॥

चन्दनादि वटिका ।

रक्तचन्दनमथोषणं सिता कुंकुमं रससुमं लवङ्गकम् ।

तोलकैककमितमेव वै पृथक् त्वाददीत रसतन्त्रकोविदः ॥

रक्तिकैकमिता वटी कृता प्रत्यहं तु नवनीतयोजिता ।

चन्दनादिवटिकेयमुत्तमा हन्ति दुर्जयफिरङ्गजां व्यथाम् ॥

(रस तरंगिणी पृ० ४० से ४२)

रसकर्पूर का नव्य निर्माण प्रकार ।

पलसंमितं प्रयात्नाद् विमलीकृतं रसेशम् ।

सपलार्द्धकं पलैकं विमलञ्च गन्धकाम्लम् ॥

चषकोपमे विशुद्धे निदधोत काचपात्रे ।

विनिधाय काचपात्रं त्वयसस्त्रिपादिकायाम् ॥

ज्वलिते सुराप्रदीपे संशोपयेज्जलांशम् ।

अथ शोषिते तु चूर्णे त्ववतार्य वै प्रदीपात् ॥

समभागिकं तु दद्याल्लवणं तु सैन्धवाख्यम् ।

परिमेल्य चूर्णमेतन्निदधोत काचकुप्याम् ॥

युगसङ्ख्यैकेस्तु यामैः सिकताख्ययन्त्रसंस्थम् ।

विपचेदतिप्रयत्नात् रसतन्त्रकर्मविज्ञः ॥

अवबुध्य काचकूर्पीं स्वत एव शीतलाङ्गीम् ।

घनसारनामधेयं रसमाहरेद्रसज्ञः ॥

अत्र रहस्यम्

जलीय बाष्पे निर्याते पिधानेन पिधापयेत् ।

कूपीकण्ठस्थितां स्वल्पां सिकताञ्चापसारयेत् ॥

रसकपूर के गुण

रसकपूरकः ख्यातो बहुभूतविषापहः ।
 त्वग्रक्तदोषशमनो ग्राही रुचिविवर्द्धनः ॥
 अतीसारप्रशमनो विशेषात्कृमिनाशनः ।
 प्रवाहिकाहरः कामं मात्राधिक्ये विषक्रियः ॥
 स्फोटं कण्डूमपि च चिरजां मण्डलादींश्च कुष्ठान् ।
 सर्वोत्थं वा सहजमपि वा स्पर्शजं वा फिरङ्गम् ॥
 शीघ्रं नानाव्रणगणभवां हन्ति पीडां महोग्राम् ।
 कर्पूराख्यो जठरदहनोद्दीपनोऽयं रसेशः ॥
 शीतले षोडशगुणे सलिले विनिपातितः ।
 सर्वथा द्रवतां याति रसः कर्पूरकाम्भिः ॥

रसकपूर की मात्रा का निरूपण

आरभ्य रक्तिकायास्तु चतुः षष्ट्यंशतो भिषक् ।
 द्वात्रिंशद्भागपर्यन्तं मात्रामस्य प्रयोजयेत् ॥

रसकपूर के आभ्यन्तर प्रयोग के लिए मात्रानिर्माणप्रकार

चूलिकालवर्णं शुद्धं गुञ्जापञ्चकसंमितम् ।
 समञ्च रसकपूरं षष्टितोलकसंमिते ॥
 जले विनिक्षिपेत्प्राज्ञो मात्रामस्य प्रकल्पयेत् ।
 बिन्दुत्रिंशकतश्चादौ षष्टिबिन्दुमितां पराम् ॥

रसकपूर के आभ्यन्तर प्रयोग के लिए चूर्णरूप से मात्रानिर्माणप्रकार

शुद्धं दारुसिताचूर्णं पञ्चमाषकसंमितम् ।
 गुळजैकं रसकपूरं क्षिपेन्निम्बवल्गुमर्दितम् ॥

रक्तिकैकमितं चूर्णं मात्रायां विनिश्चययेत् ।
रक्तित्रयमिता पूर्णमात्रास्य परिकीर्तिता ॥

रसकपूर का आमयिक प्रयोग

रसः कपूरसंज्ञोऽयं मात्रयापरिशीलितः ।
प्राभातिकीं भुक्तमात्रोत्थिताश्चातिस्मृतिं हरेत् ॥
कपूराख्यो रसो युक्तः सदाह चिरकालजम् ।
द्रवपीतमलोपेतमतीसारं विनाशयेत् ॥
शीलितो रसकपूरो मात्रया सुचिरोत्थिताम् ॥
सरक्तां सकफाश्चैव विनिहन्ति प्रवाहिकाम् ॥

(रसतरंगिणी पृष्ठ ४४ और ४५)

रसकपूर गुटिका

कुंकुमं मरिचं रक्तचन्दनं च लवङ्गकम् ।
जातिपत्री पृथक् सर्वं माषकप्रमितं हरेत् ॥
विशुद्धं रसकपूरं रक्तिकैकमितं क्षिपेत् ।
समर्घं निम्बुनीरेण कुर्याद् गुञ्जोन्मितां वटीम् ॥
रसकपूरगुटिका नामतः परिकीर्तिता ।
शीलिता नवनीतेन फिरङ्गं हन्त्यसंशयम् ॥

(रसतरंगिणी पृ० ४६)

मुग्धरस का निर्माणप्रकार

युगतोलकप्रमाणं विमलीकृतं रसेशम् ।
द्विगुणां खटीञ्च शुद्धां निदधीत खल्वमध्ये ॥
परिपेषयेत् तावद् विधिनेतदीयचूर्णम् ।
अवलोक्यते न यावत्खलु चन्द्रिकाविहीनम् ॥
हतचन्द्रिकं तु चूर्णं ह्यवबुध्य योजयेद्दे ।
विबुधैः स्मृतो रसोऽयं खलु मुग्ध नामधेयः ॥

मुग्धरस के गुण

उदरामयनुत् वमिहन्नियतं सहजोत्थफिरङ्गकुरङ्गहरिः ।
शिशुरोगहरस्तु विशेषतया विबुधैरुदितः खलु मुग्धरसः ॥

मुग्धरस का मात्रानिरूपण

गुञ्जार्धतः समारभ्य सार्धगुञ्जद्वयोन्मिता ।
पूर्णमात्रा मता मुग्धरसस्य तरुणोचिता ॥
गुञ्जाष्टमांशतश्चास्य गुञ्जापादांशसंमिता ।
पूर्णमात्रा मता विज्ञैर्वार्षिकस्यार्भकस्य तु ॥

मुग्धरस के आमयिक प्रयोग

गुञ्जैकसंमितो मुग्धरसस्तु सलिलान्वितः ।
मासमेकं द्वयं वापि यत्नतः परिशीलितः ॥
गर्भिणीनां चिरोद्भूतां नवजातामथापिवा ।
फिरङ्गजनितां बाधां नाशयत्यविलम्बितम् ॥
गुञ्जापादोन्मितो मुग्धरसो नीरेणा शीलितः ।
शिशूनां विनिहन्त्याशु फिरङ्गं सहजोत्थितम् ॥
रक्तिकाङ्गिमितो मुग्धरसो वारा नियोजितः ।
विनिहन्त्याशु बालानामतीसारं सुनिश्चितम् ॥
विज्ञाय रोगोपशमं प्राणाचार्यो भिषग्वरः ।
न योजयेन्मुग्धरसं रससिन्दूरवद् भृषम् ॥

(रसतरङ्गिणी पृ० ३८ और ३९)

कज्जलिका का निर्माण और उसका स्वरूप

अर्द्धसमानद्विगुणमिताद्या गन्धकचूर्णात् पारदकस्य ।
मर्दनजन्या मसृणकाया कज्जलरूपा कज्जलिका सा ॥

कज्जलिका का प्रयोगों में विधान ।

योगेषु यत्र निर्दिष्टौ समौ गन्धकपारदौ ॥
तन्मानां कज्जलीं तत्र योजयेद्विषजां वरः ।
उक्ते पारदमात्रे तु प्रयोगेषु सुनिश्चितम् ॥
योजयेद्रससिन्दूरं रसतन्त्रविशारदः ।
गन्धः स्यादधिकः सूतात् यावान् योगेषु मानतः ॥
गन्धं तावन्तमेवेह विधानज्ञो विनिश्चिपेत् ।
रसोऽधिको भवेद्यत्र गन्धकस्य प्रमाणातः ।
आदावेव विदध्यात्तु तन्मानान्तत्र कज्जलीम् ।

कज्जलिका के गुण ।

सहपानानुपानानां वैशिष्ट्यादिह कज्जली ।
सर्वामयहरा वृष्या मता दोषत्रयापहा ॥

कज्जलिका के आभयिक प्रयोग

कज्जली समसुगन्धनिर्मिता द्राविडीमरिचचन्द्रतोयदैः ।
द्रवपुष्पबदरास्थिसंयुतैश्चूर्णितैश्च मधुना वमिं हरेत् ॥
कज्जली द्विगुणगन्धनिर्मिता चन्द्रबालकमरीचशैलजैः ।
चूर्णितैस्तु ससितैश्च भक्षिता दारुणामपि तृषां वमिं हरेत् ॥
वरुणादिकषायेण कज्जली परिशीलिता ।
बाह्यान्तर्विद्रधिं घोरां विनिवारयति द्रुतम् ॥
द्विभागगन्धककृता कज्जली खलु भक्षिता ।
कारवेल्लीदलरसैर्विसर्प दारुणं हरेत् ॥
द्विगुणितबलियोगा कज्जली श्लक्ष्णचूर्णा,
सततमिह हि लीढा शिग्रजत्वग्रसेन ।

मधुजमधुसमेता विद्रधि हन्ति बाह्यां ।
 त्वपनयति तथान्तर्विद्रधिञ्चातिघोराम् ॥
 कज्जली द्विगुणगन्ध निर्मिता यष्टिकावृषकणाभयाक्षकैः ।
 बर्बरीस्वरसभाविता भृशं श्वासकासतमकामयापहा ॥
 समानगन्धनिर्मिता सनिम्बुकाम्लनागरा ।
 कणान्विता तु कज्जली हरेदजीर्णमुद्धतम् ॥
 एलाहिफेनकर्पूरजातीफललवङ्गकैः ।
 समैः सुचूर्णिता खयाता कज्जली स्वप्नमेहनुत् ॥
 शिंशपासारतैलेन नवनीतेन वानिशम् ।
 लिप्ता कज्जलिका शीघ्रं जीर्णं चर्मदलं हरेत् ॥
 द्विभागधूर्तपत्राढ्या कज्जली मन्यजान्विता ।
 चित्रकद्रवसंपिष्टा कण्डूपामादिकं हरेत् ॥
 कज्जली सैन्धवोपेता रविदुग्धेन पेयिता ।
 गरुडेषु लेपनादेव नाशयेद् गण्डमालिकाम् ॥
 वराकौशिकचूर्णेन समुपेता तु कज्जली ।
 वातारितैलसंयुक्ता सर्वाभयविनाशिनी ॥
 कज्जली द्विगुणगन्धनिर्मिता गव्यमन्थजयुता निषेविता ।
 नाशयेत्तु ह्यपुदंशमुद्धतं पथ्यमत्र लवणोज्झितं मतम् ॥
 समगन्धक योगेन कृता कज्जलिका खलु ।
 लेपनान्नवनीतेन गजचर्महरा मता ।
 कज्जली सितयोपेता धात्रीस्वरससंयुता ।
 शीलिता नाशयत्याशु सर्वानेव मदात्ययान् ॥
 धत्तरवीजस्वरसपेयिता खलु कज्जली ।
 सव्योपा नस्ययोगेन सन्निपातं निपातयेत् ॥

रसपर्पटिका का निर्माणप्रकार

सुतं हिंगुलसम्भवं हृतमलं मोटोरुवूकाद्र्कैः
 दैत्येन्द्रं कचरञ्जनोद्भवजलैः प्राक् सप्तधा भावितम् ।
 अग्नौ कोलककोकितोज्ज्वलशिखे सम्यग्विलाप्यद्रुतं ।
 भृंगोत्थे सलिले निषिच्य विमलं तुल्यं ततः पेपयेत् ॥
 युक्त्या कज्जलिकां विधाय विबुधस्तां लोहदर्व्यां क्षिपेत् ।
 निर्दिष्टैः खलु कोकिलैश्च दहनं प्रज्वालय दर्वीं न्यसेत् ॥
 सुतं पङ्कसमं विलाप्य रुचिरं पाकक्रिया कोविदः ।
 शीघ्रं गोमयसंस्थिते तु कदलीपत्रे ततो निक्षिपेत् ॥
 निक्षिप्तमात्रं कदलीपलाशैराच्छादयेद्वै सुचिरं रसबन्धः ।
 यस्मादियं पर्पटतुल्यरूपा तस्मान्मता पर्पटिकाभिधेया ॥

पर्पटिकापाकस्य त्रैविध्यम्

मृदुर्मध्यः खरश्चेति पाकोऽत्र त्रिविधः स्मृतः ।
 आद्यौ प्रयोजयेद्वैद्यः खरन्तुविषवत्त्यजेत् ॥

त्रिविधपाकानां स्वरूपाणि

मृदुपाके न भङ्गः स्यात्तत्सारल्यञ्च मध्यमे ।
 द्वयोः सचन्द्रिकं कार्ण्यं खरे चूर्णञ्च लोहितम् ॥

पर्पटिका के गुण

ग्रहणीगजमर्दनदक्षतरा क्षयकासजलोदरगुल्महरा ।
 अतिसारमतिभ्रमदाहहरा ज्वरशोथहरा रसपर्पटिका ॥
 अशोरीरोगं हरति सुतरां कामलां शूलकोपं ।
 पाण्डुव्याधिं श्वयथुसहितं भस्मकश्चातिभीष्मम् ॥

कुष्ठान्यष्टादश भृषमथोत्सेधकं सर्व रूपं ।
 ग्रीहानश्च प्रविततरुजं त्वामवातानशेषान् ॥
 अम्लपित्तशमनी हरणीया वृद्धदोषदमनी रमणीया ।
 कामशुक्रजननी मदनीया पर्पटी क न भवेत्कमनीया ।

पर्पटी की मात्रा

गुञ्जाद्वितयमेवादौ मात्रामस्य प्रकल्पयेत् ।
 कमवृद्ध्या च वितरेद् गुञ्जादशकमन्ततः ।

रसपर्पटिका के आमयिक प्रयोग

नाकुलीबीजरजसा गुञ्जाष्टकमिताशिता ।
 रसपर्पटिका साज्यमुन्मादमिह नाशयेत् ॥
 ब्राह्मीरससमायुक्ता गुञ्जाष्टकमिताशिता ।
 रसपर्पटिका काममपस्मारं निवारयेत् ॥
 रामठेनार्धगुञ्जेन सगुञ्जाष्टकजीरका ।
 रसपर्पटिका भुक्ता ग्रहणीं हन्ति दाहणाम् ॥
 व्योषनिम्बुदलोपेता भक्षिता रसपर्पटी ।
 सप्ताहद्वितयेनैव त्वपस्मारं विनाशयेत् ॥
 वर्धमानकबीजोत्थतैलेन परिशीलिता ।
 शूलं, गुग्गुलुना पाण्डुशोफं हन्यात्तु पर्पटी ॥
 धूर्तवीजसमायुक्ता रसपर्पटिकाशिता ।
 गुञ्जापञ्चकमात्रन्तु हन्त्युन्मादं विशेषतः ॥
 गोमूत्रेण समायुक्ता रसपर्पटिकाशिता ।
 मासमात्रप्रयोगेण नाशयेद्गुदजामयम् ॥
 निम्बपञ्चकभल्लातबाकुचीभृङ्गसंयुता ।
 निहन्ति सर्वकुष्ठानि रसपर्पटिकाशिता ॥

दशमूलकषायेण शीलिता रसपर्पटी ।
 विनाशयेद्विशेषेण दाहणं वातिकं ज्वरम् ॥
 ज्यूषणक्षोदसंयुक्ता रसपर्पटिकाशिता ।
 विनिहन्त्यचिरादेव कासं खलु कफोत्थितम् ॥

पर्पटिकाभक्षणसमनन्तरं जलपान निषेधः

रसबलिपर्पटिकाया भक्षणसमकालमेव दोषज्ञैः ॥
 नादेयं वा कौपं पानीयं नैव पानीयम् ॥

पर्पटिकायाः पथ्यानि

काकाह्वा च पटोलकं सुविशदं पूगीफलश्चार्द्रकं,
 वास्तूकं कदलीप्रसूनममलं कृष्णञ्च वातिङ्गनम् ।
 सूक्ष्माश्चाथ पुरातनाः कृमिगणैर्हीनास्तथाशालयः,
 पानं गोपयसः सशर्करमलं पथ्यं बुधैः कीर्तितम् ॥

प्रकारान्तरेण पथ्यानि

पुराणाः शालयः शाके वृन्ताकं वा पटोलकम् ।
 गवां दुग्धन्तु सततं पथ्यमेतच्चतुष्टयम् ॥
 प्रथमायामवस्थायां दुग्धं सात्त्वं न चेद्भवेत् ।
 अतिसारप्रवृत्तिः स्यात्तदा तन्नैव योजयेत् ॥
 छावतित्तिकादीनां रसं तत्र नियोजयेत् ।
 अतीसारनिरोधे तु दुग्धमेव प्रदापयेत् ॥
 शोथे विशेषतो हेयं पानीयं लवणान्तथा ।
 तृषायां वितरेदल्पं नारिकेलोदकं भिषक् ॥
 उष्णप्रधानदेशे तु रोगिमङ्गलकाम्यया ।
 सशोथेऽपि भिषक् नीरं जातु नैव विवर्जयेत् ॥

रसपर्वटिकाया अपथ्यानि

नाम्नं स्नानं शिशिरसलिलैर्नापि वातादिसेवा ।
कोपं चिन्तामहितमतुलं नैव सेवेत चोष्णम् ॥
तिक्तं निम्बादिकमिह गुडानूपमांसादिकञ्च ।
स्त्रीणां सम्भाषणमपि बुधैर्नैव कार्यं कदाचित् ॥
(रसतरङ्गिणी पृ० ४८-४९)

रससिन्दूरस्य निर्माणप्रकारः

तोलकाष्टकमितं रसेश्वरं तन्मितञ्च विमलं बलिं हरेत् ।
खल्वके खलु विमर्द्य कज्जलीं भावयेद्य वटांकुराम्बुभिः ॥
मसीपात्रसमाकारां सुरूप्यां काचकूपिकाम् ।
सतूलकुट्टितमृदा लेपयेत् खलु यत्नतः ॥

स्थापयेत्कज्जलीं काचकुप्यां ततो यत्नतः पाचयेद्बालुकायन्त्रगाम् ।
अग्निवृद्धिकर्मैर्जीर्णगन्धे रसे रोधयेद्युक्तितः काचकूपीमुखम् ॥
बालुकायन्त्रके काचकूपीमुखात् रोचनासन्निभो नैति धूमो यदा ।
सूतपाकक्रियाज्ञानदत्तैर्बुधैर्वेदितव्यस्तदा जीर्णगन्धो रसः ॥
निवेश्य कुप्यां खटिकापिधानं, जलेन सम्पेषितया प्रकामम् ।
प्रलेपयेद्वै गुडचूर्णं पिष्ट्वा, ततः पचेद्यामयुगं रसज्ञः ॥

अवबुध्य तदंगशीततां खलु बालारुणसूर्यसन्निभम् ॥
गलदेशविलग्नमुज्ज्वलं रससिन्दूरमिहाहरेद्बुधः ॥

अर्द्धगन्धकजीर्णं रससिन्दूरम्

तोलकाष्टकमितो रसेश्वरः कर्षकद्वयमितञ्च गन्धकः ।
नव्यसार इह कर्षसंमितः पेपयेद्य च लुङ्गवारिभिः ॥

कूपिकागतमथ प्रबुद्धधीः सम्पचेत् सिकतयन्त्रके भिषक् ।
शास्त्रवित्खलु विभिद्य कूपिकां हिङ्गुलाभमिह सूतमाहरेत् ॥

समानगन्धकजीर्णरससिन्दूरम्

पामारिं खलु निर्मलं पलमितं तत्तुल्यमानं रसम् ।
तत्पादप्रमितं नृसारममलं दत्त्वाऽथ संपेषयेत् ॥
कूपीमध्यगतं विधाय सिकतायन्त्रे पचेद्युक्तितः ।
राजीवोपममूर्ध्वभागगरसं कूपीं विभिद्याहरेत् ॥

द्विगुणगन्धकजीर्ण रससिन्दूरम्

पामारिं विमलं पलद्वयमितं सूतं पलेकोन्मितं ।
सम्भर्द्याथ विभावयेद्धि कुसुमैः रक्ताभकार्पासजैः ॥
कूपीमध्यगतं पचेच्च सिकतायन्त्रे त्वहोरात्रकम् ।
राजीवोपममूर्ध्वभागनिचितं सिन्दूरकञ्चाहरेत् ॥

त्रिगुणादिगन्धकजीर्णस्य रससिंदूरस्य विधानम्

अनेनैव विधानेन गन्धकं वर्द्धयन् क्रमात् ।
रसकर्मविशेषज्ञो रससिन्दूरमुद्धरेत् ॥
जीर्णगन्धे रसे जाते क्रमागतदिनक्रमैः ।
यामद्वयं ततः प्राञ्चै रसपाको विधीयते ॥

षड्गुणगन्धकजीर्ण रससिन्दूरम्

पामारिर्विमलोऽङ्ग संख्यकपलः सूतस्य चैकं पलं
सम्पेष्याथ विभावयेद्बुधवरो यामं कुमारीरसः
कूपीमध्यगतं विधाय सिकतायन्त्रे ततः सम्पचेत्
गाढं वासरसप्तकञ्च विधिना सिन्दूरकञ्चाहरेत् ॥

रससिन्दूरस्य गुणाः

प्रमेहकरिकेशरी प्रबलशूलकालानलो
भगन्दरहरः परं खलु महाज्वरेभाङ्कुशः ।
समस्तगदतस्करः सकलशोषसंशोषको
रसोऽतुल विलासदो विजयते हि सिन्दूरकः ॥
नियमयति रसेशः पञ्चवातान्नितान्तं
प्रसरति धमनीनां स्वक्रिया वातसाम्ये ।
दृढयति भृशमादौ जालकं नाडिकानां
रमयति च ततोऽसौ मानसं सेवकानाम् ॥
वहिर्गमनशीला ये स्वेदविण्मूत्रमारुताः ।
निरायासं विनिर्यान्ति रसस्यास्य निषेवणात् ॥
पित्तं निःसारयत्येष न रेचयति कर्हिचित् ।
न च पित्ताशयं कोष्ठं विद्धोभयति भक्षितः ॥
स्फीततां दन्तवेष्टानां मुखपाकं क्षतादिकम् ।
जालास्रावं प्रदाहश्च न सूते चिरसेवितः ॥
विकारानीदृशानन्यान् दारुणान् पारदोत्थितान् ।
न जातु प्रकरोत्येष रसः सिन्दूर संज्ञकः ॥

रससिन्दूर की मात्रा

एकहायनदेशीयं बालकं वीक्ष्य रोगिणम् ।
गुञ्जायाः षोडशो भागस्तत्र मात्रा प्रकल्प्यते ॥
तथा द्विवर्षदेशीये सप्तमोभाग इष्यते ।
रसहायनदेशीये तृतीयं भागमाहरेत् ॥
द्वादशान्दकदेशीये गुञ्जार्धं परिकल्पयेत् ।
गुञ्जामात्रमिता चास्य पूर्णमात्रा प्रशस्यते ॥

(रसतरङ्गिणी पृ० १३-६०)

मकरध्वज का निर्माण प्रकार

स्वर्णं तोलकसंमितं मृदुदलं युक्त्या विशुद्धाकृतं
 स्वर्णादिष्टगुणोन्मितं रसवरं जीर्णाच्छसौगन्धिकम् ।
 संस्कारैर्बहुभिर्विशोधितमथो सम्मेल्य सम्पेषयेत्
 गन्धं षोडशतोलकं सुविमलं कुर्यात्ततः कज्जलीम् ॥
 शोणैः कार्पासपुष्पैरथ मृदुविशदांकोटमूर्त्तवचाद्भिः
 कन्यानीरैश्च घृतं रसविधिचतुरो भावयेदामयज्ञः ।
 सम्यक् पिष्टं सुशुष्कं त्वपि च रसवरं काचकुप्यां निदध्यात्
 विल्वादीनाञ्च काष्ठैः सलिलविरहितैस्तापयेच्चाथविद्वान् ॥
 पूर्वं यामद्वयं प्राज्ञः पचेन्मृद्वग्निना रसम् ।
 मध्यमानलयोगाच्च ततो यामद्वयं पचेत् ॥
 प्रखरेणानलेनाथ पचेद्याम द्वयं भिषक् ।
 अवशिष्टद्वियामञ्च पुनर्मृद्वग्निना पचेत् ॥
 यन्त्रे सिकतसंज्ञे च स्वाङ्गशीतमथोद्धरेत् ।
 काचकूपीं विभिद्याथ सहकारसमप्रभम् ॥
 भङ्गे रक्तप्रतीकाशं पिष्टे रक्तोत्पलोपमम् ।
 सौवर्णं मूर्द्धितं सूतं गृहीयाद्भिषजां वरः ॥
 नानेन जायते यस्मान्मकरध्वज सन्निभः ।
 रसज्ञैः ख्यापितस्तस्मान्नाम्नायं मकरध्वजः ॥

श्री सिद्धमकरध्वजः

पूर्वोक्त निजमानाच्च कनकं चेच्चतुर्गुणम् ।
 निर्दिष्ट मानप्रमितौ भवतो रसगन्धकौ ॥
 पूर्ववद्भावयित्वापि पचेत्सिकतयन्त्रके ।
 एवन्तु षड्गुणं गन्धं ज्ञारयेत्क्रमशो भिषक् ॥

समर्पितो यतश्चायं सिद्धेभ्यः शूल पाणिना ।
ख्यातस्ततोऽयं जगति श्रीसिद्धमकरध्वजः ॥

अथास्य गुणाः

क्षयक्षयकरः परं प्रबलकासकालानलः ।
प्रमेहकुलकण्डनः प्रविततान्वशोषान्तकः ॥
समस्तगदभञ्जनः प्रमदकामिनीरञ्जनः ।
सदैव मकरध्वजो विजयते रसाधीश्वरः ॥

(रसतरङ्गिणी पृ० ६०-६१)

षड्गुण बलिजारित रसः

क्षुद्रभाण्डे रसं कृत्वा बालुकायन्त्र मध्यगम् ।
षड्गुणं गन्धकं तत्र क्षिपेदल्पालयकं शनैः ॥
तैलरूपो यदागन्धस्ततोऽवतारयेद्रूतम् ।
स्वांगशीते दृढे गन्धे स्फोटयित्वा रसं नयेत् ॥
सर्वं रोगेषु दातव्यो रसो व्याधिनिसूदनः ।

(रसेन्द्रसारसंग्रह)

वृहच्चन्द्रोदय मकरध्वज

पलमदुःस्वर्णदलं रसेन्द्रात् पलाष्टकं षोडशागन्धकस्य ।
शोणैः सुकार्पासभवैः प्रसूनैः सर्वं विमर्द्याथ कुमारिकाद्रिः ॥
तत्काच कुम्भे निहितं सुगाढे मृत्कर्पटीभिर्दिवसत्रयञ्च ।
पचेत् क्रमाग्नौसिकताख्ययन्त्रे ततो रजः पल्लवरागरम्यम् ॥
निगृह्य चैतस्य पलं पलानि चत्वारि कर्पूररजस्तथैव ।
जातीफलं सोपणमिन्द्रपुष्पं कस्तूरिकाया इह शाणमेकम् ॥
चन्द्रोदयोऽयंकथितोऽस्यमाषो भुक्तोऽहिबल्लीदलमध्यवर्ती ।
घृतं घनीभूतमतीवदुग्धमदूनि मांसानि समस्तकानि ॥

माषान्निपिष्टानि भवन्ति पथ्यान्यातन्ददायीन्यपराणिचात्र ।
 बलीपलितनाशनस्तनुभृतां वयःस्तम्भनः
 समस्तगदखराडनः प्रचुररोगपञ्चाननः ॥
 गृहेऽपिगृहभूपतिर्मवति यस्य चन्द्रोदयः ।
 स पञ्चशरदर्पितो मृगदृशां भयेद्बल्लभः ॥

(भेषज्यरत्नावली पृष्ठ ४१४)

१ स्वर्णसिन्दूरम्

पलं रसेन्द्रस्य च गन्धकस्य हेम्नोऽपि कर्षं परिगृह्यसम्यक्
 चटप्ररोहस्य रसेनयामं यामं विमर्द्याथ कुमारिकायाः ।
 तत्काचकुप्यां निहितं प्रयत्नात्पचेद्विधिज्ञः सिकताख्ययन्त्रे
 ततोरजश्चोर्ध्वगतं सुरम्यं प्रगृह्ययत्नादरुणप्रभं यत् ॥
 तद्योजयेत् सर्बगदेषुवीक्ष्य धातुं वलं वद्धिमथो वयश्च ।
 रसायनं वृष्यतरञ्च बल्यं मेधाग्निकान्तिस्मरबद्धनञ्च ॥

(भेषज्यरत्नावली)

२ स्वर्णसिन्दूरम् (मकरध्वजोरसः)

स्वर्णादष्ट गुणं सूतं मर्दयेत्त्रिकगन्धकम् ।
 रक्तकार्पासकुसुमैः कुमार्यद्भिर्विमर्दयेत् ॥
 शुष्कं काचघटीं रुध्वा बालुका यन्त्रगं हठात् ।
 भस्म कुर्याद्रसेन्द्रस्य नवार्कं किरणोपमम् ॥
 मागोऽस्य भागाश्चत्वारः कर्पूस्सुशोभनाः ।
 लवङ्गं मरिचं जातीफलं कर्पूरं मात्रया ॥
 मेलयेन्मृगनाभिश्च गद्यानकमितं ततः ।
 रुक्ष्य पिष्टो रसोनाम जायते मकरध्वजः ।

बल्लं बल्लद्वयं वाथ ताम्बूलीदलं संयुतम् ॥
 भक्षयेन्मधुरं स्निग्धं मृदुमांसमवातलम् ।
 शृतशीतं सिता युक्तं दुग्धं गोभवमाज्यकम् ॥
 मध्वाद्यं पिष्टमपरं मद्यानि विविधानि च ।
 करोत्यग्निबलं पुसां वलीपलित नाशनः ॥
 मेघायुः कान्तिजननः कामोद्दीपनकृन्महान् ।
 अभ्यासात्साधकः स्त्रीणां शतं जयति नित्यशः ॥
 रतिकाले रतान्ते च पुनः सेव्योरसायनः ।
 कृत्रिमं स्थावर विषं जङ्गमं विषवारि च ॥
 न विकाराय भवति साधकानाञ्च बत्सरात् ।
 मृत्युञ्जयो यथाभ्यासान्मृत्युञ्जयति देहिनाम् ॥
 तथाऽयं साधकेन्द्रस्य जरामरणनाशनः ।

(भैषज्यरत्नावली शृष्ठ ६४८)

२ मकरध्वजोरसः

पलश्रेकं स्वर्णादलं रसेन्द्रञ्च पलाष्टकम् ।
 रसस्य द्विगुणं गन्धं तेनैव कज्जली कृतम् ॥
 कुमारिकारसैर्भाव्यं काचयन्त्रेनिधापयेत् ।
 बालुयन्त्रे च संस्थाप्य क्रमाद्दिनत्रयं पचेत् ॥
 स्वाङ्गशीतं समादाय पुष्पाङ्गारजः समम् ।
 यवमात्रं प्रदातव्यमहिबल्लीदलेन च ॥
 एतदभ्यासतश्चैव जरामरणनाशनम् ।
 अनुपान विशेषेण करोति विविधान् गुणान् ॥
 ज्वरं त्रिदोषजं घोरं मन्दाग्नित्वमरोचकम् ।
 अन्यांश्च विविधान् रोगान्नाशयेन्नात्र संशयः ॥

(भैषज्य रत्नावली शृष्ठ ८८)

सिद्धसूतः

मुक्ताफलं शुद्धसूतं सुवर्णं कल्पमेव च ।
 यवक्षारश्च तत्सर्वं तोलकैकं प्रकल्पयेत् ॥
 रक्तोत्पलपत्रतोयैर्मर्दयेत् पुत्तली कृतम् ।
 मर्दयेच्च पुनर्दत्त्वा गन्धकं तदनन्तरम् ॥
 क्षिप्त्वा काचघटी मध्ये सन्निरुध्य त्रियामकम् ।
 सिकताख्ये पचेच्छीने सिद्धसूतं भक्षयेत् ॥
 पञ्चरक्तिप्रमाणेन मुशलीशर्करान्वितम् ।
 शुक्रवृद्धिं करोत्येष ध्वजभङ्गश्च नाशयेत् ।
 दुर्बलं वपुरत्यर्थं बलयुक्तं करोत्यसौ ॥
 सुदृग्गर्भघृतं क्षीरं शालयः स्निग्धमाम्बिम् ।
 पारावतस्य मांसञ्च तित्तिरञ्च सदा हितः ॥

(भैषज्यरत्नावली पृष्ठ ४१५)

ताल चन्द्रोदयः

कृष्माण्डसंस्वेदनं जातशुद्धिं तालं सुपत्रं परिकुट्यवस्त्रे ।
 चागाल्य मर्दत्समपारदेन बुभुक्षुणा जीर्णसुवर्णकेन ॥
 द्विवृत्तगन्धेन पलङ्कपायां शुद्धेन सर्पिः पयसोरुतापि ।
 दिनत्रयं काचमयीं भरेत् शीशीं चतुर्थांशतले मसिताम् ॥
 प्रारंभतीव्रं कुरु हव्यबाहं तालादिभस्मार्थं विधातुं कोष्ठ्याम् ।
 चन्द्रोदयिण्यां विनिधाययन्त्रं सर्वार्थकर्यामुत वालुकाख्यम् ।
 द्विकमात्रेणवनेद् विशुद्धश्चन्द्रोदयो नाम च तालं पूर्वं ।
 कुष्ठादिरोगेष्वतुल्यप्रभावः स्वास्थ्यं प्रचारकमसत्स्वभावः ॥

(रसायन सार पृष्ठ २४६)

शिला चन्द्रोदयः

मनःशिलामार्दरसैर्विमयेदेकाधिकं विंशति कृत्वआद्यम् ।
संशोष्य संशोष्य तया समेशं तत्तुल्यगन्धेनमसि च कुर्यात्
भृत्वा च कूप्यामथ वालुकाख्ये यन्त्रे पवेद्घस्र चतुष्टयं तत्
काष्ठाग्निना शीतमथावतार्य गले विलग्नं रसमाददीत ॥
चन्द्रोदयश्चैष मनःशिलादि कुष्ठादि रोगापनयायदिष्टः ।
इष्टश्च गुञ्जाद्वयमात्रमात्रो हेमन्तकाले पुरुषाय यूने ॥

(रसायन सार पृष्ठ २४६)

मल्लचन्द्रोदयः ।

नैम्बूकनीरेण दिनत्रयन्तु श्वेतादि रूपांश्चतुरोपिमल्लान् ।
यथोत्तरं तूग्रवलान्मिथस्तान्समांश सूतेन विमदयेत् ॥
ताभ्यां समानेन सुगन्धकेन कृत्वा मसि कूपिकया पचेत् ।
सर्वार्थं कर्ष्याल्लु कोष्ठिकायां यामत्रयं शीतलमुद्धरेत् ॥
मल्लादि चन्द्रोदयमामनन्ति सर्वौषधेभ्योपि प्रधान वीर्यम् ।
विसूचिका सन्निपतत् त्रिदोषान् व्याधीनपाकर्तुमनन्यशस्त्रम् ॥

(रसायन सार पृष्ठ २६३)

विषचन्द्रोदयः ।

बुभुलुसुतो विषगन्धकौच समानमानाः कृतकजलीकाः ।
समृत्पटायामपि कूपिकायां भृताधृता यन्त्र गताश्चकोष्ठ्यां ॥
चेत्प्रस्तरेङ्गाल कृशानुपक्वा यामद्वयेनैव च कर्मसिद्धिः ।
बर्बूरकाष्ठाग्नि विपाचितास्तु यथा गुरुत्वं समयः समीक्ष्यः ।
गुञ्जार्द्ध गुञ्जाद्वय मात्रमात्रा विषादि चन्द्रोदय रामवाणः ॥
शीतज्वराणां विषमज्वराणां नवज्वराणां त्रितयज्वराणाम् ॥
प्रभञ्जनव्याधिप्रभङ्गहेतुर्वाङ्मय कासारति धूमकेतुः ॥
नानार्तिलङ्घ्यातुररामसेतुर्धार्यः स्वपाश्वर्षेभिषजाऽर्तिजेतुः ॥

(रसायन सार पृष्ठ २६६)

सत्त्वचन्द्रोदयः ।

मनःशिलालाऽमृत मल्लकानां जम्बीर निम्बवम्बुसुभावितानाम्
 पृथग्द्वयं वा त्रयमेव वापि चतुष्टयं वोत्थिति यन्त्रकेण ।
 उत्पात्य सत्त्वं ननुसंगृहाण खड्वाङ्ग यन्त्रोर्ध्वतले विलग्नम् ॥
 समं समं तत्परि मेल्य सर्वं तत्तुल्यसूतं क्षुधित विमर्दित् ॥
 समस्तमानं द्विगुणं च गन्धं जैपाल भल्लातकतैलशुद्धम् ।
 मसि विधायाम्लकवेतसाम्बुसंमर्दिता पञ्चदिनानि सम्यक् ।
 संमर्द्य संमर्द्य कृतावशोषां पिधानयन्त्रे च निधाय धीमान् ॥
 क्रमेण बन्धौ मृदुमध्यतीक्ष्णे निरुद्धधूमे परिपाचयेत् ।
 यन्त्रस्यसन्धौ प्रददीत मुद्रां वज्राविधानां दश मत्पटांश्च ॥
 दिनद्वयंवन्हिविपाकयोगेऽतीते च शीतेस्वयमेव यन्त्रे ।
 उद्घाट्य मुद्रां रसमाहरेत् ताम्रस्यभस्मापि पृथक् क्रियेत् ॥
 सत्त्वैश्चतुर्भिः परिनिर्मितोयं चन्द्रोदयापूर्वगुणौघधारी

(रसायन सार पृष्ठ २७१)

पिधान यंत्र विधिः

मृद्वरिडकावक्त्रमितं च पत्रं शुल्बस्य शुद्धस्य सुवर्तुलं स्यात् ।
 समोपले श्लक्ष्णतले जलेन घर्षेच्छनैर्हरिडमुखंकराभ्याम् ॥
 तथाभवेत्तत्परितोऽग्रभागं रन्ध्रं विना श्लक्ष्णातमस्वरूपम् ।
 यथापिधाने पिहितेत्रसन्धिः किञ्चिन्न च कापि कदापि दृष्टः ॥
 पिधानकं चापि तथा प्रकुट्टेच्छनैः शनैर्मृद्वरिडकाभिघातैः ।
 समन्ततो नैति यथैतदग्रं वैषम्यतो मेलनकान्तरायम् ॥
 समुत्पटायामनुहरिडकायां समूच्छ्रय द्रव्यं निदधीत भूयः ।
 मुखं पिधायापि ददीत मुद्रां यन्त्रं विधानं रसरोधकारि ॥

(रसायन सार पृष्ठ २७३)

अन्तर्धूमचन्द्रोदय विधिः

आमाति सेटत्रय गौरवाढ्या कूप्यामसिश्चेदिहचाष्टमांशा ।
 आपूर्य्यतामृत्पटसप्तकायां तीव्रातपे साधु विशोषितायाम् ॥
 मुखे खट्तिग्रासनिरोधितायां मुद्राप्रदानेन दृढीकृतायाम् ।
 मृद्वस्त्रलेपेन च लेपितायां तथापि सूत्रैर्दृढवेष्टितायाम् ॥
 पतां च यन्त्रे ननु बालुकाख्ये धृत्वा च भृशं सिकतां गलान्तम् ।
 यन्त्रं च तालादि विधातृकोष्ठ्यां निधाय वह्निं मृदुमेव दद्यात् ॥
 दिने दिने च क्रमवर्द्धमानं गलेऽतितप्तत्वेतिहीय मानम् ।
 तीव्रं पुनर्वा मृदु दीयमानं शोशो गलस्पर्श परीक्ष्यमाणम् ॥
 दिनाष्टकं यन्त्रमितिक्रमेण पचेद्गलश्चेदतितीव्रवह्नेः ।
 योगेऽपिसंस्पर्शं सशोऽनुभूतोऽन्तर्धूमचन्द्रोदय निश्चयः स्यात् ॥
 यतो गलस्थेन रसेन तेन निरुद्ध वर्त्मा द्रुतभुग्गलान्तम् ।
 तप्तुं न शक्नोति न चाऽपि कूपीमनिन्धनः स्फोटयितुंक्षमोऽस्ति
 एवं विनिर्णीत रसेन्द्र सिद्धिरुपेक्ष्य तिष्ठेद्रसयन्त्र कोष्ठीम् ।
 शीते च यन्त्रे रसमाददीत षड्गन्धजारी भवतीति षोढा ॥
 चन्द्रोदयोक्ता निखिलाः प्रकाराः सर्वेऽपितेऽत्रापि सुसंभवन्ति ।
 अभ्यासदाढ्येन च किन्तु सिद्धोऽन्तर्धूमचन्द्रोदय कर्मणि स्यात् ॥

(रसायनसार पृष्ठ १७४)

सहस्रधा चन्द्रोदय विधिः

तारस्य योगं समवाप्य सूतं चन्द्रोदयं तारमुखं विधत्ते ।
 ताम्रस्य वङ्गस्य भुजङ्गमस्य व्योम्नोऽपि सत्त्वस्यतदाख्यमेव ॥
 वनस्पतीनामथवाऽपियोगं मुख्यं समालिङ्ग्य तथा बुभुक्षुः ।
 सूतश्च सूते ननुगन्धयोगैः सञ्चारितानेक गुणस्तदादिम् ॥
 समद्विषद् सप्तशतादिसंख्यैर्गन्धैः स्वमूर्तिगुणभेदभिन्नः ।

सहस्रधाऽसौकुर्वते रसेन्द्रो माया गुणेनेव सहस्र शीर्षः ॥

(रसायनसार, पृष्ठ २७६)

पारदमारणम् (१)

धूमसारं रसं तोरीं गन्धकं नवसादरं ।
यामैकं मर्दयेदस्त्रैर्भागं कृत्वा समांशकम् ॥
काच कुण्ठां विनिक्षिप्य तां च मृद्वस्त्रमुद्रया ।
विलिप्य परितोवक्रं मुद्रां दत्वा च शोषयेत् ॥
अधः सच्चिद्र पिठरी मध्ये कूर्पीं निवेशयेत् ।
पिठरी बालुका पूरैर्भूत्वा चा कूपिकागलम् ॥
निवेश्यचुल्ल्यां तदधः कुर्याद्बहिः शनैः शनैः ।
तस्मादप्यधिकं किञ्चित्पावकं ज्वालयेत्कमात् ॥
एवं द्वादशभिर्यामभ्रियते सूतक्रांतमः ।
स्फोटयेत्स्वाङ्गशीतं च ऊर्ध्वगं गन्धकं त्यजेत् ।
अधःस्थं मृतसूतं च सर्वकर्मसु योजयेत् ॥

अन्यदपि रसमारणम् (२)

अपामार्गस्य बीजानां मूषा युग्मं प्रकल्पयेत् ।
तत्संपुटे न्यसेत्सूतं मलयूदुग्ध मिश्रितम् ॥
द्रोणपुष्पीप्रसूतानि विडङ्गमिरिमेदकः ।
पतच्चूर्णमधोर्ध्वं च दत्वा मुद्रां प्रदीयते ॥
तं गोलं सन्धयेत्सम्यक्मृन्मूषा संपुटे सुधीः ।
मुद्रां दत्वा शोषयित्वा ततो गजपुटे पचेत् ॥
एवमेकपुटेनैव जायते भस्म सूतकम् ।

अन्यदपि रसमारणम् (३)

काष्ठोदुम्बरिकादुग्धैरसंकिञ्चिद्विमर्दयेत् ।
तदुग्धघृष्टहिङ्गोश्च मूषा युग्मं प्रकल्पयेत् ॥

क्षिप्त्वा तत्संपुटे सूतं तत्रमुद्रां प्रकल्पयेत् ।
धृत्वा तं गोलकं प्राज्ञो मृन्मूषा संपुटेऽधिके ॥
पचेन्मृदुपुटेनैव सूतको याति भस्मताम् ।

अपरमपि पारदमारणम् (४)

नागवल्लीरसैर्घृष्टः कर्कोटीकन्दगर्भितः ।
मृन्मूषा संपुटे पक्त्वा सूतो यात्येव भस्मताम् ॥

(शाङ्गधर संहिता, पृष्ठ २६३-२६४)

अन्यच्च (५)

शुद्धसूतसमं गन्धं वटक्षीरैर्विमर्दयेत् ।
पाचयेन्मृत्तिका पात्रे वटकाष्ठैर्विचालयेत् ॥
लघ्वग्निना दिनं पाच्यं भस्मसूतं भवेद्भ्रुवम् ।
द्विगुञ्जं नागपत्रेण पुष्टिमग्निं च वधयेत् ॥

(योगचिन्तामणि, पृष्ठ २३१)

अधस्तल भस्म

सूतश्चतुष्पलमितः समशुद्धगन्धः
स्याद्धूमसार पिचुरेक इदं क्रमेण ।
संमर्दयेद्विमल दाडिम पुष्पतौयै
घृत्वं विमिश्र्य सितसोमल मापकेण ॥
एतन्निधाय सकलं जलयन्त्र मध्ये
संमुद्रयसन्धिमुदितेन पुरा क्रमेण ।
आपूर्य यंत्रमुदकेन दिनानि चाष्टौ
वर्हि क्रमेण तदधो विदधीत विद्वान् ॥

संपूज्य शम्भु गिरिजां गिरिजातनूजं
 दद्याच्छुभेऽहनि रसं वरमेकगुञ्जम् ॥
 ताम्बूलिकादल युतं ससितं पयोनु
 पोत्वाम्ल माप लवणै रहितं सदन्नम् ।
 अद्यात्कियन्त्यपि दिनानि ततो ययेच्छं
 भक्ष्यं भजेदथ नरो विगतामयः स्यात् ॥

(बृहद्योगतरङ्गिणी, पृष्ठ २८२)

१ उर्ध्वस्तल भस्म

शुद्ध सूतं द्वयं गन्धं त्रयं स्फटिक सैन्धवम् ।
 चतुर्थं सोमलं भागं वत्सनाभं च पंचम् ॥
 सूतार्द्धं चैव कर्पूरं सर्वं खल्वे विमर्दयेत् ।
 भावनामर्कदुग्धस्य स्नुहीदुग्धस्य च तथा ॥
 यत्रे च लवणं सूतमूर्द्धस्थास्या मुखं लिपेत् ।
 अग्निं यामाष्टकं दत्त्वा दद्याच्च जलपातनम् ॥
 उर्ध्वं स्थाल्यां रसं सिद्धं योजयेत्सर्वं कर्मणि ।
 भक्षणे देह सिद्धिः स्यादेव दानव दुर्लभः ॥

(निबंदुराकर, पारद संहिता पृष्ठ ३१४)

२ उर्ध्वस्तल भस्म

शुद्ध सूतं समं गन्धं सोमलं च तदर्धकम् ।
 सोमलार्द्धं विषं क्षिप्त्वा द्विगुस्फटिकं गैरिकम् ॥
 सामुद्रजलवणं चैव संवतुल्यं विनित्तिपेत् ।
 कांजिकेन पुटं दद्यात् पुटित्वा चैन्द्रवारुणीम् ॥
 स्थाल्यामुत्थापनं कृत्वा अग्निं यामाष्टकं ददेत् ।
 स्वाङ्गशीतं समुद्धृत्य भस्म सूतार्द्धं पातनम् ॥

योजयेत्सर्वं रोगेषु कुर्याद्बहुतरां क्षुधाम् ।
पुष्टिदो वर्धते कामो युज्यते रक्तिका द्वयम् ॥

(रसराजसुन्दर, पारदसंहिता, पृष्ठ ३१४)

अभ्रयोगेन रसभस्म

वटक्षीरेण सूताभ्रौ मर्दयेत् प्रहरत्रयम् ।
पाचयेत्तस्यं काष्ठेन भस्मो भवति तद्रसः ॥

(रसरत्नसमुच्चय, पृष्ठ १२३)

कृष्णभस्म

धान्याभ्रकं सूततुल्यं मर्दयेन्मारकद्रवैः ।
दिनैकं तेन कल्केन पुटं लिप्त्वाथ वर्तिकां ॥
कृत्वैरंडस्य तैलेन विलेप्य च पुनः पुनः ।
प्रज्वाल्यतामधःपात्रे सतेजः पारदः पतेत् ॥
दिनैकं भूधरे पक्त्वा भस्मीभवति नान्यथा ।
योजितो रसयोगेन तत्तद्रोगहरो भवेत् ॥
विशेषान्मेहपाण्डूवर्तिक्षयकासादिकाञ्जयेत् ॥

(टोडरानन्दः, पारदसंहिता पृष्ठ ३१४)

सुवर्णयोगेन रसभस्म

स्वर्णादष्टगुणं सूतं लौहपात्रे विनिसिपेत् ।
गंधकं च कलाभागं स्तोकं स्तोकं विनिक्षिपेत् ॥
विष्णुकान्ता देवदाली द्रवं दद्यात्पुनः पुनः ।
मृदुं च ज्वालयेद्वह्निं यावद्गंधकं जारणम् ॥
सूतभस्म तु जायेत सर्वरोगापहारकम् ।
वली पलितकं हन्ति विद्यात्पुष्टिकरं परम् ॥

(निषण्डुःकाकर, पारदसंहिता पृष्ठ ३१५)

सर्पविषयोगेन पारदभस्म

व्यालस्य गरले सूतं मर्दयेत्सप्तवासरम् ।
शम्भुनालकृते यंत्रे तन्मध्येतद्रसं क्षिपेत् ॥
वह्निं प्रज्वालयेद्गाढं वारिणा चोर्ध्वशीतलम् ।
याम द्वादशकं चैव सुविद्धो जायते रसः ॥

(रत्नराजमुन्दर, पारदसंहिता पृष्ठ ३१६)

कान्तलौहपुटे पारदभस्म

कुम्भीं समूलामुद्धृत्य गोमूत्रेण सुषेपयेत् ।
तद्द्रवैर्मर्दयेत्सूतं दिनैकं कान्त सम्पुटे ॥
लिप्त्वा नियामकादेया उर्ध्वचाधस्तदन्धयेत् ।
मृद्वग्निना दिनैकान्तु पचेच्चुल्लयां मृतो भवेत् ॥
गोघृतं गन्धकं सूतं पिष्ट्वा पिण्डीं प्रकल्पयेत् ॥
कुमारी दल मध्यस्थं कृत्वा सूत्रेण वेष्टयेत् ॥
तं कान्तसम्पुटे रुद्ध्वा त्रिभिर्लघुपुटैः पचेत् ।
ततो ध्माते भवेद्भस्म चान्ध मूषागतोरसः ॥
रसोनियामकैर्मर्द्यो हृदं याम चतुष्टयम् ।
द्विगुणैर्गन्धतैलैश्च पचेन्मृद्वग्निना शनैः ॥
यावत्खाटो भवेत्तावद्रोधयेत्लोहं संपुटे ।
हरीतकी जले पिष्ट्वा लोहकिट्टेन मूषिकाम् ॥
कृत्वा तन्मध्यतः क्षिप्त्वा संपुटे चान्धयेत्पुनः ।
तस्योर्ध्वं स्त्रावकाकारं हृत्वा नागं द्रुतं क्षिपेत् ॥
कठिनेन धमेत्तावद्यावन्नागो द्रुतो भवेत् ।
प्रधमेच्च पुनस्तावद्यावत्कठिनतां व्रजेत् ॥

एवं पुनः पुनर्धर्मातस्त्रियामैर्ध्रियते रसः ।

(रसरत्नाकर)

मूलीविषप्रयोगेण पारदभस्म ।

उन्मत्त विजयाकं वा कांजिकं सून धावने ।
हालाहलेन तुल्येन दरदोत्थं विमर्दयेत् ॥
नष्ट पिष्टं तु तज्ज्ञात्वा भावयेत्पद्मिनीदलेः ।
गोधूमराशौ संस्थाप्य मासमेकं ततः पुनः ॥
निष्कास्य क्षालयित्वा तमहिफेनेन मर्दयेत् ॥
कुर्याच्च पूर्ववत् पश्चाच्च वारं वा मर्दयेत् ॥
कमलस्य रसेनापि कृष्णान्मत्त रसेन च ।
हिंशुना गंध पाषाणसत्त्वेनाथ विमर्श च ॥
पण्मासान्तरतः स्थाप्यः सूर्यास्यादरे रसः ।
एवं वर्षेण निद्धः स्याद्रसराट् च स्वयं मतः ॥
दृश्यते चूर्णं संकाशो जीवनाख्यो रसोत्तमः ।
देवो गुणो न चेत्तेजोत्तमस्यापि न चेत्तयेत् ॥

(भाप्रकाश, पृष्ठ १४७)

गंधामृतसः

भस्म सूतं द्विधागन्धं क्षणं कन्याम्बुमर्दितम् ।
रुध्वा लघु पुटे पच्याल्लेहयेन्मधु सर्पिषा ॥
निष्क मात्रं जरामृत्युः हन्ति गन्धामृतो रसः ।
समूलं भृङ्गराजं तु ह्याया शुष्कं विचूर्णयेत् ॥
तत्समं त्रिफलाचूर्णं सर्वतुल्या सिताभवेत् ।
पलैकं भक्षयेच्चानु वर्षान्मृत्युजराग्रहः ॥

(रसेन्द्रचिन्तामणि, पृ० ६४)

विःजीवन कल्पः

रसभस्म गुडच्याश्च सत्वमेकत्र तद्द्वयम् ।
 क्रियते शाल्मलीसत्वे तद्द्वयं परिभाव्य च ॥
 पञ्चाशद्भावनास्तापे शाल्मली सत्वकस्य च ।
 टंकद्वयमिदंचूर्णं यदि गृह्णाति तत्कचित् ॥
 शाल्मली सत्वमनुच चतुस्तोलं पिवेद्दिने ।
 दिने प्रभात समयं तीक्ष्णाम्ल परिवर्जयेत् ॥
 दुग्धभक्ताशनः शान्तो भूमिशायी जितेन्द्रियः ।
 त्रिमासादूर्ध्वतः केशाः कालालिकुल सन्निभाः ॥
 अजरामरं शरीरं वयस्तम्भो महामतिः ।
 एवं कलशो विधातव्यो चिरंजीवितु मिच्छता ॥

(रससारपद्धति, पारदसंहिता, पृष्ठ ३३७)

योगवाही रसः ।

भागा रसस्य चत्वारो गन्धकश्चाष्टभागिकः ।
 सैन्धवस्य च भागे द्वौ श्वेता जयन्तिका द्रवैः ॥
 मर्दितं त्रिण्यहान्यस्य गोलकं कुरुशापयः ।
 तप्तमूपां जले क्षिप्त्वा गृह्णाणरसभस्मकम् ॥
 संस्कृत्य कंटकाद्यैश्च यथेष्टं विनियोजयेत् ।
 योगवाही रसोऽयं च प्रयोज्यः सर्व कर्मसु ॥

(रसपारिजात)

हेममुन्दर रसः ।

मृतसूतस्य पादांशं हेमभस्मः प्रकल्पयेत् ।
 क्षाराज्य मधुना मिश्रं मापैकं कांश्चपात्रके ॥
 लेहयेन्मास पट्कं वै जरामृत्युविनाशनः ।

वाकुची चूर्णकपैकं धात्रीफलरसप्लुतम् ॥
अनुपानं लिहेन्नित्यं सरसो हेमसुन्दरः ।

(रससारपद्धति, पारदसंहिता पृ० ३३७)

अमृतार्णव रसः ।

सूत भस्म चतुर्भागं लोहभस्म तथाष्टकम् ।
मेघ भस्म च षड्भागं शुद्धगन्धस्य पंचकम् ॥
भावयेत्त्रिफला काथैस्तत्सर्वं भृङ्गजद्रवैः ।
शिग्रुवह्नि कटुक्याथ सप्तधा भावयेत्पृथक् ॥
सर्वं तुल्या कणा योज्या गुडैर्मिश्रं पुरातनैः ।
निष्कमात्रं सदा खादेज्जरामृत्युं निहन्यलम् ॥
ब्रह्मायुः स्याच्चतुर्मासैः रसोऽयममृतार्णवः ।
तिलकोरंड पत्राणि गुडेन भक्षयेदनु ॥

(रससारपद्धति, पारदसंहिता पृष्ठ ३३७)

चतुर्मुख रसः ।

रसगन्धक लौहाभ्रं समं सूतांश्चि हेम च ।
सर्वान्खल्वतले श्लिप्त्वा कन्या स्वरसमर्दितम् ॥
एरंडपत्रैरावेष्ट्य धान्यराशौ दिनत्रयम् ॥
संस्थाप्य च तदुद्धृत्य संचूर्ण्य मत्तिसुन्दरम् ॥
तद्यथाग्निबले खादेत्त्रिफला मधु संयुतम् ।
एतद्रसायनवरं बली पलितनाशनम् ॥
क्षयमेकादशविधं कासं पंचविधं तथा ।
कुष्ठमष्टादशविधं पाण्डुरोगान्प्रमेहकान् ।
शूलं कासं च हिक्कां च मन्दाग्निं चाम्लपित्तकम् ।

ब्रह्मान्सर्वान्पक्षघातं विसर्पं विद्रधिं तथा ॥
 अपस्मारं ग्रहोन्मादान्सर्वांशींसि त्वगामयान् ।
 क्रमेण शीलितो हन्ति वृक्षाग्निद्राशनिर्यथा ॥
 पौष्टिकं बल्यमायुष्यं पुत्रप्रसवकारणम् ।
 चतुर्मुखेन देवेन कृष्णात्रयेण सूचितम् ॥

(रससार पद्धति, पारदसंहिता पृष्ठ ३३८)

त्रिनेत्र रसः

रस गन्धक ताम्राणि सिन्दुवार रसेर्दिनम् ।
 मर्दयेद्दातपे पश्चाद्बालुकायत्र मध्यगम् ॥
 रुध्वा मूषा गतं यामत्रयं तीव्राग्निना पचेत् ।
 तद् गुञ्जा सर्वं रोगेषु पर्या खण्डिकया पुनः ॥
 दातव्यो देह सिध्यर्थं पुष्टिं वीर्यं बलाय च ।

(रससार पद्धति, पारदसंहिता पृष्ठ ३३८)

दरदेश रसः

पंचपलं दरदं पलमेकं शुद्धबलिं मृदुवह्निं गतायाम् ।
 कज्जलिकां विरचय्य तु तालं मापमितं विनियोज्य च कूप्याम् ॥
 विपचेत्तसिकताभुदिनंदहनैस्तदनुस्यत एव हिमं च हरेत् ।
 दरदेश इति क्षयनाशकरो भवतीह रसः सकलामयजित् ॥

(शृङ्गयोगतरंगिणी, पारदसंहिता पृष्ठ ३३८)

हिङ्गुलेखरः

तुल्यांशं मर्दयेत् खल्वे पिप्पली हिङ्गुलं विपम् ।
 द्विगुञ्जं मधुना देयं वातज्वर विमुक्तये ॥

(रसेन्द्रसारसंग्रह, पृष्ठ ७२)

तकण्डवराणि:

जयपालगन्धं विषपारदं च तुल्यं कुमारीस्वरमेन पिष्टम् ।
अस्य द्विगुञ्जाहि सितोदकेन ख्यातां रसोऽयं तकण्डवराणि ॥
दातव्य एषोऽहनि पञ्चमे वा षष्ठेऽथवा सप्तमे एव वापि ।
जाते विरेके विजितज्वरः स्यात् पटोल मुद्गाम्बु निषेवणेन ।
(रसेन्द्रसारसंग्रह, पृष्ठ ७६)

वज्रकपाट रसः

पारदं गन्धकं चैवाहिकेन सह मोचकम् ।
त्रिकटुं त्रिफलाञ्चैव सममेकत्र कारयेत् ॥
भङ्ग भङ्ग द्रवैश्चैतत् भावयेच्च पुनः पुनः ।
रक्ति त्रयं ततश्चैव मधुना सह भक्षयेत् ॥
असाध्यां ग्रहणीं हन्ति रसो वज्रकपाटकः ।
(रसेन्द्रसारसंग्रह, पृष्ठ १२१)

पद्माशुत पर्वटी

अष्टौ गन्धक तालका रसदलं लौहं तद्वत् शुभम् ,
लौहाद्धाञ्च वराभक्तं सुविमलं ताम्रं तद्वत् द्विकम् ।
पात्रे लौहमये च मर्दनं विधौ चूणाकृतञ्चैकतः ,
द्वयौ बादरयक्षिनातिमुदुना पाकं विविध्या दत्ते ॥
रम्भाया लघु ढालयेत् पटुरियं पञ्चाशुना पपटो ,
ख्याता क्षौद्र घृतान्विता प्रतिदिनं गुञ्जाह्वयं पूजितः ।
लौहे मर्दनं योगतः सुविमलं भक्तक्रिया लौहवत् ,
गुञ्जाष्टावथवात्रिकं त्रिगुणितं सप्ताहमेव भजेत् ॥
(मेघअरजावली, पृष्ठ २१६)

महारसगन्धकम् ।

रस गन्धकयोर्ग्राह्यं कर्प मेकं सुशोधितम् ।
 ततः कज्जलिकां कृत्वा मृदुपाकेन शोधयेत् ।
 जाती फलं तथा कोपं लवङ्गारिष्टं पत्रके ।
 एतेषां कर्प मात्रेण सह चूर्णेन मर्दयेत् ।
 मुक्ता गृहे पुनः स्थाप्यं पुटपाकेन साधयेत् ॥
 गुञ्जाद्वय प्रमाणेन वटिकां कारयेद्बुधः ।
 एतत् प्रोक्तं कुमाराणां रक्षणाय मशौषधम् ॥
 अशोचं दीपनं चैव बलवर्णं प्रसादनम् ।
 दुर्वारं ग्रहणीरोगं जयेच्चैव प्रवाहिकाम् ॥
 सूतिकाख्यं जयेदेतदपि वैद्यविचर्जितम् ॥

(रसेन्द्रसारसंग्रह, पृष्ठ १२३)

पाण्डुसूदन रसः ।

रसं गन्धं मृतं ताम्रं जयपालञ्च गुग्गुलुम् ।
 समांशमाज्यसंयुक्तां गुडिकां कारयेद्भिषक् ॥
 एकैकां खादयेन्नित्यं पाण्डुशोथोपशान्तये ।
 शीतलञ्च जलं चाम्लं वर्जयेत् पाण्डुसूदने ॥

(रसेन्द्रसार संग्रह, पृष्ठ १६६)

रसेन्द्र गुडिका ।

कर्प शुद्ध रसेन्द्रस्य स्वरसेन जयार्द्रयोः ।
 शिलायां खल्वयेत्तावद्यावत् पिण्डं घनं ततः ॥
 जलकणा काक माची रसाभ्यां भावयेत्पुनः ।
 सौगन्धिकपलं भृङ्ग स्वरसेन विभावितम् ॥

चूर्णितं रससंयुक्तमजाक्षीरपलद्वये ।
खलितं घनपिण्डं तु गुडीं स्विन्नकलायवत् ॥
कृत्वादौ शिवमभ्यर्च्य द्विजातीन् परितोष्य च ।
जीर्णांनो भक्षयेदेकां क्षीरमांसरसाशनः ॥
सर्व्वरूपं क्षयं कासं रक्तपित्तमरोचकम् ।
अपि वैद्यशतैस्त्यक्तमम्लपित्तं नियच्छति ॥

(चक्रदत्त, पृष्ठ १७३)

राजमृगाङ्ग रसः ।

रसभस्म त्रयोभागा भागैकं हेमभस्मकम् ।
मृतताम्रस्य भागैकं शिला गन्धक तालकम् ॥
प्रतिभाग द्वयं शुद्धमेकीकृत्य विमर्दयेत् ।
चराटीं पूरयेत्तेन अजाक्षीरेण टङ्कणम् ॥
पिष्ट्वा तेन मुखं रुद्ध्वा मृद्भागडे तत् निधापयेत् ।
शुष्कं गजपुटे पाच्यं चूर्णयेत् स्वाङ्गशीतलम् ॥
रसोराजमृगाङ्गोऽयं चतुर्गुञ्जः क्षयापहः ।
दश पिप्पलिकं त्रौद्वैर्मरिचैकोनविंशतिम् ॥
सघृतैर्दापयेद् वैद्यो घातश्लेष्म भवे क्षये ।

(भैषज्यरत्नावली, पृ० २६२)

चिन्तामणि रसः ।

कर्पूरं रस सिन्दूरं तत्समं मृतमम्रकम् ।
तदङ्गं मृत लौहञ्च स्वर्णं शाणं क्षिपेद्बुधः ॥
कन्यारसेन सम्पिष्य गुञ्जामानां वटीञ्चरेत् ।
अनुपानादिकं दद्यात् बुद्ध्वा दोष बलाबलम् ॥
हन्ति पित्तात्मकं वायुं केवलं पित्त संयुतम् ।

हृल्लासमरुचिं दाहं वान्ति भ्रान्ति शिरोग्रहम् ॥
 प्रमेहं कर्णनादञ्च जड गद्गद मूकताम् ।
 बाधिर्यं गर्भिणीरोगमश्मरीं सूतिकामयम् ॥
 प्रदरं सोमरोगञ्च यक्ष्माणं ज्वरकासकम् ।
 बलवर्णाग्निदः सम्यक् कान्ति पुष्टि प्रदायकः ॥
 चिन्तामणि रसश्चायं चिन्तामणिरिवापरः ।

(रसेन्द्रसारसंग्रह, पृ० २१५)

विसृचिविध्वंस रसः

टङ्कणं माक्षिकं शुण्ठी पारदं गन्धकं विषम्
 गरलं समभागेन सर्वेषां दिगुलं समम् ॥
 मर्दयेज्जम्बीरं द्राघैर्वटी कार्या प्रयत्नतः ।
 श्वेतसर्पपतुल्या च मृतसञ्जीवनी तथा ॥
 विसृचीं नाशयत्याशु दध्यन्नं पथ्यमाचरेत् ।
 त्रिदोषोत्थमतीसारं सर्वोपद्रव संयुतम् ॥

(भैषज्यरत्नावली, पृ० ६८६)

स्वर्णसिन्दूर रसः ।

स्वर्णसिन्दूरमभ्रञ्च मौक्तिकं कर्प सञ्मितम् ।
 हेममाक्षिकं वैक्रान्तं बङ्गायांसि च पित्तलम् ॥
 शिलाजतु प्रवालाब्धिफेन गुग्गुलु गन्धकान् ।
 कोलमानेन संगृह्य भावयेद् बद्धिधारिणा ॥
 ततो गुञ्जाद्वयोन्मानां विधाय वटिकांभिषक् ॥
 देवदारु कषायेण प्रातः सायञ्च योजयेत् ॥
 स्वर्णसिन्दूरं संज्ञोऽयं रसेषु प्रवरो रसः ।

स्नायुजान्निखिलान् रोगान् हन्ति नास्त्यत्र संशयः ॥

(भैषज्यरत्नावली, पृ० ६७८)

रसराजेन्द्र रसः

हिङ्गुलोत्थं रसं गन्धं केशराजाम्बुशोधितम् ।
रसार्द्धं हेम तारश्च नागं हेमार्द्धकं तथा ॥
क्षिप्त्वा खल्लतले पश्चाद् वासा काथेन भावयेत् ।
काक माच्याश्चित्रकस्य निगुण्ड्याः कौटजस्य च ॥
स्थल पद्मस्योत्पलस्य सप्तकृत्यो द्वयैः पृथक् ।
ततो रक्तिमिता कुर्याद् वटीश्चण्डांशु शोषिताः ॥
अन्त्रजान् निखिलान् रोगान् सर्वे दापोद्भवास्तथा ।
हन्त्ययं रसराजेन्द्रो मृगराजो यथा मृगान् ॥

(भैषज्यरत्नावली, पृ० ६७९)

शकवल्लभो रसः

रस गन्धक लौहाभ्र रौप्य हेमानि माक्षिकम् ।
शाण मानेन संगृह्य तुगाक्षीरोश्च कार्ष्णिकम् ॥
पलप्रमाणं विजयाबीजश्चैकत्र मर्दयेत् ।
विजया वारिणापश्चान्माषमानां वटीं चरेत् ॥
एकैकां भक्षणीयिषा पेयश्चानुपयः पलम् ।
श्रीशकवल्लभोनाम रसो वाजीकरः परम् ॥
वीर्य्यस्तम्भ करोऽत्यर्थं प्रमदादपेनाशनः ।
गतोह्यप्सरसां शक्रो वाल्लभ्यं यत्प्रसादतः ॥

(भैषज्यरत्नावली, पृ० ६८०)

कामिनीविद्रावणो रसः

आकारकरभं शुठी लवङ्गं कुंकुमं कणाम् ।
जातीफलञ्च तत्कोषं चन्दनं कार्ष्णिकं पृथक् ॥
हिङ्गुलं गन्धकं शाखं फणिकेनं पलोन्मितम् ।
गुञ्जात्रयमितां कुर्यात् सम्मर्द्य वटिकां भिषक् ॥
पयसा परिपीतोऽयं शुक्रस्तम्भ करो रसः ।
विद्रावणः कामिनीनां वशीकरश्च एव च ।

(भैषज्यरत्नावली, पृ० ६२६)

बालरोगान्तक रसः

शाणं सूतस्य शुद्धस्य गन्धकस्य च तत्समम् ।
सुवर्णमात्रिकस्यापि चार्द्धभागं विनिःक्षिपेत् ॥
ततः कज्जलिकां कृत्वा लौहपात्रे दृढे नवे ।
केशराजस्य मृद्गस्य निगुण्ड्यः पत्रं सम्भवम् ॥
स्वरसं काकमाच्याश्च ग्रीष्मसुन्दरकस्य च ।
सूर्यावर्त्तकं शालिञ्च भैकपर्णी रसं तथा ॥
श्वेतापराजितायाश्च मूलं दद्याद्विचक्षणः ।
देयं रसाद्धं भागेन चूर्णं मरिचं सम्भवम् ॥
शुभे शिलामये पात्रे लौहं दण्डेन मर्दयेत् ।
शुष्कमातपसयोगाद् वटिकां कारयेद्भिषक् ॥
प्रमाणं सर्पपस्यैव बालानां विनियोजयेत् ।
हन्ति त्रिदोषकञ्चैव ज्वरमामं सुदारुणम् ॥
कासं पञ्चविधञ्चापि सर्वरोगं निहन्ति च ।
शिशूनां रोगनाशाय निर्मितोऽयं महारसः ॥

भैषज्यरत्नावली, पृ० ६१०)

गर्भ चिन्तामणि रसः

रसं तालं तथा लौहं प्रत्येकं कर्प मात्रकम् ।
 कर्षद्वयं तथा चाङ्गं कर्पूरं वङ्गतालकम् ॥
 जातीफलं तथा कोपं गोक्षुरञ्च शतावरी ।
 वलातिबलयोर्मूलं प्रत्येकं तोलकं शुभम् ॥
 वारिणा वटिका कार्या द्विगुञ्जाफलमानतः ।
 सन्निपातं निहन्त्याशु स्त्रीणाञ्चैव विशेषतः ॥
 गर्भिण्याज्वरदाहञ्च प्रदरं सूतिकामयम् ।

(भैषज्य रत्नावली पृष्ठ ४६२)

प्रदरान्तको रसः

शुद्ध सूतं तथा गन्धं शुद्धं बंगकं रूप्यकम् ।
 खर्परञ्च वराटञ्च शाणमानं पृथक् पृथक् ॥
 तोलकत्रितयं ग्राह्यं लौहचूर्णं क्षिपेत् सुधीः ।
 कन्यानीरेण संमर्द्य दिनमेकं भिषग्वरः ॥
 असाध्यं प्रदरं हन्ति भक्षणात् नात्र संशयः ।

(भैषज्य रत्नावली पृष्ठ ४६०)

अमृताङ्कुर वटी

अमृतं पारदं गन्धं लौहमम्रं शिलाजतु ।
 गुञ्जा मात्रां वटीं कुश्यात् मर्दयित्वामृताम्भसा ॥
 एषाऽमृताङ्कुरवटी पीता धात्र्याम्भसा सह ।
 क्षुद्ररोगानशेषांस्तु गदान् पित्तास्रकोपजान् ॥
 ज्वरं जीर्णं प्रमेहञ्च काश्यमग्निक्षयं तथा ।
 नाशयेज्जनयेत् पुष्टिं कान्तिं मेधां शुभां मतिम् ॥

(भैषज्य रत्नावली पृष्ठ ४७०)

मुखरोगहरो रसः

रसगन्धौ समौ ताभ्यां द्विगुणञ्च शिञ्जाजतु ।
 गोमूत्रेणविमर्द्याथ सप्तधार्कद्रवेण च ॥
 जाती निम्ब महाराष्ट्री रसैः सिध्यति पाकहा ।
 कणामधुयुता हन्ति मुखपाकं सुदारुणम् ।
 अष्ट गुञ्जा धृता वक्त्रे सद्यो हन्ति वटी गदान् ।
 महाराष्ट्र्याश्च कल्केन मुखञ्च प्रतिसारयेत् ॥
 धारणात् वदने चैषा वटी हन्ति मुखामयान् ।
 दन्तकाष्ठं स्नानमम्लं मत्स्यमानूपमामिषम् ॥
 दधि क्षीरं गुडं माषं रुक्षान्नं कठिनाशनम् ।
 अधोमुखेन शयनं गुर्वभिष्यन्दकारिच ।
 मुखरोगेषु सर्वेषु दिवानिद्रां विवर्जयेत् ।

(भैषज्य रत्नावली पृष्ठ ४४६)

महा कल्याण वटी

हेमाघ्नञ्च रसं गन्धमयो मौक्तिकमेव च ।
 धात्रीरसेन संमर्द्य गुञ्जामात्रांवटीं चरेत् ॥
 भक्षयेत् प्रातरुत्थाय तिलक्षोदमधुप्लुताम् ॥
 सिताक्षोद्रयुतां वापि नवनीतेन वा सह ॥
 अथवा पानजारोगा वातजाः कफपित्तजाः ।
 गदाः सर्वे विनश्यन्ति ध्रुवमस्य निषेवणात् ॥

(भैषज्य रत्नावली पृष्ठ ४१४)

चण्डभैरवः

मृतसूतार्कलौहञ्च तालं गन्धं मनः शिला ।
 रसाञ्जनञ्च तुल्यांशं गोमूत्रेणापि मर्दयेत् ॥

तं गोलं द्विगुणं गन्धं लोहपात्रे क्षणं पचेत् ॥
पञ्च गुञ्जामितं भक्ष्यमपस्मारहरं परम् ॥
हिङ्गु सौवर्चलं कुष्ठं गवां मूत्रेण सर्पिषा ।
कर्षमात्रं पिवेच्चानु रसेऽस्मिंश्चण्डभैरवे ॥

(भैषज्य रत्नावली पृ० ५१३)

भूताङ्कुशोरसः

सूतायस्तारताम्रञ्च मुक्ता चापि समं समम् ।
सूतपादं तथा वज्रं तालं गन्धं मनःशिला ॥
तुत्थं तिलाञ्जनं शुद्धमब्धिकेन रसाञ्जनम् ।
पञ्चानां लवणानाञ्च प्रतिभागं रसोन्मितम् ॥
भृङ्गराजचित्रावज्रीदुग्धेनापि विमर्दयेत् ।
दिनान्ते पिण्डितं कृत्वा रुद्ध्वा गजपुटे पचेत् ॥
भूताङ्कुशोरसोनाम नित्यं गुञ्जाद्वयं लिहेत् ।
आर्द्रकस्य रसेनापि चोन्मादे भूतजिद्रसः ।
माहिषञ्च घृतं क्षीरं गुर्वन्नमपि भोजयेत् ॥
अभ्यङ्गः कटुतैलेन हितो भूताङ्कुशे रसे ।

(भैषज्य रत्नावली पृ० ५१०)

शिरः शुलाद्रिवज्ररसः

पलं रसं पलं गन्धं पलं लौहं पलं त्रिवृत् ।
गुग्गुलोः पलचत्वारि तद्वर्द्धं त्रिफलारजः ॥
कुष्ठं मधु कणा शुण्ठी गोक्षुरं कृमिनाशनम् ॥
दशमूलञ्च प्रत्येकं तोलकं वज्रशोधितम् ।
काथेनदशमूल्याश्च यथास्वं परिभावयेत् ।
घृतयोगात् प्रकर्तव्या माषिका वटिका शुभा ॥

रसगुडिका

रसस्तु पादिकस्तुल्या विडङ्गमरिचाभ्रकाः ।
गङ्गापालङ्कजरसे खलजयित्वा पुनः पुनः ॥
रक्तिमात्रा गुदाशोघ्नी बन्धेरत्यर्थ दीपनी ।
कण्टकिफलान्तर्मुपलक्षारो गोरोचनाजलम् ॥
लेप मात्रेण विस्त्राव्य रसान् हन्ति गुदांकुरान् ।
भावितं रजनीचूर्णैः स्नुहीक्षीरे पुनः पुनः ॥
बन्धनात् सुदृढं सूत्रं क्षिप्रत्यशौ न संशयः ।
वेगावरोधं स्त्री पृष्ठयानमुत्कटकासनम् ॥
यथास्वं दोषलञ्चान्नमर्शसः परिवर्जयेत् ।

(भैषज्य रत्नावली पृ० ४७२)

नित्योदितरसः

मृतसूतार्क लौहाभ्रं विषं गन्धं समं समम् ।
सर्वं तुल्यांशं भल्लातकफलमेकत्र चूर्णयेत् ॥
द्रवैः शूराणां माणोत्थैर्भाविं खल्ले दिनत्रयम् ।
माषमात्रं लिह्येदाजै रसैश्चार्शांसि नाशयेत् ॥
रसो नित्योदितो नाम गुदोद्भव कुलान्तकः ।

(भैषज्य रत्नावली पृष्ठ ४७२)

अमृतांकुर लौहम्

हुताशमुखसंगुद्धं पलमेकं रसस्य व ।
पलं लौहस्य ताम्रस्य पलं भल्लातकस्य च ॥
गन्धकस्य पलञ्चैकमध्रकस्य च गुग्गुलोः ।
हरीतकीविभीतक्योश्चूर्णं कर्षद्वयं द्वयोः ॥
अष्टमाषाधिकं तत्र धात्र्याः पाणितलानि षट् ।
घृतं द्व्यष्ट गुणं लौहात् द्वात्रिंशत् त्रिफलाजलम् ।

एवं कृत्वा पचेत् पात्रे लौहे च विधि पूर्वकम् ।
 पाकमेतस्य जानीयात् कुशलो लौहपाकवत् ॥
 विबुधः प्रातरुथाय गुरुदेव द्विजाञ्चकः ।
 रक्तिकादि क्रमेणैव घृतं भ्रामरमर्दितम् ॥
 लौहे लौहस्य दण्डेन कुर्यादेतद्रसायनम् ।
 अनुपानञ्च कुर्वीत नारिकेलोदकं पयः ॥
 सर्वं कुष्ठहरं श्रेष्ठं बलीपलितनाशनम् ।
 पाण्डु मेहामवातघ्नं वातरक्तज्वरहम् ॥
 कृमि शोथाश्मरीशूल दुर्नाम वातरोगनुत् ।
 क्षयं हन्ति महाश्वासमत्यर्थं शुक्रवर्द्धनम् ॥
 अग्निसन्दीपनं हृद्यं कान्त्यायुर्बल वृद्धिकृत् ।
 विवर्ज्यशाकाम्लमपि स्त्रियञ्च, सेव्योरसो जाङ्गलजाविकानाम् ।
 शाल्योदनं षष्टिकमाज्यमुद्गक्षौद्रं गुडक्षीरमिहक्रियायाम् ॥
 शालिञ्च गुर्वादिवृहत्करञ्च शिलाजतुक्षौद्रयुतं पयश्च ।
 सर्पिर्यतान् भक्षयतो विहङ्गान् प्रपूर्यते दुर्बलदेहधातुः ॥
 कृष्णस्य पक्षस्य सिते तु पक्षे त्रिपञ्चरात्रेण यथा शशाङ्कः ।

(भै० १० पृ० ४६०)

श्वेतारिः

शुद्धसूतं समं गन्धं त्रिफलां भृङ्गवागुजीम् ।
 भल्लातकं तिल कृष्णं निम्बबीजं समं समम् ॥
 मर्दयेद् भृङ्गजद्रवैः शोण्यं पेप्यं पुनः पुनः ।
 इत्थं कुर्युस्त्रिसप्ताहं रसः श्वेतारिकोभवेत् ॥
 मध्वाज्यमपि मात्रं तु खादेद् श्वेतं विनाशयेत् ।

(भै० १० पृ० ४६०)

वातरक्तान्तकोरसः

पारदं गन्धकं लौहं घनं तालं मनःशिला ।
 शिलाजतु पुरं शुद्धं समभागं विचूर्णयेत् ॥
 विडङ्गं त्रिफला व्योषमब्धिफेनं पुनर्नवा ।
 देवदारुचित्रकश्च दार्वी श्वेतापराजिता ॥
 चूर्णमेषां पृथक् तुल्यं सर्वमेकत्र भावयेत् ।
 त्रिफला भृङ्गराजस्य रसेनैव त्रिधा त्रिधा ॥
 सम्भाव्य भक्षयेत् पश्चान्माष मात्रं दिने दिने ।
 कृत्वानुपानं निम्बस्य पत्रं पुष्पं त्वचं समम् ॥
 शाण मात्रं घृतैः कुर्यात् सर्ववात विकारनुत् ।
 वातरक्त महाघोरं गम्भीरं सर्वजं जयेत् ॥
 सर्वोपद्रवसंयुक्तं साध्यासाध्यं निहन्त्ययम् ।

(भै० १० पृ० ४४३)

रसाभ्रगुग्गुलुः

कर्षं द्वयं पारदस्य लौहं गन्धश्च तत्समम् ।
 लौहगन्धसमंचाभ्रं गुग्गुलं कुडवद्वयम् ॥
 अमृताया रसप्रस्थे रसप्रस्थे फलत्रिके ।
 सान्द्रीभूते रसे तस्मिन् गर्भे दत्त्वाविचक्षणः ॥
 त्रिकटु त्रिफलादन्ती गुडूची चेन्द्रवारुणी ।
 विडङ्गनागपुष्पश्च त्रिवृता च सुचूर्णितम् ॥
 प्रत्येकं कर्षमादाय सर्वमेकत्र कारयेत् ।
 भक्षयेत् कोलमात्रन्तु द्विज्जा काथानुपानतः ॥
 वातरक्तं महाघोरं स्फुटितं गलितं जयेत् ।
 अष्टादश विधं कुष्ठं कृमिरोगाशमरीं तथा ।

भगन्दरं गुदम्रं शं श्वेतकुण्डं सकामलाम् ।
 अपर्ची गण्डमालाञ्च पामां कण्डूं विचर्चिकाम् ॥
 चर्मकीलं महादद्रुनाशयेन्नात्र संशयः ।
 वातरक्त विनाशाय धन्वन्तरि कृतः पुरा ॥
 रसाम्न गुग्गुलुः ख्यातो वातरक्तेऽमृतोपमः ॥

(भैषज्य रत्नावली पृ० ४४३)

श्लीपद गजकेसरी

व्योषामृतायमानीं च सूतोऽग्निर्गन्धकं शिला ।
 सौभाग्यं जयपालञ्च चूर्णं मेकत्र कारयेत् ॥
 भृङ्ग गोक्षुरं जम्बीरार्द्रकं तोयैर्विमर्दयेत् ।
 अस्य रक्ति द्वयं खादेदुष्णतोयानुपानतः ॥
 श्लीपदं दुस्तरं हन्ति प्लीहानं हन्ति सेवितः ।

(भैषज्य रत्नावली पृ० ४२६)

भक्तोत्तरीयम्

अध्रकं गन्धकञ्चैव पिप्पलीलवणानि च ।
 त्रिक्षारं त्रिफला चैव हरितालं मनःशिला ।
 पारदञ्चाजमोदाच यवानी शतपुष्पिका ।
 जीरकं हिङ्गु मेथी च चित्रकं चविका बचा ॥
 दन्ती च त्रिवृता मुस्तं शिला च मृत लोहकम् ।
 अञ्जनं निम्बबीजानि पटोलं वृद्धदारकम् ॥
 सर्वाणि चाक्षमात्राणि श्लक्ष्णचूर्णानि कारयेत् ।
 शतं कानक बीजानि शोधितानि प्रयोजयेत् ॥
 पतदग्निविवृद्धयर्थमृषिभिः परिकीर्तितम् ।
 श्लीपदान्यन्त्रवृद्धिञ्च वातवृद्धिञ्च दाहणम् ॥

अरुचि चामवातश्च शूलं वातसमुद्भवम् ।
गुल्मश्चैवोदरव्याधीनाशयस्याशु तत्तत्तणात् ॥
भक्तोत्तरमिदं चूर्णं भक्षिष्वभ्यां निर्मितं पुरा ।

(भैषज्य रत्नावली, पृ० ४२१)

पुष्पधन्वा

हरजभुजगलौहश्चाभ्रं बद्धं चूर्णं—
कनकविजययष्टीशालमलीनागवल्ल्मी ।
घृतमधुसितदुग्धं पुष्पधन्वा रसेन्द्रो ।
रमयति शतरामा दीर्घमायुर्बलञ्च ॥

(कनकादिकाथेन भावयित्वा घृतादिभिर्योजयेत्)

पूर्णचन्द्रः

सूताभ्रलौहंसशिलाजतुस्याद् विडङ्गताप्येमधुना घृतेन ।
पिष्टं प्रशस्तं खलु पूर्णचन्द्रो माषोऽस्य पुष्ट्यैर्भवति प्रशस्तः ॥

कामाग्नि सन्दीपनः

पलपरिमित शुद्धं सूतकं गन्धतुल्यम् ।
दरदकुनटि तुल्यं भावितं शृङ्गवेरैः ॥
तदनु कनकबीजैर्भावितं सप्तवारान् ।
तदनु सितजयन्त्या शृङ्गराजैश्च सर्वम् ॥
पुटितमुपरि शुष्कं काच कूप्यान्तु क्षिप्तं ।
षडहमुपरि पाच्यं बालुकायन्त्रकैश्च ॥

पलाजातीन्द्रचन्द्रैर्मृगमदसहितैः सौषणैः साश्वगन्धैः ।
स्तुल्यैर्बल्लप्रमाणं प्रतिदिनमशितं प्रातरुत्थाय शुद्धयैः ॥

ओजः पुष्टिविबद्धं नोऽतिबलकृतसर्वेन्द्रियानन्दनः ।

सर्वातङ्कहरो रसायन परः कामाग्नि सन्दीपनः ॥

(भै० र० पृ० ४१७)

मकरध्वजरसः

सिन्दूरं हेमलौहञ्च देवपुष्पं सचन्द्रकम् ।

जातीफलं मृगमदञ्चैकत्र परिमर्दयेत् ॥

पर्णाम्भसा ततः कुर्याद्वटिकां बल्लसम्भिताम् ।

सेवितशङ्कागपयसा प्रमेहांस्तत् कृतान् गदान् ॥

क्लैब्यं धातुक्षयं कासं जीर्णञ्च विषमं ज्वरम् ।

रसोऽयं क्षपयेत्तूर्णं मकरध्वज संज्ञकः ।

(प्रमेहपिडिकायामत्युपयोगी)

(भै० र० पृ० ४०७)

कामधेनुरसः

सिन्दूरमभ्रं नागञ्च कर्पूरं हेममाक्षिकम् ।

खर्परं रजतञ्चापि मर्दयेत्कमलाम्भसा ॥

ततो गुञ्जामिताः कृत्वा वटीशङ्काया प्रशोषिताः ।

एकैकां दापयेद्दासां कसेरुस्वरसेन च ।

प्रमेहान् विंशतिं हन्ति शुक्रमेहं विशेषतः ॥

ज्वरं जीर्णञ्च यक्ष्माणं कामधेनवाभिधोरसः ॥

(भै० र०)

कन्दर्परसः

रसं गन्धं प्रवालञ्च काञ्चनं गिरिमृत्तिका ।

वैक्रान्तं रजतं शङ्खं मौक्तिकञ्च समं समम् ॥

न्यग्रोधस्य कषायेण भावयित्वा च सप्तधा ।

बल्लोन्मानां वटीं कृत्वा त्रिफलाकषाय वारिणा ॥

सुरप्रियस्यार्जुनस्य क्वाथेनाभाम्भसा पिवेत् ।
औपसर्गिक मेहस्य* शान्त्यर्थं विनियोजयेत् ॥

(भै० र० पृ० ४०४)

हेमनाथ रसः

सूतं गन्धं हेम ताप्यं प्रत्येकं कोल समितम् ।
अयश्चन्द्रं प्रवालञ्च बङ्गश्चार्द्धं विनिक्षिपेत् ॥
फणिफेनस्यतोयेन कदलीकुसुमेन च ।
उदुम्बररसेनापि सप्तधा परिमर्दयेत् ॥
वल्लमात्रां वर्टीं खादेद्यथा व्याध्यनुपानतः ।
प्रमेहान् विंशतिर्हन्ति बहुमूत्रं सुदारुणम् ॥
सोमरोगं क्षयश्चैव श्वासं कासमुरःक्षतम् ।
हेमनाथ रसो नाम्ना कृष्णात्रेयेण भापितः ॥

(भै० र० पृ० ४८१)

वसन्त कुसुमाकरः

वैक्रान्तस्य च भागैकं द्विभागं हेमभस्मनः ।
अध्रकस्य च भागौ द्वौ मुक्ता विद्रुमयोस्तथा ॥
बङ्गभस्म त्रिभागं स्यात् रसस्य भस्मनस्तथा ।
चत्वारोऽस्य च भागाश्च सर्वमेकत्र मर्दितम् ॥
जम्बीराद्भिश्च गोदुग्धैरुशिरोद्भववारिभिः ।
वृषद्वैरिश्रुनीरैः सप्तधा भावयेत्पृथक् ॥
भावितो रसराजः स्यात् वसन्तकुसुमाकरः ।
वल्लोऽस्य मधुना लीढः सोमरोगं क्षयं नयेत् ॥

* पूयमेहः गनोरिया इति प्रसिद्धः ।

मूत्रातिसारं मेहांश्च मूत्राघाताश्मरीरुजम् ।
 वृष्णां दाहं तालुशोषं नाशयेन्नात्र संशयः ॥
 बल्यः पुष्टिकरो वृष्यः सर्वरोगनिवर्हणः ।
 हन्त्यजीर्णं ज्वरं श्वासं क्षयरोगं कृशाङ्गताम्
 नातः परतरं किञ्चिद्रसायनमिहेष्यते ।

(रसभस्मः तदभावे मूर्च्छित रसः । मूत्रातिसारे सोम रोगे च रसायनम् ॥)

(भै० १० पृ० ४०१)

इन्द्रवटी

मृतं सूतं मृतं बंगमर्जुनस्य त्वचा सिता ।
 तुल्याशं मर्दयेत् खल्ले शाल्मल्या मूलजैर्द्रवैः ॥
 दिनान्ते वटिका कार्या माषमात्रा प्रमेहहा ।
 पेया चेन्द्रवटी नाम्ना मधुमेहप्रशान्तये ॥
 तृटिं शाल्मलिमूलानां मधुना चानुपाययेत् ।

(भै० १० पृ० ३६७)

तारकेश्वर रसः

मृतं सूतं मृतं लौहं मृतं बङ्गाध्रकं समम् ।
 मर्दयेत् मधुना चाहो रसोऽयं तारकेश्वरः ॥
 माषमात्रं लिहेत् क्षौद्रैर्बहुमूत्रापनुत्तये ।
 औदुम्बरं पक्वफलं चूर्णितं मधुना लिहेत् ॥

(भै० १० पृ० २६२)

रसशेखरः

पारदञ्चाहिफेनञ्च द्विर्द्वादशरक्तिकम् ।
 अयः पात्रे निम्बकाष्ठैर्मर्दयेत्तुलसीद्रवैः ॥
 तस्मिन् समूर्द्धिते दद्याद्हरदं रससम्मितम् ।

मर्दयेच्च तुलस्यैव ततश्चैतानि दापयेत् ॥
जातीकोषफले चैव पारसीय यवानिकाम् ।
आकारकरभश्चैव द्वात्रिंशद्रक्तिकाम्प्रति ॥
मर्दयेत्तुलसीतोयैरेतेषां द्विगुणं शुभम् ।
दद्यात् खदिरसत्वं च बटिका चणक प्रभा ॥
सायं द्वे द्वे प्रयोज्ये च लवणाम्लञ्च वर्जयेत् ।
गलत् कुष्ठं तथास्फोटान् दुष्टान् गर्दभिकामपि ॥
ये स्युर्वर्णानृणामन्ये उपदंशपुरःसराः ।
तान्सर्वान् नाशयत्याशु सिद्धोऽयं रसशेखरः ॥

(भै० १० पृ० ३८४)

रस गुग्गुलुः

ग्राह्यः पातनयन्त्रेण शुद्धश्चन्द्रसमो रसः ।
रक्तिकाशतमेतस्य शर्करा त्रिगुणा भवेत् ॥
ततश्चतुर्गुणो ग्राह्यो गुग्गुलुर्महिषाक्षकः ।
घृतं रससमं दद्यात् मर्दयेच्च प्रयत्नतः ॥
विंशतिवटिकाः कार्यास्तिस्रस्तिस्रो दिनत्रयम् ।
एकादशदिनैरन्या देया एकादशैव ताः ॥
सप्ताहद्वयमेवञ्च कारयेद्विषजां वरः ।
लवणं वर्जयेत् पथ्ये पादाद्धाशनमिष्यते ॥
दिनद्वये व्यतीते तु पादोनं पथ्यमाचरेत् ।
मसूरसूपं सगुडं व्यञ्जनं चाथकल्पयेत् ॥
पुनर्नवा पटोलानि तिक्तपत्री च गोक्षुरम् ।
पुटपत्रीं कोकिलाक्षं शाकार्थं घृतभर्जितम् ॥
शर्करा लवणस्थाने वेशवारे धनीयकम् ॥

लवङ्गाजाजीहिङ्गूनि धान्यकं जीरकाणिच ।
 पाकार्ये संप्रदातव्यं संस्कारार्थं भिषग्वरैः ॥
 भैरवस्य रसस्यान्याः क्रियाश्चात्र प्रयोजयेत्
 रस गुग्गुलुरेवं हि सर्वान् जित्वामयानयम् ॥
 कुष्ठोपदंशनामानं व्रणं वातादिसंयुतम् ।
 कामदेव प्रतीकाशश्चिरजीवीभवेन्नरः ॥

(भैषज्य रत्नावली पृ० ३८२)

पाषाणभिन्नः

शुद्धसूतं द्विधा गन्धं शिलाजतु रसः पत्रम् ।
 श्वेतपुनर्नवावासारसैः श्वेतापराजितैः ॥
 प्रतिदिनं त्र्यहं मर्द्य शुष्कं तद्भाण्डसंपुटे ।
 स्वेदयेद्दोलिका यन्त्रे संशुष्कं तं विचूर्णयेत् ॥
 रसः पाषाणभिन्नः स्याद् द्विगुञ्जश्चाश्वरीं हरेत् ॥
 भूधात्रीफलविशालां पिष्ट्वा दुग्धेन पाययेत् ॥
 कुलत्थकायसंपीतमनुपानं सुखावहम् ।

(भैषज्य रत्नावली पृ० ३७६)

तारकेश्वरः

शुद्धसूतं समं गन्धं लौहं बङ्गं मृताम्रकम् ।
 दुर्गलभां वक्षारं बीजं गोक्षुरजं शिवाम् ॥
 समांशं भावयेत्सर्वं कुष्माण्डफलधारिणा ।
 पञ्चतृणभवकाथे रसे गोक्षुरजे तथा ॥
 सन्निप्य वटिका कार्या द्विगुञ्जाफलमानतः ।
 मधुनामर्द्यं विलिहेन्मूत्रकृच्छ्रं विनाशनम् ॥
 उडुम्बरफलं पक्वं चूर्णितं कर्षमात्रकम् ।

लेहयेत् मधुना सार्द्धमनुपानं सुखावहम् ॥
अजाक्षीरं भवेत् पथ्यं शर्करेश्वरसो हितः ।
अमृता नागरं धात्री वाजिगन्धा त्रिकण्टकम् ॥
प्रपिवेद्वातरोगार्तः सशूलो मूत्र कृच्छ्रवान् ॥

(भैषज्य रत्नावली पृ० ३७४)

आमवातेश्वरोरसः

शुद्धगन्धपलार्द्धञ्च मृताप्राञ्चतत्समम् ।
ताप्राद्धं पारदं देयं रसतुल्यं मृतायसम् ॥
सर्वं पञ्चाङ्गुलदले ढालयेन्निपुणो भिषक् ।
सञ्चूर्य पञ्चकोलस्य सर्वं काथे विमर्दयेत् ॥
रौद्रे विंशतिवारांश्च गुडूचीनां रसैर्दशः ।
भृष्टटङ्कणचूर्णेन तुल्येन सह मेलयेत् ॥
टङ्कणार्द्धं विडं देयं मरिचं विडतुल्यकम् ।
तिन्तडी बीजचूर्णान्तु सूततुल्यञ्च दन्तिका ॥
त्रिकटु त्रिफला चैव लवङ्गञ्चार्द्धभागिकम् ।
आमवातेश्वरो नाम विष्णुना परिकीर्तितः ॥
महाग्निकारकोद्दोष आमवातकुलान्तकः ।
स्थूलानां कुरुते काश्यं कृशानां स्थौल्यकारकम् ॥
अनुपानवशेनैव सर्वरोग कुलान्तकः ।
साध्यासाध्यं निहन्त्याशु चामवातं सुदारुणम् ॥
गुरुवृष्यान्नपानानि पयो मांसरसा हिताः ।
भोजयेत् कण्ठपर्यन्तं चतुर्गुञ्जमितं रसम् ॥
कट्वम्ल तिक्तरहितं पिबेत्तदनु पानकम् ।
शीघ्रं जीर्यति तत्सर्वं जायते दीपनः परः ॥
अनेन सदृशो नास्ति बद्धिः संदीपनो रसः ।

गुल्माशोथग्रहणीरोग शोथपाण्डूदरापहः ॥

(भै० २० पृ० ३६८)

विजयभैरवतैलम् ।

रसगन्धशिलातालं सर्वं कुर्यात् समांशकम् ।
चूर्णयित्वा ततः सूक्ष्ममारनालेन पेषयेत् ॥
तैलकल्केन संलिप्य सूक्ष्मवस्त्रं ततः परम् ।
तैलाद्धं कारयेद्वर्त्तिमूर्ध्वं भागे च दीपयेत् ॥
वर्त्यधः स्थापिते पात्रे तैलं पततिशोभनम् ।
लेपयेत्तेन गात्राणि भक्षणाय च दापयेत् ॥
नाशयेत् सत तैलं तद्वातरोगानशेषतः ।
बाहुकम्पं शिरःकम्पं जङ्घाकम्पं ततः परम् ॥
पेकाङ्गश्च तथा वातं हन्ति लेपान्न संशयः ॥

(भै० २० पृ० ३७२)

चिन्तामणिवनुर्मुखः

विशुद्धं रससिंदूरं तदूर्ध्वं लौहमग्नरुम् ।
तदूर्ध्वं कनकं खल्वे कन्या स्वरसं मर्दितम् ॥
परण्ड पत्रैरावेष्ट्य धान्यराशौ निधापयेत् ।
त्रिदिनान्ते समुद्धृत्य सर्वरोगेषु योजयेत् ॥
पतद्रसायनवरं त्रिफला मधुसंयुतम् ।
तद्यथाग्निबलं खादेद्वली पलितं नाशनम् ॥
अपस्मारं महोन्मादं रोगान्वातसमुद्भवान् ।
क्रमेण शीलितं हन्ति वृक्षमिन्द्राशनिर्यथा ॥

(भै० २० पृष्ठ ३५७)

योगेन्द्रसः

विशुद्धं रससिन्दूरं तदूर्ध्वं शुद्धहाटकम् ।

तत्समं कान्तलौहञ्च तत्समश्चाभ्रमेव च ॥
 विशुद्धं मौक्तिकञ्चैव वङ्गञ्च तत्समं मतम् ।
 कुमारिकारसैर्भाव्यं धान्यराशौ दिनत्रयम् ॥
 ततो रक्तिद्वयमितां बटीं कुर्याद्विचक्षणः ।
 योगवाही रसो ह्येष सर्वरोग कुलान्तकः ॥
 वातपित्तभवान् रोगान् प्रमेहान् बहुमूत्रताम् ।
 मूत्राघातमपस्मारं भगन्दर गुदामयम् ॥
 उन्माद मूच्छां यक्ष्माणं पक्षाघातं हतेन्द्रियम् ।
 शूलाम्लपित्तकं हन्ति भास्करस्तिमिरं यथा ॥
 त्रिफलारसयोगेन शुभया सितयापि वा ।
 भक्षयित्वा भवेद्रोगी कामरूपी सुदर्शनः ॥
 रात्रौ सेव्यं गवां क्षीरं कृशानाञ्च विशेषतः ।
 योगेन्द्राख्यो रसो नाम्ना कृष्णात्रेय विनिर्मितः ।

(भै० र० पृ० ३५७)

रसराजरसः

पल्लवं शुद्धसूतस्य व्यामसत्त्वञ्च कार्ष्णिकम् ।
 तदर्द्धं काञ्चनं देयं कन्यारसविमर्दितम् ॥
 लौहं रुप्यं मृतं वङ्गं वाजिगन्धां लवङ्गकम् ।
 जातीकांषं तथा क्षीरकाकोलीञ्च तदर्द्धतः ॥
 काकमाक्षीरसैः पिष्ट्वा पञ्चगुञ्जामितावटी ।
 क्षीरञ्च शर्करातोयमनुपानं प्रकल्पयेत् ॥
 पक्षाघातेऽर्दितेवाते हनुस्तम्भेऽपतन्त्रके ।
 धनुस्तम्भेऽपताने च वाधिष्ये मस्तकघ्नमे ॥
 सर्ववातविकारेषु रसराजः प्रकीर्तितः ।
 बल्यो वृष्यश्च भोग्यश्च वाजीकरण उत्तमः ॥

(भै० र० पृ० ३५७)

शङ्कर वटी

रसस्य भागाश्चत्वारो बलेरष्टौ तथा मताः ।
 त्रयो लौहस्य नागस्य द्वावित्येकत्र मर्दयेत् ॥
 भावयेत् काकमाच्याश्च चित्रकस्यार्द्रकस्य च ।
 स्वरसेन जयन्त्याश्च वासाया विल्वपार्थयोः ॥
 ततो गुञ्जाद्वयमिता विदध्याद्वटिका भिषक् ।
 एकैकां दापयेदासामीपदुष्णेन वारिणा ॥
 जयेदियं कुप्फुसजान् रोगान् हृदयसम्भवान् ।
 जीर्णज्वरं तथा घोरं प्रमेहानपि विंशतिम् ॥
 कासश्वासा मवातांश्च ग्रहणीमपि दुस्तराम् ।
 वटी श्रीशङ्करप्रोक्ता बल पुष्टि विवर्द्धिनी ॥

(भै० १० पृ० ३२४)

हृदयार्णवरसः

सूतार्कगन्धकं काथे वराया मर्दयेद्दिनम् ।
 काकमाच्या वटीं कृत्वा चणमात्राञ्च भक्षयेत् ॥
 हृदयार्णवनामायं हृद्रोग दलनो रसः ।

(भै० १० पृ० ३२४)

श्वासनिन्तामणिः

द्विकर्षं लौहचूर्णास्य तदर्द्धं गन्धमध्वकम् ।
 तदर्द्धं पारदं ताप्यं पारदार्द्धेन मौक्तिकम् ॥
 शाणमानं हेमचूर्णं सर्वं संमिश्रं यत्नतः ।
 कण्टकारी रसेश्चापि शृङ्गवेररसेस्तथा ॥
 क्लागीक्षीरेण मधुकैः क्रमेण मतिमान् भिषक् ।
 गुञ्जाचतुष्टयञ्चास्य विभीतक समन्वितम् ॥
 भक्षयेत् श्वासकासात्तौ राजयश्मनिपीडितः ।

(भै० १० पृ० ३१५)

श्वासभैरवोरसः

रसं गन्धं विषं व्योषं मरिचञ्चल्य चित्रकम् ।
आर्द्रकस्य रसेनैव संमर्द्य वटिकां ततः ॥
गुञ्जाद्वयप्रमाणेन खादेत्तोयानुरानतः ।
स्वरभेदं निहन्त्याशु श्वासं कासं सुदुर्जयम् ॥

(व्योषस्थाने टङ्कनमिति कौमुद्याम् । अत्र पि मरिचस्य भागद्वयम्)

(भैषज्य रत्नावली पृ० ३१५)

शुद्धाराधम्

शुद्धं कृष्णाभ्रचूर्णं द्विपलपरिमितं शाणमानं यदन्यत् ,
कर्पूरं जातिकोषं सज्जलभिभकणा तेज पत्रं लवङ्गम् ।
मांसी तालीशचोचे गजकुसुमगदं धातकी चेति तुल्यम् ,
पथ्याधात्री विभीतं त्रिकटु रथ पृथक् त्वद्धं शाणं द्विशणम् ॥
प्लाजातीफलाख्यं क्षितितल विधिना शुद्ध्यग्न्याश्मकोलम् ,
कोलाद्धं पारदस्य प्रतिपद्विहितं पिष्टमेकत्र मिश्रम् ।
पानीयेनैव कार्याः परिणतचणकस्त्रिचतुल्याश्च वट्यः ,
प्रातः खाद्याश्चतस्रस्तदनु च कियच्छुद्धवेरंसपणम् ॥
पानीयं पीतमन्ते ध्रुवपपरहति क्षिप्रमादो विकारान् ,
कोष्ठे दुष्टाग्निजातं ज्वरमुदररुजो राजयश्मन्तयञ्च ।
कासंश्वासं सशोथं नयनपरिभ्रं मेहमंशविकारान् ,
वृद्धिं शूलाम्लपित्तं तृषणपि महतीं गुल्मजालंविशालम् ॥
पाण्डुत्वं रक्तपित्तं गरगरल गदान् पीनसान् श्लोहरोग्मन् ,
हन्त्यादामानिलोत्थान् कफपवनकृतान् पित्त रोगानशेषान् ।
बल्यो वृष्यश्च भोग्यस्तरुणतरकरः सर्वरोगं प्रशस्तः ,

पथ्यं मांसैश्च यूषैर्घृतपरिललितैर्गव्यदुग्धैश्च भूयः ॥
 भोज्यं मिष्टं यथेष्टं ललितललनया दीयमानं मुदा च,
 शृङ्गाराभ्रेण कामायुवतिजनशता भोगयोगादनुष्टः ।
 वर्ज्यं शाकाम्लमादौ दिनकतिचिदथ स्वेच्छया भोज्यमन्यद्,
 दीर्घायुः काममूर्तिर्गतवन्तिपलितो मानवोऽस्य प्रसादात् ॥

(भ० १० गु० ३०७)

बृहदसेन्द्रगुटिका

कर्पं शुद्धरसेन्द्रस्य गन्धकस्याभकस्य च ।
 लोहचूर्णस्य ताम्रस्य ताजकस्य विषस्य च ।
 मनः शिलायाः क्षाराणां बीजं धुस्तूरकस्य च ॥
 मरिचस्यापि सर्वेषां समं चूर्णं प्रकल्पयेत् ।
 जयन्ती चित्रकं माणघण्टकर्णोल्लमण्डुकी ॥
 शकाशनं भृङ्गराजं केशराजार्द्रकं तथा ।
 सिन्धुवारस्य च रसः कर्पमात्रेर्विभावयेत् ॥
 कलायपरिमाणन्तु गुटिकां कारयेद्विषक् ।
 हन्ति पञ्चविधं कासं श्वासश्चैव सुदारुणम् ॥
 कफवातामयानुग्रानानाहं विड्विवद्धताम् ।
 अग्निमान्द्यारुचिं शोथमुदरं पाण्डुकामलाम् ॥
 रसायनी च वृष्या च बलवर्णप्रसादनी ।
 मधुरं घृह्णं वृष्यं मत्स्यं मांसञ्च जाङ्गलम् ॥
 घृतपक्वं सदाभक्ष्यं रुतं तीक्ष्णं विवर्जयेत् ।

(आर्द्रकरसेनभक्षणम्)

(भ० १० गु० ३०४)

चन्द्रामृत रसः

त्रिकटु त्रिफला चव्यं धान्यजीरकसैन्धवम् ।

प्रत्येकं तोलकं ग्राह्यं क्षीरेण गोलयेत् ।
 रसगन्धकलौहानां प्रत्येकं कार्पिकं शुभम् ।
 टङ्कनस्य पलं दत्वा मरिचस्य पलाद्धकम् ॥
 नव गुञ्जा प्रमाणेन वटिकां कारयेद्विषकम् ।
 प्रातः काले शुचिर्भूत्वा चिन्तयित्वा मृतेश्वरीम् ॥
 एकैकां वटिकां खादेद्रक्तोत्पलरसप्लुता ।
 नीलोत्पलरसेनापि कुलत्थस्य रसेन वा ।
 पिप्पल्या मधुना वापि शृङ्गवेररसेन वा ॥
 हन्ति पञ्चविधं कासं वातपित्तसमुद्भवम् ॥
 वातश्लेष्मोद्भवं दोषं पित्तश्लेष्मोद्भवं तथा ॥
 वातिकं पैत्तिकञ्चैव नानादोष समुद्भवम् ।
 रक्तनिष्ठीवनञ्चापि ज्वरं श्वाससमन्वितम् ।
 तृष्णां दाहं भ्रमं हन्ति जठराग्निप्रदीपनी ।
 बलवर्णकरी हृष्टेषा म्लीहगुल्मोदरापहा ॥
 आनाह कृमि हृत्पांडु जीर्णज्वरविनाशनी ।
 इयं चन्द्रामृतानाम् चन्द्रनाथेन निर्मिता ॥
 वासा गुडुची भार्गवी मुस्तकं कण्टकारिका ।
 सेवनान्ते प्रकर्तव्या गुटिका दीर्घध्यायिणी ॥

(गैषय्यरत्नावली ३०१)

चूडामणि रसः

द्विनिष्कं रससिन्दुरं तदूर्ध्वं हेमं जारितम् ।
 निष्कद्वयं गन्धकञ्च मर्दयेच्चित्रकद्रवैः ॥
 कुमारिकाद्रवैर्यामं द्वागदुग्धैस्त्रियामकम् ।
 मुक्ताविद्रुमवङ्गानां निष्कं निष्कं विमिश्रयेत् ॥

गोलकं पूरयेद्भाण्डे रुद्ध्वा गज पुटे पचेत् ।
 स्वाङ्गशीतं विचूर्णार्थाय भक्षयेद्रक्तिका द्वयम् ॥
 मधुना क्षयरोगघ्नं वात पित्त समुद्भवम् ।
 अजाघृतञ्चानुपिवेत् शर्करामधु संयुतम् ॥
 (भै० १० पृ० २६१)

महामृगाङ्गोरसः

निरुत्थभस्म सौवर्गं द्विगुणं भस्म सूतकम् ।
 त्रिगुणं भस्म मुक्तोत्थं शुक्रपुच्छं चतुर्गुणम् ॥
 मृतताप्यञ्च पञ्चांशं दद्यादत्र भिषक् सुधीः ।
 सप्तभागं प्रवालञ्च रस तुल्यञ्च टङ्कणम् ॥
 सर्वमेकत्र सम्मद्य त्रिदिनं निम्बवारिणा ।
 तत्ततो गोलकं कृत्वा शोषयित्वा खरातपे ।
 लवणैः पात्रमापूर्य तन्मध्ये गोलकं क्षिपेत् ।
 तन्मुखञ्च मृदा रुद्ध्वा पचेद्याम चतुष्टयम् ॥
 आकृष्य चूर्णितं शुद्धं प्रदेयं पूर्वं भागिकम् ।
 वज्रञ्च तदभावेतु वैक्रान्तं तत् समांशकम् ॥

महामृगाङ्कः खलु सिद्ध एष श्री नन्दिनाथप्रकटीकृतोऽयम् ।
 बल्लोऽस्य सेव्यो मरिचाज्ययुक्तः सेव्योऽथवा पिप्पलिकासमेतः ॥

अत्रोपचाराः कर्तव्याः सर्वे क्षयगदोदिताः ।
 बल्यं घृतञ्च भोक्तव्यं त्याज्यं शूले विरोधि यत् ।
 यक्ष्माणां बहुरूपिणं ज्वरगणं गुल्मं तथा त्रिद्विधिं ।
 मन्दाग्निं स्वरभेदं कासमरुचिं वान्तिञ्च मूर्ध्ना भ्रमम् ॥
 अष्टावेवं महागदान् गदगणान् पाण्ड्वामयं कामलां ।
 पित्ताग्निं समलग्रहान् बहुविधानन्यास्तथा नाशयेत् ॥

(भै० १० पृ० २६३)

राजमृगाङ्गोरसः

रसभस्मत्रयोभागा भागैकं हेमभस्मकम् ।
मृतताम्रस्य भागैकं शिला तालक गन्धकम् ॥
प्रतिभागद्वयं तत्राप्येकीकृत्य निधापयेत् ।
वराटी पूरयेत्तेन चाजाक्षीरेण दङ्कणम् ॥
पिष्ट्वा तेन मुखं रुद्ध्वा मृद्भाण्डेन निरोधयेत् ।
शुष्कं गजपुटे पाच्यं चूर्णयेत्स्वाङ्गं शीतलम् ॥
रसोराज मृगाङ्गोऽयं चतुर्गुणं क्षयापहम् ।
दशपिप्पलिकैः क्षौद्रमरिचैकोनविंशतिः ॥
सघृतैर्दापयेद्वातपित्तश्लेष्मोद्भवे क्षये ।

(भै० २० पृ० २६२)

मृगाङ्गोरसः

स्याद्रसेन समं हेम मौक्तिकं द्विगुणं ततः ।
गन्धकञ्च समं तेन रसपादन्तु दङ्कणम् ॥
सर्वं तद्गोलकं कृत्वा काञ्चिकेनावशोषयेत् ।
भाण्डे लवणं पूर्णंऽथ पचेद्यामचतुष्टयम् ॥
मृगाङ्ग संज्ञः सङ्ग्रेयो रोगराज निकृन्तनः ।
गुञ्जा चतुष्टयंचास्य मरिचैर्भक्षयेद्भिषक् ॥
पिप्पली दशकैर्वाथ मधुना लेहयेद्बुधः ।
पथ्यं सुलघुमांसेन प्रायशोऽस्य प्रयोजयेत् ॥
दध्याज्यं गव्यतक्रं वा मांसमाजं प्रयोजयेत् ।
व्यञ्जनैर्घृतपक्वैश्च नातिक्षारैरङ्गिगुभिः ॥
वृन्ताकं तैलविल्वादि कारवेल्लं च वर्जयेत् ।
स्त्रियं परिहरेद्दूरे कोपञ्चापि परित्यजेत् ॥

(भै० २० पृ० २६२)

रसराजेन्द्रः

हिङ्गुलोत्थं रसं गन्धं केशराजाम्बुशोधितम् ।
 रसाद्धं हेम तारश्च नागं हेमार्द्धकं तथा ॥
 क्षिप्त्वा खल्लतले पश्चाद्वासाकाथेन भावयेत् ।
 काकमाच्याश्चित्रकस्य निर्गुण्ड्याः कुटजस्य च ॥
 स्थलपद्मस्योत्पलस्य सप्तकृत्यो द्वैः पृथक् ।
 ततो रक्तिमिताः कुर्याद्द्वितीयं शोधिताः ॥
 अन्त्रजान् निखिलान् रोगान् सर्वं दोषान्द्वांस्तथा ।
 हन्त्ययं रसराजेन्द्रो मृगराजो यथा मृगान् ॥

(भै० १० पृ० : २२)

महोदधिरसः

रसं गन्धं तथाहेम वज्रविद्रुममौक्तिकम् ।
 गृहीत्वा समभागेन मर्दयेत् त्रिफलाम्बुना ॥
 ततो रक्तिमिताः कुर्यात् वटीशृङ्गाया प्रशोषिताः ।
 एकैकां दापयेदासां यथा दोषानुपानतः ॥
 रुद्धान्त्वमन्त्रवृद्धिं तथान्यानन्त्रजान् गदान् ।
 बातपित्तकफोत्थांश्च सर्वान् हन्ति महोदधिः ॥

(भै० १० पृ० २२२)

नाराचरसः

सूतगन्धक तुल्याशं मरिचं सूततुल्यकम् ।
 टङ्कणं पिप्पली शुण्ठी द्वौ द्वौ भागौ विमिश्रयेत् ॥
 सर्वतुल्यानि बीजानि दन्तीनां निस्तुपाणि च ।
 स्नुहीक्षीरेण संयुक्तं मर्दयेद्विषसत्रयम् ॥
 नारिकेलोदरे स्थाप्यं महागाढाग्निना ततः ।
 तत् कलकं पाचयेत् क्षिप्रं खल्लयित्वा निधापयेत् ॥

तन्मध्य नाभिलेपेन राजयोग्यं विरेचनम् ।
वटिका लेपमात्रेण दशवारं विरेचयेत् ॥
तद्गन्ध घ्राणमात्रेण विरेको जायते ध्रुवम् ।
त्रिवृत् कृष्णाहरीतकयो द्विचतुः पञ्चभागिकाः ॥
गुड़िका गुड़तुल्या सा विड्विवन्धगदापहा ।

(भै० १० पृ० २७६)

पञ्चाननरसः

पारदांशकतुल्यञ्च गन्धं जैपाल पिप्पली ।
आरग्वधफलान्मज्जा वज्रीक्षीरेण भावयेत् ॥
धात्रीरसयुतं खादेद्रक्तगुल्मप्रशान्तये ।
चिञ्चादलरसञ्चानु पथ्यं दध्योदनंहितम् ॥
वल्लूरं मूलकं मत्स्यान् शुष्कशाकानि वैदलम् ।
न खादेच्चातुकं गुल्मी मधुराणि फलानि च ॥

(भै० १० पृ० २७८)

बृहद्रुगुल्मकालानलो रसः

अम्रं लौहं रसं गन्धं टङ्कणं कटुकं वचाम् ।
द्विक्षारं सैन्धवं कुष्ठं ज्यूपणं सुरदारु च ॥
पत्रमेलां त्वचं नागं खादिरंसारमेव च ।
गृहीत्वा समभागेन श्लक्ष्णं चूर्णं प्रकल्पयेत् ॥
जयन्ती चित्रकोन्मत्त केशराजं दलं तथा ।
निष्पीड्य स्वरसं नीत्वा भावयेत् कुशलो मिषक् ॥
चतुर्गुञ्जा प्रमाणेन वटिकाः कारयेत्ततः ।
उत्थाय भक्षयेत् प्रातरनुपानं जलं पयः ॥
गुल्मं पञ्चविधं हन्ति यकृत् प्लीहोदराणि च ।
कामलां पाण्डुरोगञ्च शोथञ्चैव सुदारुणम् ॥

हलीमकं रक्तपित्तं मन्दाग्निमरुचिं तथा ।
ग्रहणीमार्दवं काश्यं जीर्णं च विषमज्वरम् ॥

(भै० १० पृ० २७६)

चतुःसमलौहम्

अभ्रं गन्धं रसं लौहं प्रत्येकं संस्कृतं पलम् ।
सर्वमेतत् समाहृत्य यन्नतः कुशलो भिषक् ॥
आज्यपलद्वादशकं दुग्धे वत्सरसंख्यकं ।
पक्तवात्तिपेत्तत्र चूर्णं सुपूतं घनवाससा ॥
विडङ्गत्रिफलाबहि त्रिकटूनां तथैव च ।
पिष्ट्वाप्लोन्नितानेतान् तथा संमिश्रिताश्रयेत् ॥
तत्तपिष्टं शुभे भाण्डे स्थापयेत्तु विचक्षणः ।
आत्मनः शोभने चाहि पूजयित्वा रविं गुरुम् ॥
घृतेन मधुना मथ्य भक्षयेन्माषकावधि ।
कमेण वर्द्धयेत् तच्च समाहित मनः सदा ॥
अनुपानञ्च दुग्धेन नारिकेलोदकेन वा ।
जीर्णाग्ने हितशाल्यञ्च मुद्गमांसरसादिभिः ॥
रसायनाविरुद्धानि चान्यान्यपि च कारयेत् ।
हृच्छूलं पार्श्वशूलञ्चाप्यामवातं कटिग्रहम् ॥
गुल्मशूलं शिरःशूलं यकृत् प्लीहानमेव च ।
आग्निमान्द्यं क्षयं कुष्ठं कासं श्वासं विचर्चिकाम् ॥
अश्मरीं मूत्रकृच्छ्रञ्च योगेनानेन साधयेत् ।

(भै० १० पृ० २६७)

शुलगजकेशरी

शुद्धसूतं द्विधा गन्धं शर्मकं मर्दयेत् दृढम् ।

द्वयोस्तुल्यं शुद्धताम्र सम्पुटं तं निरोधयेत् ॥
 ऊर्ध्वाधो लवणं दत्वा मृद्भाण्डे स्थापयेद्बुधः ।
 रुद्ध्वा गजपुटं दत्वा स्वाङ्गशीतं समुद्धरेत् ॥
 संपुटं चूर्णयेत् शृङ्गं पर्णखण्डे द्विगुञ्जकम् ।
 भक्षयेत् सर्वशूलार्तो हिंशुशुठी सजीरकम् ॥
 वचा मरिचजं चूर्णं कर्पमुष्णजलैः पिवेत् ।
 असाध्यं साधयेच्छूलं श्रीशूलगजकेसरी ॥

(भै० २० पृ० २६५)

रसमण्डूरम्

कुडवं पथ्याचूर्णं द्विपलं गन्धाश्मलौहकिट्टश्च ।
 शुद्धरसस्यार्द्धं पलं भृङ्गस्य रसं सकेशराजस्य ॥
 प्रस्थोन्मितश्च दत्वा पात्रे लौहेऽथ दण्डसंवृष्टम् ।
 शुष्कं घृतमधुयुक्तं मृदितं स्थाप्यश्च भाजने स्निग्धे ॥
 उपयुक्तमेतदचिराद्बिहन्ति कफपित्तजान् रोगान् ।
 शूलं तथाम्लपित्तं ग्रहणीञ्च कामलामुग्राम् ॥

(भै० २० पृ० २६६)

• अम्लपित्तान्तकलौहः

मृतसूताकलौहानां तुल्यां पथ्यां विमर्दयेत् ।
 माषमात्रं लिहेत् क्षौद्रैरम्लपित्तप्रशान्तये ॥

(भै० २० पृ० २४७)

पद्मानन गुटिका

शुद्धसूतपलार्द्धञ्च तत्समं शुद्धगन्धकम् ।
 तयोस्तुल्यं ताम्रपत्रं लिप्त्वा मूषान्तरे क्षिपेत् ॥
 आच्छाद्य पञ्चलवणैर्लिप्त्वा गजपुटे पचेत् ।
 सिद्धं ताम्रं समादाय पलमेकं विचूर्णयेत् ॥

पारदस्य पलञ्चैकं गन्धकस्य पलं तथा ।
 पुटदग्धस्य लौहस्य गगनस्य पलं पलम् ॥
 यमानी शतपुष्पाच त्रिकटु त्रिफलापि च ।
 त्रिवृता चविका दन्ती शिखरी जीरकद्वयम् ॥
 एतेषां पलिर्हर्भागैर्वण्टकर्णकमानकम् ।
 ग्रन्थिकं चित्रकञ्चैव कुलिशानां पलार्द्धकम् ॥
 आर्द्रकस्वरसैः विष्ट्रा गुटिकां माषकोन्मिताम् ।
 पञ्चाननवटी ख्याता सर्वरोगविनाशिनी ॥
 अम्लपित्त महाव्याधि नाशनी च रसायनी ।
 महाग्निकारिका चैषा परिणाम व्यथापहा ॥
 शोथ पाण्ड्वामयानाह प्लीहगुल्मोदरापहा ।
 गुरुवृष्यान्नपानानि पयो मांसरसाहिताः ॥

(मे० १० पृ० २४७)

क्षुधावती गुटिका

रसायोगन्धकाभ्राणि व्यूपरुणं त्रिफला वचा ।
 यमानी शतपुष्पाच चविका जीरकद्वयम् ॥
 प्रत्येकं पलमेषान्तु घटाटकणं पुनर्नवा ।
 माणकं ग्रन्थिकञ्चन्द्र केशराज सुदर्शनी ॥
 दण्डात्पला त्रिवृद्दन्ती जामातृ रक्त चन्दनम् ।
 भृङ्गापामार्गं कुलका मण्डूकञ्च पलार्द्धकम् ॥
 आर्द्रकस्पर्सेनाथ गुटिकांसंप्रकल्पयेत् ।
 बादरास्थि समाञ्चैकां भक्षयित्वा पिवेदनु ॥
 वारिभक्तजलञ्चैव प्रातस्तथाय मानवः ।
 वटी क्षुधावती नाम सर्वाजीर्णविनाशिनी ॥
 अग्निञ्च कुरुते दीप्तं भस्मकञ्च नियच्छति ।

अम्लपित्तञ्च शूलञ्च परिणामकृतञ्च यत् ॥
तत्सर्वं शमयत्याशु भास्करस्तिमिरं यथा ।
मधुरं वर्जयेदत्र विशेषात् क्षीरशर्करे ॥

(मे० १० पृ० २४६)

कृमिघातिनी गुड़िका

रसगन्धोजमोदानां कृमिघ्नब्रह्मबीजयोः ।
एकद्वित्रिचतुःपञ्च तिन्दोर्बीजस्य षट्क्रमात् ॥
संचूर्ण्य मधुना सर्वं गुड़िकां कृमिघातिनीम् ।
खादन् पिपासुस्तोयञ्च मुस्तानां कृमिशान्तये ॥
आगुपणीं कपायं वा प्रपिवेत् शर्करान्वितम् ।

(भैषज्यरत्नावली २३६)

कृमिकाष्ठानलोरसः

विशुद्धं पारदं गन्धं वङ्गतालं वराटकम् ।
मनःशिला कृष्णकाचं सोमराजी विडङ्गकम् ॥
दन्ती बीजञ्च जपालं शिला टङ्गुण चित्रकम् ।
कर्पमात्रन्तु प्रत्येकं बज्जीक्षीरेण मर्दयेत् ॥
कलायसदृशीं कृत्वा वटिकां भक्षयेत् ततः ।
किमि काष्ठानलो नाम रसोऽयं परिनिर्मितः ॥
श्लेष्मिके श्लेष्मिपित्ते च श्लेष्मवाते च शस्यते ।

(रसेन्द्रसारसंग्रहे १६३)

कर्पूररसः

हिङ्गुलमहिफेनञ्च मुस्तकेन्द्रयवं तथा ।
जातीफलञ्च कपूरं सर्वं समर्घयन्ततः ॥
जलेन वटिका कार्या द्विगुञ्जा परिमाणतः ।

ज्वरतीसारिणे चैव तथातीसाररोगिणे ॥
ग्रहणीपट् प्रकारे च रक्तातीसार उलवणे ।

(अत्र केचित् टङ्कणमण्येकभागमिच्छन्ति)

(भा० १० सू० २३१)

आनन्दभैरवो रसः

दरदं मरिचं टङ्कममृतं मागधीसमम् ।
श्लक्ष्णं पिष्टुं गुञ्जकं रसमानन्दभैरवम् ।
लेहयेत् मधुना चानु कुटजस्य फलत्वचोः ।
चूर्णितं कर्पमात्रन्तु त्रिदांपोत्थाति सारजित् ॥
दध्यक्षं दापयेत् पथ्यं दध्याज्यं तक्रमेव वा ।
पिपासायां जले देयं विजया च हितानिशि ॥

(मेघदूतकवली सू. २३०)

जातीफल रसः ।

पारदाम्नकसिदूरं गन्धं जातीफलं समम् ।
कुटजस्य फलञ्चैव धूतवीजानि टङ्कनम् ।
व्योषं मुस्ताभया चैव चूतवीजं तथैव च ।
विल्वकं सर्जवीजञ्चदाडिमौवल्कीरकम् ॥
एतानि समभानि निःक्षिपेत् खल्ल मध्यतः ।
विजयास्वरसेनैव मर्दयेत् श्लक्ष्णचूर्णितम् ॥
गुञ्जाफलप्रमाणान्तु वटिकां कारयेद्विषकं ।
एकांकुटजमूलत्वक् कपायेण प्रयोजयत् ।
आमातिसारं हरति कुरुतेव त्रिदापनम् ।
मधुना विल्वशुण्ठेन रक्तग्रहणिकां जयेत् ॥

शुण्ठी धान्यक धौमेन चातिसार निहन्त्यम्बौ ।

जातीफलरसोह्येय ग्रहणी गदगारकः ।

(मे० १०, पृ०. २३०)

हिरण्यगर्भपोडलीरसः ।

एकांशो रसरजस्य ग्राह्यो ह्यौ हाटकस्थच ।

मुक्ताफलस्य चत्वारो भागाः षड् दधिनिस्त्रिणात् ॥

अंशं बलेर्वराट्याश्च टङ्कनो रसपादिकः ।

पक्व निम्बुकतांयन सर्वमेकत्र मदयेत् ॥

मूषामध्ये न्यसेत् कलकं तस्य वक्तुं निर्वाधयेत् ।

गर्भेऽरति प्रमाणेन पुटंतिशद्वनोपलेः ॥

स्वाङ्गशीतलतां ज्ञान्वा रसं मूषादराधयेत् ॥

ततः खल्लतादरे मधे सुधाकष ममुद्धरेत् ॥

एतस्यामृतरूपस्य दद्याद्गुञ्जा चतुष्टयम् ।

धृतमाध्वीकसंयुक्तमेकानविंशद्वयम् ॥

मन्दाग्नौ रोगसङ्गं च ग्रहण्यां विषमज्वरं ।

गुदाङ्कुरे महाशूले पानमे श्वासकामयोः ॥

अतिसारे ग्रहण्याश्च श्वयथी पागडुके गदे ।

सर्वेषु कोष्ठरोगेषु यकृत् प्रीहादिकेषु च ॥

वात पित्त कफान्येषु द्वन्द्वजेषु त्रिजेषु च ।

दद्यात् सर्वेषु रोगेषु श्रेष्ठमेतद्रसायनम् ॥

(मे० १० पृ० २२१)

विजय पर्पटी, तन्त्रान्तरीका ।

रसं वज्रं हेमतारं मौक्तिकं ताम्रमस्रकम् ।

सर्वतुल्येन गन्धेन कुर्याद्विजयपर्पटीम् ॥

दुर्वारां ग्रहणीं हन्ति दुःसाध्यां बहुवार्षिकीम् ॥

आमशलमतीसारं चिरोत्थमतिदारुणम् ।
 प्रवाहिकां षडशीसि यक्ष्माणं सपरिग्रहम् ।
 शोथं च कामलां पांडुं ग्रीहगुल्म जलोदरम् ।
 अष्टादशविधं कुष्ठं प्रमेहान् विषमज्वरान् ॥
 चतुर्विधमजीर्णञ्च मन्दाग्नित्वमरोचकम् ।
 जीर्णोऽपि पर्पटीं कुर्वन् वपुषा निर्मलः सुधीः ॥
 जीवेद्वर्षशतं श्रामान् बलीपलितवर्जितः ।
 प्रातः करोति सततं नियतं द्विगुञ्जं ,
 यस्तां स विन्दति तुलां कुसुमायुधस्थ ।
 आयुश्च दीर्घमनघं वपुषः स्थिरत्वं ,
 हार्नि बलीपलितयोरतुलं बलञ्च ॥
 जराव्याधिसमाकीर्णं विश्वं दृष्ट्वा पुरा हरः ।
 चकार पर्पटीमेतां यथा नारायणः सुधाम् ॥

(भै० १० प्र० २२०)

विजय पर्पटी

गन्धकं क्षुद्रितं कृत्वा भाव्यं भृङ्गरसेन तु ।
 सप्तधा वा त्रिधा वापिपश्चाच्छुष्कं विचूर्णयेत् ॥
 चूर्णयित्वायसे पात्रे कृत्वा बद्धिगतं सुधाः ॥
 द्रुतं भृङ्गरसे क्षिप्तं तत उद्धृत्य शोषयेत् ।
 तञ्च गन्धं पलञ्चैकं गन्धाद् शुद्धपारदम् ॥
 सूताद् भस्म रौप्यञ्च तदद् स्वर्णभस्मकम् ।
 तदद् मृतवैक्रान्तं मौक्तिकञ्च विनिक्षिपेत् ॥
 एकत्रिकृत्य ततः सर्वं कुर्यात् पर्पटिकां शुभाम् ।
 लौहपात्रं समरसं मर्दितं कज्जलीकृतम् ॥
 बवराङ्गारबहिस्थे लौहपात्रे द्रवीकृते

मयूरचन्द्रिकाकारं लिङ्गं वा यदि दृश्यते ।
 मृदौ न सम्यग्भङ्गः स्यात् मध्ये भङ्गश्च कृष्यवत् ।
 खरे लघुर्भवेद्भङ्गो रुक्मः सूक्ष्मोऽरुणश्चक्रविः ।
 मृदु मध्यौ तथा खाद्यौ खरस्त्याज्यो विषोपमः ।
 जराव्याधिं शताक्षीणं विश्वं दृष्ट्वा पुरा हरः ।
 चकार पर्पटीमेतां यथा नारायणोऽमृतम् ॥
 आदौ शङ्करमभ्यर्च्य द्विजातीन् प्रणिपत्यच ।
 प्रभाते भक्षयं देनां प्राक् रक्तिव्यं सम्मिताम् ॥
 रक्तिकादिकमात् वृद्धिर्मेक्ष्या नैव दशोपरि ।
 आरोग्यदर्शनं यावत्तावत् हासस्ततः परम् ॥
 अजीर्णं भोजनं नैव पथ्यकालं व्यतिक्रमः ।
 घृतसैन्धवधान्याकहिङ्गुजीरकं नागरैः ॥
 शस्यते व्यञ्जनं सिद्धं पित्ते स्वाद्वम्लं माक्षिकम् ।
 कृष्णामत्स्येन दुग्धेन मांसेन जाङ्गलेन च ॥
 जाङ्गलेषु शशच्छागौ मत्स्ये रोहितं मद्गुरौ ।
 पटोलपत्रञ्च तथा कृष्णवार्ताकुं जालिका ॥
 सुस्विन्नं पूगैस्ताम्बूलैर्लाभे कर्पूरसंयुतैः ।
 श्लुधाकाले व्यतिक्रान्ते यदि वायुः प्रकुप्यति ॥
 क्षिञ्चिन्नीति शिरःशूले विरेके वमयौ तथा ।
 तृष्णायाञ्चाधिके पित्ते नारिकेलाम्बु निर्मयम् ॥
 नारिकेलं पयः पेयं द्विर्मक्ष्यं क्षीरमेव च ।
 स्वप्ने शुक्रच्युतौ चैव चम्पकं कदलीदलम् ॥
 वर्ज्यं निम्बादिकं शाकं शाकाम्लं काञ्जिकं सुराम् ।
 कदलीफलपत्राङ्गि त्रपुषालाबुकर्कटी ॥
 कूष्माण्डं कारवेल्लञ्च व्यायामं जागरं निशि ।

न पश्येत् न स्पृशेद् गच्छेत् स्त्रियं जीवितुमिच्छति ॥

यद्यौषधे स्त्रियं गच्छेत् कर्त्तव्या तु प्रतिक्रिया ।

दुर्वाराग्रहणीं हन्ति दुःसाध्यां बहुवार्षिकीम् ॥

आमशूलमतीसारं सामञ्चैव सुदारुणम् ।

अतिसारं षडृशांसि यक्ष्माणं सपरिग्रहम् ॥

शोथञ्च कामलां पाण्डुं प्लीहानञ्च जलोदरम् ।

पक्तिशूलं चाम्लपित्तं प्रमेहान् विषमज्वरान् ॥

वातपित्तकफोत्थांश्च ज्वरान् हन्ति सुदारुणान् ।

जीर्णोऽपि पर्पटीं कुर्वन् वपुषा निर्मलः सुधीः ॥

जीवेद्वर्षशतं श्रीमान् बलीपलित वर्जितः ।

(अतिदृष्टफलाद्येषा पर्पटी)

(भै० २० पृ० २१८)

पञ्चामृतपर्पटी ।

अष्टौ गन्धकतोलका रसदलं लौहं तद्वर्जं शुभम् ।

लौहार्द्रञ्च वराम्नकं सुविमलं ताम्रं तथाम्राजिकम् ॥

पात्रे लौहमये च मर्दनविधौ चूर्णीकृतञ्चैकतो ।

द्व्यां बादरबहिनातिमृदुना पाकं विदित्वा दले ॥

रम्भाया लघु ढालयेत् पटुरियं पञ्चामृता पर्पटी ।

ख्याता चौरघृतान्विता प्रतिदिनं गुञ्जाद्वयं वृद्धितः ॥

लौहे मर्दनयोगतः सुविमलं भक्ष्यक्रिया लौहवत् ।

गुञ्जाष्टावथवा त्रिकं त्रिगुणितं सप्ताहमेवं भजेत् ॥

नानावर्णग्रहण्यामरुचिसमुदये दुष्ट दुर्नामकादौ ।

द्व्यां दीर्घातिसारे ज्वरभवकलिते रक्तपित्ते क्षयेऽपि ॥

घृष्ट्याणां वृष्यराज्ञी बलिपलितहरा नेत्ररोगैकहन्त्री ।

तुन्दं दीप्तस्थिराग्निं पुनरपि नवकं रोगिदेहं करोति ॥

(रसदलं गन्धकार्द्वमित्यर्थः, दीर्घातिसारे चिरोत्थितातिसारे) (भै० २० पृ० २१८)

स्वर्णपर्पटी

रसोत्तमं पलं शुद्धं हेमतोलक संयुतम् ।
 शिलायां मर्दयेत्तावत् यावदेकत्वमागतम् ॥
 गन्धकस्य पलञ्चेकमयः पात्रे ततो दृढे ।
 मर्दयेद्दृढपाणिभ्यां यावत्कज्जलतां व्रजेत् ॥
 ततः परं विधानज्ञः पर्पटीं कारयेत् सुधीः ।
 रक्तिकादि क्रमेणैव योजयेदनुपानतः ॥
 ग्रहणीं विविधां हन्ति शूलमष्टविधं तथा ।
 सर्वज्वरापहन्त्री च नास्नेयं स्वर्णपर्पटी ॥
 (अत्र हेम्नोऽष्टभागित्वमुपलक्षणमिति प्रामाणिकाः)

(भै० १० पृ० २१८)

लौहपर्पटी

समौ गन्धरसौ कृत्वा कज्जलीकृत्य यत्नतः ।
 शुद्ध लौहस्य चूर्णन्तु रस तुल्यं प्रदापयेत् ॥
 एकीकृत्य ततो यत्नात् लौहपात्रे प्रमर्दितम् ।
 घृतप्रलिप्तदर्व्यान्तु स्वेदयेन्मृदुनाग्निना ॥
 द्रवीभूतं समाहृत्य ढालयेत् कदलीदले ।
 चूर्णीकृत्य सुखार्थाय पथ्यभुग्भिः प्रसेव्यते ॥
 शीतोदकानुपानं वा काथं वा धान्यजीरयोः ।
 लौहेनपर्पटी ह्येषा भक्ष्या लोकस्य सिद्धिदा ॥
 रक्तिकैकां समारभ्य वर्द्धयेद्रक्तिकां क्रमात् ।
 सप्ताहं वा द्वयं वापि यावदारोग्यदर्शनम् ॥

सूतिकाञ्च ज्वरञ्चैव ग्रहणीमतिदुस्तराम् ।
 आमशूलातिसाराञ्च पाण्डुरोगं सकामलम् ॥
 प्लीहानमग्निमान्द्यञ्च भस्मकञ्च तथैव च ।
 आमवातमुदावर्त्तं कुष्ठान्यष्टादशैवतु ॥
 एवमार्दीस्तथा रोगान्गराणि विविधानि च ।
 हन्त्यनेन प्रयोगेण वपुष्मान् निर्मलः सुखी ।
 जीवेद्वर्षशतं पूर्णं बलीपलितवर्जितः ॥
 भोजनं रक्तशालानां त्यक्त्वा शाकं विदाहि च ।
 आमवात प्रकोपञ्च चिन्तनं मथुनं तथा ॥
 प्रातरुत्थाय संसेव्या विधिनायुःप्रवर्द्धनी ।

(भेषज्य रत्नावली पृ० २१७)

रसपर्वटी

श्रीविन्ध्यवासिपादान् नत्वा धन्वन्तरिञ्च सुरमिपजम् ।
 रसगन्धक पर्पटिका परिपाटी पाटवं वक्ष्ये ॥
 मग्नंरसे जयन्त्याः पश्चादेरंडऽसम्भूते ।
 आर्द्रकरसे च सूतं पत्ररसे काकमाच्याश्च ॥
 मग्नमुदितानुपूर्वार्धमर्दनशुष्कं करेण गृहणीयात् ।
 प्रस्तरभाजनमध्ये शुद्धिरयं पारदस्योक्ता ॥
 शुक्पुच्छं समच्छायां नवनीत समद्युतिः ।
 मसृणः कठिनः स्निग्धः श्रेष्ठो गन्धक इष्यते ।
 कृत्वा भद्रं गन्धकमतिकुशलः क्षुद्रं तण्डुलाकारम् ॥
 तद्भृङ्गराजरसरनन्तरं भावयेत् पात्रे ।
 तदनु च शुष्कं कुर्यात् धूलिसमानञ्च सप्तधारौद्रे ॥
 तदनु च शुष्कं चूर्णं कृत्वा विन्यस्य लौहिकामध्ये ।
 निर्धूमबदरकाष्ठाङ्गारे न्यस्तं विलाप्य तैलसमम् ॥

पात्रस्थित भृङ्गराज रसमध्ये ढालयेन्निपुणः ।
तस्मिन् प्रविष्टमात्रं कठिनत्वं याति गन्धक चूर्णम् ॥
पुनरपि रौद्रे शुष्कं केतक रजसा समानतां नीतम् ।
शुद्धे सूते शोधित गन्धक चूर्णेन तुल्यता कार्या ॥
तावन्मर्दनमनयोर्यावन्न कणाऽपि दृश्यते सूते ।
पश्चात् कज्जल सदृशं चूर्णं लौहे स्थितं यत्नेन ॥
निर्धूमबदरकाष्ठाङ्गारे न्यस्तं विलाप्य तैल समम् ।
सद्यो गोमयनिहिते कदलदले ढालयेत् मृदुनि ॥
लौहस्थितमवशिष्टं कठिनं तन्न गृहीतव्यम् ।
पश्चात्पर्पटरूपा पर्पटिका कीर्त्यते लोकैः ॥
मयूर चन्द्रिकाकारं लिंगं यत्र तु दृश्यते ।
तत्र सिद्धं विजानीयाद्वैद्यो नैवात्र संशयः ॥
समुदित दिवसे कार्या भक्ष्या च पर्पटीमनुजैः ।
जीरक गुञ्जे हिं गोरर्द्धं खादेच्च वातले जठरे ॥
जीरक हिं गोरसेन त्वनुपानं सलिलधारया कार्यम् ।
रसगन्धक पर्पटिका भक्षणमात्रे तु नाभ्यसः पानम् ॥
प्रथमं गुञ्जायुगलम् प्रतिदिनमेकैकं वृद्धितो भक्ष्यम् ।
दशगुञ्जापरिमाणान्नाधिकमदनीय मेकविंशति दिनानि ॥
वातातपकोपमनश्चिन्तनमाहारसमयवैषम्यम् ।
व्यायामश्चायासः स्नानं व्याख्यानमहित मयन्तम् ॥
पाके स्तोत्रं सर्पिर्जीरक धन्याकवेशवारैश्च ।
सिन्धूद्भवेन रन्धन मोदनधान्यानि शालयो भक्ष्या ॥
कुष्ठं वातिङ्गलफलमविद्धकर्णा च वास्तूकम् ।
अक्षतो मुद्गसहितः कदलदलसहितं पटोलञ्च ॥
कमुकफलशृङ्गवेरौ भक्ष्यौ शाकेषु काकमाची च ।

लावक वत्तक तित्तिरि मयूर मांसञ्च हिततरं भवति ॥
 मद्गुरो रोहित मीनावदनीयो कृष्ण मत्स्याश्च ।
 नीरक्षीरं व्यञ्जनमदनीयं पक्वकदलञ्च ॥
 रम्भाफल दलवलकल मूलानां वर्जनं कार्यम् ।
 तित्कं निम्बादिकमपि नाद्यं नोष्णतथान्नञ्च ॥
 आनूपमांसजलचर पतत्रि पल्लवञ्च सर्वथा त्याज्यम् ।
 स्त्रीणां सम्भाषणमपि गुडकश्च कृष्णामत्स्येषु ॥
 नाम्लं न दधि शाकं पर्पट्या भक्षणे भक्ष्यम् ।
 गुडखण्ड शर्करादिक इक्षुविकारो न भक्ष्य इक्षुश्च ॥
 न दलं न फलं न लताप्यदनीया कारवेल्लस्य ।
 स्तोकं घृतमिह भक्ष्यं पथ्ये साकांक्षमुत्थानम् ॥
 क्षुत्पीडायां भोजनमवश्यकार्यं महानिशायाञ्च ।
 सम जल मिश्रं पक्वं क्षीरं यद्वाधिकजल पक्वञ्च ॥
 कथमपि भोजनसमयातिक्रमजाते ज्वरे विरेके च ।
 वमने च नारिकेलसलिलं दुग्धञ्च पातव्यम् ॥
 स्वप्ने जाते रमिते विरेकतः क्षीरमेवपातव्यम् ।
 न ज्ञायते बुभुक्षा लक्ष्यालक्ष्या प्रतीयते यदि वा ॥
 अशक्तिं भिनिभिन्मस्तकशूलाद्यैर्नूनमवधार्या ।
 किं बहुवाच्यं रोगी यदा यदा भवति साकांक्षः ॥
 पाययितव्यं दुग्धं तदा तदा निर्भयभीय ।
 विहिताकरणे चास्यामविहितकरणे च रोगाद्यन्नानाम् ॥
 व्यापत्तयोऽपि बहुधा दृष्ट्वा प्रामाणिकैर्बहुशः ।
 तस्माद्वधातव्यं भवितव्यं भोजने निपुणैः ॥
 एवमियं क्रियमाणा भवति श्रेयस्करी नियतम् ।
 अशौ रोगं ग्रहणीं सामां शूलातिसारी च ॥

कामलपाण्डुव्याधिं प्लीहानञ्जातिं दारुणं हन्ति ।
 गुल्मजलोदरभस्मकरोगं हन्त्यामवातांश्च ॥
 अष्टादशैव कुष्ठान्यशेषशोथादि रोगांश्च ।
 इयमम्लपित्तशमनी त्रिदोषदमनी श्रुधातिकमनीया ॥
 अग्निनिमग्नमुदरे ज्वालाजटिलं करोत्याशु ।
 रसगन्धकपर्पटिका त्वपवार्यं व्याधिसंघातम् ॥
 बलीपलितशून्यं पुरुषं दीर्घायुषं कुरुते ॥

(भैषज्यरत्नावली पृ० २१३)

बृहद्ग्रहणीकपाटः

तारमौक्तिकहेमानि सारश्चैकैकभागिकम् ।
 द्विभागो गन्धकः सूतस्त्रिभागो मर्दयेदिमान् ॥
 कफित्यस्वरसैर्गाढं मृगशृङ्गे ततः क्षिपेत् ।
 पुटेन्मध्ये पुटेनैव तत उद्धृत्य मर्दयेत् ॥
 बलारसैः सप्तधैवमपामार्गरसैस्त्रिधा ।
 लोधप्रतिविषा मुस्तधातकीन्द्रयवामृता ॥
 प्रत्येकमेतत् स्वरसैर्भावनं स्यात् त्रिधा त्रिधा ।
 माषमात्रो रसोदेयो मधुना मरिचंस्तथा ॥
 हन्ति सर्वानतोसारान् ग्रहणीं सर्वजामपि ।
 कपाटो ग्रहणीरोगे रसोऽयं वज्रिदीपनः ॥

(भैषज्यरत्नावली पृ० २१३)

बृहन्पुष्पलभः

रसगन्धकलौहाभ्रं नागं चित्रञ्चमुस्तकम् ।
 टङ्कं जातीफलं हिंगु त्वगेलावद्धि वङ्ककम् ॥
 तेजपत्रमजाजी च यमानी विश्वसैन्धवम् ।
 प्रत्येकं तालकं चूर्णं तथा मरिचं ताम्रयोः ॥

निवृत्त्यक मृतं हेम तथा माष चतुष्टयम् ।
 आर्द्रकस्य रसेनैव धाड्याश्च स्वरमैस्तथा ॥
 भावयित्वा प्रदातव्यं चणमात्रं भिषग्वरैः ।
 भक्षयेत् प्रातरुत्थाय पथ्यं भक्षेद्यथाञ्चितम् ॥
 अग्निमान्द्यमजीर्णञ्च दुर्नाम ग्रहणीं जयेत् ।
 आमाजीर्णप्रशमनं सर्वरोग निस्सूदनम् ॥
 नाशयेद्दौदरान् रोगान् विष्णुचक्रमिवासुरान् ।

(भैषज्यसंज्ञावली पृष्ठ २१२)

पीयूषवर्णी रसः

सूतकं गन्धकं चाभ्रं तारं लौहं सटङ्कणम् ।
 रसाञ्जनं मान्निक्ञ्च शाणमेकं पृथक् पृथक् ।
 लवङ्गं चन्दनं मुस्तं पाठा जीरकधान्यकम् ॥
 समङ्गातिविषा लोभ्रं कुटजेन्द्रयवं त्वचम् ।
 जातीफलं विश्व निम्बं कनकं दाडिमच्छदम् ॥
 समङ्गा धातकी कुष्ठं प्रत्येकं रससम्मितम् ।
 भावयेत्सर्वमेकत्र केशराजरसैः पुनः ॥
 चणकाभावटी कार्या ज्ञागी दुग्धेन पेयिता ।
 अनुपानं प्रदातव्यं दुग्धविल्व समं गुडम् ।
 अतिसारं ज्वरं तीव्रं रक्तातीसारमुल्बणम् ।
 ग्रहणीं चिरजां हन्ति शोथं दुर्नामकं तथा ॥
 आमशूलविबन्धजं संप्रहग्रहणी हरम् ।
 पिच्छामदोषं विविधं पिपासा दाहरोगकम् ॥
 हृत्पासरोचकच्छर्दि गुदभ्रंशं सुदारुणम् ।
 पक्वापक्वमतीसारं नानावर्णं सवेदनम् ॥

कृष्णारुणञ्च पीतञ्च मांसधावनसन्निभम् ।
 ग्रीहगुल्मोदरानाहं सूतिकारोगसङ्कम् ॥
 असृद्धं निहन्त्येव वन्ध्यानां गर्भदं परम् ।
 कामलां पांडुरोगञ्च प्रमेहानपि विंशतिम् ॥
 पतान्सर्वाग्निहन्त्याशु मासाद्धेनात्रसंशयः ।
 पीथूपवल्ली वटिका अश्विम्यां निर्मिता पुरा ॥

(भै० २० पृ० २१०)

ग्रहप्रहणीकपाटोरसः

टङ्कनक्षार गन्धाश्म रसं जातीफलं तथा ।
 तथा खदिरसारञ्च जीरकं श्वेतधूनकम् ॥
 कपिहस्तकबीजञ्च तथैव वकपुष्पकम् ।
 एषां शाखां समादाय श्लेष्मचूर्णानि कारयेत् ॥
 विल्वपत्रक कार्पास फलं शालिञ्चदुग्धिका ।
 शालिञ्चमूलं कुटजत्वचः कञ्चटपत्रकम् ।
 सर्वेषां स्वरसेनैव वटिकां कारयेद्विषक् ।
 रक्तिकैकप्रमाणेन खाद्येद्विषसत्रयम् ।
 दधिमस्तु ततः पेयं पलमात्र प्रमाणतः ।
 अपि योगशताक्रान्तं ग्रहणीमुद्धतां जयेत् ॥
 आमशूलं ज्वरं कासं श्वासं शोथं प्रवाहिकाम् ।
 रक्तस्रावकरं द्रव्यं कार्यं नवात्र युक्तितः ॥
 कृष्णवार्त्ताकु मस्यञ्च दधितकञ्च शस्यते ॥
 ज्ञात्वा वायाः कृति तत्र तैलं वारि प्रदापयेत् ।

(भैषज्यरत्नावली पृ० २०३)

रसकेशरी

रसगन्धौ समौ शुद्धौ दन्तीकाथेन मर्दयेत् ।

देवपुष्पं वाणामितं रसपादं तथामृतम् ॥

माषमात्रञ्च तत्सेव्यं नागरेण गुडेन वा ।

सर्वारोचकं शूलार्त्तिमामवातं विनाशयेत् ॥

विसृज्य मग्निमान्द्यञ्च भक्तद्वयं सुदारुणम् ।

रसो निवारयत्येष केशरी करिणं यथा ॥

(भैषज्य रत्नावली १७६)

क्रव्यादरसः

पलं रसस्य द्विपलं बलेः स्याच्छुल्बायसी चाद्धं पलप्रमाणे ।

विचूर्ण्य सर्वं द्रुतमग्नियोगादेरण्डं पत्रेऽथ निवेशनीयम् ॥

कृत्वाथ तां पर्पटिकां विदध्याह्नौ हस्य पात्रे वरपूतमस्मिन् ।

जम्बीरजं पक्करसं पलानि शतं नियोज्याग्निं महाल्पमात्राम् ॥

जीर्णं रसे भावितमेतदेतैः सुपञ्चकोलोद्भववारिपूरैः ।

सवेतसाम्लैः शतमत्र देयं समं रजश्चूतजं सुभृष्टम् ॥

विडं तदद्धं मरिचं समञ्च तत्सप्तधाद्रां चणाकाम्लं वारा ।

क्रव्याद् नामा भवति प्रसिद्धो रसस्तु मन्यानक भैरवोक्तः ॥

माषद्वयं सैन्धव तक्र पीतमेतस्य धन्यः खलु भोजनान्ते ।

गुरुणि मांसानि पर्यांसि पिष्टीकृतानि सेव्यानि फलानि चैव ॥

मात्रातिरिक्तान्यपि सेवितानि यामद्वयाज्जारयति प्रसिद्धः ॥

काश्यस्थौल्यनिवर्हणो गरपरः सामातिनिर्नाशनो ॥

गुल्मं ग्रीहं जलोदरादिशमनः शूलार्त्ति मूलापहः ।

वातश्लेष्म निवर्हणो ग्रहणिकातीसार विध्वंसनो ॥

वातग्रन्थि महोदरापहरणः क्रव्याद् नामारसः ॥

(भैषज्यरत्नावली ४० १७४)

महाशंख वटी

कणामूलं वह्निदन्ती पारदं गन्धकं कणा ।
 त्रिक्षारं पञ्चलवणं मरिचं नागरं विषम् ॥
 अजमोदामृता हिंगु क्षारंतिन्तिडिकाभवम् ।
 सञ्चूर्ण्य समभागन्तु द्विगुणं शङ्खभस्मकम् ॥
 अम्लद्रवेण सम्भाव्य वटी कोलास्थिसम्मिता ।
 अम्लदाडिमतोयेन लिम्पाकस्वरसेन च ॥
 भक्षयेत्प्रातस्तथाय नाम्ना शङ्खवटी शुभा ।
 तक्रमस्तु सुरासीधु काञ्चिकोष्णोदकेन वा ।
 शशैणादिरसेनैव रसेन विविधेन च ॥
 मन्दार्गिं दीपयत्याशु बड़वाग्निसमप्रभम् ।
 अशींसि ग्रहणीरोगं कुष्ठमेहभगन्दरम् ॥
 प्लीहानमश्मरीं श्वासं कासं मेहोदरकृमीन् ।
 हृद्रोगं पाण्डुरोगञ्च विबन्धानुदरेस्थितान् ॥
 तान्सर्वाभ्राशयत्याशु भास्करस्तिमिरं यथा ।

(भै० १० पृ० १७४)

अग्निकुमारो रसः

रसेन्द्रगन्धौ सह टङ्कनेन समं विषं योज्यमिह त्रिभागम् ।
 कपर्दं शङ्खाविह नेत्रभागौ मरीचमत्राष्टगुणं प्रदेयम् ॥
 सुपक्वजम्बीर रसेन घृष्टः सिद्धो भवेदग्निकुमार एव ।
 विसूचिकाजीर्णं समीरणार्ते दद्याद्द्विवल्लं ग्रहणीगदे च ॥

(भै० १० पृ० १७१)

अजीर्णकण्टको रसः

शुद्धसूतं विषं गन्धं समं सर्वं विचूर्णयेत् ।
 मरिचं सर्वतुल्यं स्यात् कण्टकार्याः पलद्रवैः ॥

मर्दयेत् भावयेत्सर्वमेकविंशति वारकम् ।
 गुञ्जामात्रां वर्टी खादेत् सर्वाजीर्णप्रशान्तये ॥
 अजीर्णकण्टकः सोऽयं रसो हन्ति विसृचिकाम् ।

(भैषज्यरत्नावली पृ० १७०)

श्रीरामवाणरसः

पारदामृत लवंग गन्धकं भागयुग्ममरिचेन मिश्रितम् ।
 जातिकोपफलमर्द्धभागिकं तिन्तिडाफळरसेन मर्दितम् ॥
 माषमात्रमनुपानयोगतः सद्य एव जठराग्नि दीपनः ।
 संप्रहप्रहणिकुम्भकर्णकं सामवातखरदृषणं जयेत् ॥
 अग्निमान्द्यदशवक्तृनाशनो रामवाण इव विश्रुतो रसः ।

(भैषज्यरत्नावली पृ० १६६)

मुधानिधि रसः

सतं गन्धं माक्षिकं लौहचूर्णं सर्वं मृष्टं त्रैफलेनादकेन ।
 मूषामध्ये भूधरे तत्पुटित्वा दद्यात् गुञ्जां त्रैफलेनादकेन ।
 लौहे पात्रे गोपयः पाचयित्वा रात्रौ दद्याद्रक्तपित्त प्रशान्त्यै ॥

(भैषज्यरत्नावली पृ० १६१)

वामासुतः

आटरुपनवपल्लव द्रवे पालिके सरसभस्म बल्लकम् ।
 कर्पसम्मित मधु प्रयोजितं प्राश्य नाशयति रक्तपित्तकम् ॥

(यो० २० पृ० १६६)

रक्तपित्तकुलकुटरो रसः

शुद्धपारदबलिप्रवालकं हेममाक्षिकमुज्जगरङ्गकम् ।
 मारितं सकलमेतदुत्तमं भावयेत्पृथक्पृथक्द्रवैस्त्रिंशः ॥

चन्दनस्य कमलस्य मालतीकोरकस्य वृषपल्लवस्य च ।
 धान्यवारशकणाशतावरीशालमलीवटजटामृतस्य च ॥
 रक्तपित्तकुलकशडनाभिधो जायते रसवरोऽसूपित्तिनाम् ।
 प्राणदो मधुवृषद्रवैरयं सेवितस्तु वसुकृष्णलैर्मितः ॥
 नास्त्यनेन सममत्र भूतले भेषजं किमपि रक्तपित्तिनाम् ॥

(यो० १० पृ० १६६)

सूतशेखर रसः

शुद्धं सूतं मृतं स्वर्णं टंकणं वत्सनागकम् ।
 व्योपमुन्मत्तबीजं च गन्धकं ताम्रभस्मकम् ॥
 चातुर्जातं शंखभस्म बिल्वमज्जा कचोरकम् ।
 सर्वं समं क्षिपेत्खल्वे मर्द्यं भृंगरसैर्दिनम् ॥
 गुञ्जामात्रां वर्टीं कृत्वा द्विगुञ्जं मधुसर्पिणी ।
 भक्षयेदम्लपित्तघ्नो वान्तिशूलामयापहः ॥
 पञ्च गुल्लान्पञ्चकासान् ग्रहणयामयनाशनः ।
 त्रिदोषात्थातिसारघ्नः श्वासमन्दाग्निनाशनः ॥
 उग्रहिककामुदावर्तं देहयाप्यगदापहः ।
 मण्डलान्नात्र संदेहः सर्वरोगहरः परः ॥
 राजयक्ष्महरः साक्षाद्रसोऽयं सूतशेखरः ।

(यो० १० पृ० ३७६)

पारदादि चूर्णम्

रसबलिघ्नसारकोलमज्जामरकुसुमाम्बुधरप्रियङ्गुलाजाः ।
 मलयजमगधात्वगेष्टपत्रं दलितमिद्रं परिभाष्य चन्दनाङ्गिः ॥
 मधुमरिचयुतं रजोऽस्य माषं जयति वर्मिं प्रबलां विलिह्य मर्त्यः ।

(योगरत्नाकर पृ० २०१)

छर्द्यन्तकरः

रसभस्म पलांशं स्यात्तत्पादः स्वर्णभस्म च ।
 ताम्रं भुजङ्गवङ्गे च मौक्तिकं तत्समांशकम् ॥
 तेषां सममयश्चूर्णमभ्रकं तत्समं भवेत् ।
 तत्समं गन्धकं दत्वा बीजपूराद्रकाम्बुना ॥
 सर्वं खल्वे विनित्तिप्य मर्दयेत्त्रिदिनाद्यधि ।
 तत्कल्कं भावयेत्सप्त दिनान्यामलकद्रवैः ॥
 पाश्चात्तन्मूलमूपायां रुद्ध्वा भागडे विनित्तिपेत् ।
 पांसुभिः परिपूर्याथ क्रमवृद्धेन वह्निना ॥
 पचेद्यामत्रयं चुल्लयां स्वाङ्गशीतजमुद्धरेत् ।
 ततः सर्वं समाकृष्य चूर्णयेत्पट्टगालितम् ॥
 अजाजी दीप्यकं व्योषं त्रिफला कृष्णजीरकम् ।
 कृमिशुर्वैराङ्गं च प्रत्येकं निष्कमानकम् ॥
 ततः सर्वं चूर्णयित्वा योजयेत्पूर्वभस्मना ।
 इत्थं पञ्चरसेऽनेन प्रोक्तश्छर्द्यन्तको रसः ॥
 तत्तद्रोगहरैर्द्रव्यैर्दद्याद्वल्लप्रमाणतः ।
 अम्लपित्तमसृक्पित्तं क्वर्दि गुल्ममरोचकम् ॥
 आमवातं च दुःसाध्यं प्रसेकच्छर्दिहृद्रजम् ।
 सर्वलक्षणं संपूर्णं विनिहन्ति क्षयामयम् ॥
 स्वस्थांचितो हितकरः सर्वेषाममृतोपमः ॥

(यो. र. पृ. २०१)

रसादिगुटिका

रसरजतगुर्मी पटीयर्सी यो वदनसरोरुहमभ्यगां दधाति ।
 स जयति तृपितस्तृषां मनुष्यो भृशमघपुञ्जमिव त्रिमार्गगाग्भः ॥
 (यो. र. पृ. २०५)

रसादिचूर्णम्

रसगन्धककर्पूरैः शैलोशीरमरीचकैः ।
ससितैः क्रमवृद्धैश्च सूक्ष्मं कृत्वा त्वहर्मुखे ॥
त्रिगुञ्जाप्रमितं खादेत्पित्तेत्पयुषिताम्बु च ।
भृषं तृषां निहन्त्येवमश्विभ्यां च प्रकाशितम् ॥

(यो. र. पृ. २०५)

त्रिपुरसुन्दरोरसः

सिन्दूरमम्लंत्वथ हेममाक्षिकं मुक्ताफलं हेम च तुल्यभागिकम् ।
कन्याम्बुना मर्दय सप्तवासरान् गुञ्जाप्रमाणां वटिकां विधेहि च ॥
रसोत्तमस्यास्य निषेवणान्नर आमाशयोत्थामय रोग संघतः ।
गत्वा विमुक्तिं बलवीर्य्य संयुतो मेघान्वितः सौम्यवपुश्च जायते ॥

अन्नपानादिकं सर्वं सुजरं यच्च पोषणम् ।

आमाशय गदे सेव्यं दुर्जरश्च विवर्जयेत् ॥

(भै. र. पृ. १५०)

सुरेन्द्राश्रवटी

अभ्रं सहस्रशो दग्धं रसं दरदसम्भवम् ।
केशराजाम्मसा शुद्धं गन्धकं हीरकं तथा ॥
विद्रुमं मौक्तिकं हेम रौप्यं माक्षिकमेव च ।
कान्तलौहश्च सम्मर्द्य विधिना वह्निवारिणा ॥
वल्लमात्रां वटीं कृत्वा क्वायायां परिशोषयेत् ।
एकैकां योजयेत्प्राज्ञो यथादोषानुपानतः ॥
क्लोमरोगविनाशाय वह्नेः सन्धुक्षणाय च ।
नसोऽस्ति रोगो लोकेऽस्मिन् यमियं न विनाशयेत् ॥
यो यः समाश्रयेद्व्याधिः क्लोमिन् तं तमवेक्ष्य च ।
क्रियां संसाधयेद्वैद्यो यथादोषं यथाबलम् ॥

अनुप्राण्यन्नपानानि क्लोमामयनिपीडितः ।

सेवेताग्राणि सर्वाणि यत्नतः परिवर्जयेत् ॥

(भै. र. पृ. १४६)

जलोदरारिः

रसेन गन्धं द्विगुणं शिला च निशा च बीजं जयपालकस्य ।

फलत्रयं ज्यूपणाकञ्च चित् सर्वं विचूर्ण्यापि विभावयेच्च ॥

दन्तीस्तुहीभृङ्ग रसे पृथक् च सम्भाव्य संशोष्य च सप्तवारान्

वयो वलं वीक्ष्य तथा ददीत जाते विरेके च ददीत पथ्यम् ॥

अल्पं सतक्रं शिशिरानुशाधि जाते बले तत्पुनरेव दद्यात् ।

तक्रेण रोगः समुपैति शान्तिं सिद्धो रसो नाम जलोदरारिः ॥

(भै. र. पृ. १४४)

वैशनाथवटी (दधिवटी)

पक्वेष्टिका हरिद्राभ्यामागारधूमकेन च ।

शोधितं सूतकं ग्राह्यं तोलकं तुलया धृतम् ॥

भृंगराजरसैः शुद्धं गन्धकं सततुल्यकम् ।

हरितालं विषं तुल्यमेलवालुकताम्रकम् ॥

खर्परं माक्षिकं कान्तं सर्वमेकत्र कारयेत् ।

सर्वाद्वा कज्जली ग्राह्या भावयेच्च पुनः पुनः ॥

सिन्धुवाररसे चैव ज्योतिष्मत्या रसे तथा ।

रसेऽपराजितायाश्च जयन्त्याः स्वरसे तथा ॥

रक्तचित्रकमूलोत्थे रसे च परिभावयेत् ।

वटिकां सर्पपाकारां योजयेत् कुशलोभिपक् ॥

ततः सप्तवटीर्दद्यादुष्णेन वारिणा सह ।

अनुपानञ्चकर्तव्यं कज्जल्याः कणया सह ॥

सन्निपातज्वरे चैव सशोथे ग्रहणीगदे ।

पाण्डुरोगोऽग्निमान्द्यं च विविधे विषमज्वरे ॥
 शुक्रमज्जगते दद्यान्नतु कासे कदाचन ।
 नित्यं दध्ना च भोक्तव्यं सिता नित्यं तथैव च ॥
 स्नातव्यं ह्यभयान्नित्यं वयोदोषानुसारतः ।
 अलवणं वारिहीनं दधिपथ्यं सदा भवेत् ॥
 वैद्यनाथवटीनाम्ना वैद्यनाथेन निर्मिता ॥

(भै० र० पृ० १३६)

शोथकालानलोरसः

चित्रं कुटजबीजञ्च श्रेयसी सैन्धवं तथा ।
 पिप्पली देवपुष्पञ्च सजातीफल टङ्कनम् ॥
 लौहमग्नं तथा गन्धं पारदेनैव मिश्रितम् ।
 एतेषां कर्ष मात्रेण वटीं गुञ्जामितां शुभाम् ॥
 भक्षयेत्प्रातरुत्थाय कोकिलाक्षरसेन तु ।
 ज्वरमष्टविधं हन्ति साध्यासाध्यमथापि वा ॥
 कासं श्वासं तथा शोथं प्लीहानं हन्ति दुस्तरम् ।
 अवश्यं नाशयेच्छोथं कर्दमं भास्करो यथा ॥
 शोथकालानलो नाम रोगानीकविनाशनः ।

(भै० र० पृ० १३३)

दुग्धवटी

अमृतं धूर्तबीजञ्च हिङ्गुलञ्च समं समम् ।
 धूर्तपत्ररसेनैव मर्दयेद्याममात्रकम् ॥
 मुद्रोपमां वटीं कृत्वा दुग्धेन सह पाययेत् ।
 दुग्धेन भोजयेदन्नं वर्जयेत्प्लवणं जलम् ॥
 शोथं नानाविधं हन्ति पाण्डुरोगं सकामलम् ।

सेयं दुग्धवटी नाम्ना गोपनीया प्रयत्नतः ॥

(भै० र० पृ० १३६)

मानन्दोदयोरसः

पारदं गन्धकं लौहमम्रकं विषमेव च ।
समांशं मरिचं चाष्टगुणं टङ्कश्चतुर्गुणम् ॥
भृङ्गराजरसैः सप्त भावनाश्चाभ्लदाडिमैः ।
गुञ्जाद्वयं पर्णखण्डे खादेत्सायं निहन्ति च ॥
वातश्लेष्मभवान् रोगान् मन्दाग्निं ग्रहणीं ज्वरान् ।
अरुचिं पाण्डुताञ्चैव जयेदचिरसेवनात् ॥
नष्टमग्निं करोत्येष कालभास्करतेजसम् ।
पर्वतोऽपि हि जीर्येत प्राशनादस्य देहिनः ॥
गुर्वन्नमम्लमापञ्च भक्षणादेव जीर्यति ।

(भै० र० पृ० १३६)

चन्द्रसूर्यात्मकोरसः

सूतकं गन्धकं लौहमम्रकञ्च पलं पलम् ।
शङ्खटङ्कवराटञ्च प्रत्येकार्द्धपलं हरेत् ॥
गोधुरबीजं चूर्णाञ्च पलैकं तत्रदीयते ।
सर्वमेकीकृते चूर्णं वाष्पयन्त्रे विभावयेत् ॥
पटोलं पर्पटं भार्गीं विदारी शतपुष्पिका ।
कुण्डलीदशिङ्गनीवासाकाकमाचीन्द्रवारुणी ॥
वर्षाभूः केशराजश्च शालिञ्ची द्रोणापुष्पिका ।
प्रत्येकार्द्धपलैर्द्रावैर्भावयित्वा वर्टी चरेत् ॥
चतुर्दश वटीः खादेच्छङ्गागीदुग्धानुपानतः ।
गहनानन्दनाथोक्तश्चन्द्रसूर्यात्मको रसः ॥
हलीमकं निहन्त्याशु पाण्डुरोगञ्च कामलाम् ।

जीर्णज्वरं सविषमं रक्तपित्तमरोचकम् ॥
 शूलं प्लीहोदरानाहमष्टीलागुल्म विद्रधीन् ।
 शोथं मन्दानलं कासं श्वासं हिकां वर्मि भ्रमम् ॥
 भगन्दरोपदंशी च दद्रुकण्डूव्रणापचीः ।
 दाहं तृष्णामुरुस्तम्भमामवातं कटीग्रहम् ॥
 युक्त्या मद्येन मण्डेन मुद्रयूषेण वारिणा ।
 गुडूचीत्रिफलावासाकाथ नीरेण वा क्वचित् ॥

(भैषज्य रत्नावली पृष्ठ १२२)

बृहल्लोकनाथोरसः

शुद्धसूतं द्विधा गन्धं खल्ले कुर्याच्च कञ्जलम् ।
 सूततुल्यं जारिताभ्रं मर्दयेत्कन्यकाम्बुना ॥
 ततो द्विगुणितं दद्यात्ताम्रं लौहं प्रयत्नतः ।
 सूतान्नवगुणं देयं बराटीसंभवं रजः ॥
 काकमाचीरसेनैव सर्वं तद्गोलकीकृतम् ।
 ततो गजपुटे पच्यात् स्वाङ्गशीतं समुदरेत् ॥
 शिवं संपूज्य यत्नेन द्विजातीन् परितोष्य च ।
 भक्षयेदस्य चूर्णस्य द्विगुञ्जं मधुना सह ॥
 प्लीहानमग्रमांसञ्च यकृतं सर्वरूपिणम् ।
 जीर्णज्वरं तथा गुल्मं कामलां हन्ति दाहणाम् ॥

(भैषज्यरत्नावली, पृष्ठ ११०)

प्लीहारिरसः

पारदं गन्धकं टङ्कं विषं व्योषं फलत्रिकम् ।
 तोलकस्य समोपेतं जैपालञ्च तदर्द्धकम् ॥

किंशुकस्य रसेनैव याममात्रन्तु मर्दयेत् ।
 गुजामात्रां वर्टीं कृत्वा क्वायायां शोषयेत्ततः ॥
 वटिकैका प्रदातव्या शृङ्गवेर रसेन च ।
 गुदाङ्कुरे गुल्मशूले प्लीहशोथे कफात्मके ।
 उदावर्ते वातशूले श्वासकासज्वरेषु च ॥
 रसः प्लीहादिनामायं कोष्ठामयविनाशनः ॥

(भैषज्यरत्नावली पृ० १०७)

कनकसुन्दरो रसः

हिङ्गुलं मरिचं गन्धं पिप्पली टङ्कनं विषम् ।
 कनकस्य च बीजानि समांशं त्रिजयाद्रवैः ॥
 मर्दयेत् याममात्रन्तु चणमात्रा वर्टी कृता ।
 भक्षणार्थं प्रहर्णी हन्ति रसः कनकसुन्दरः ॥
 अग्निमान्द्यं ज्वरं तीव्रमतीसारञ्च नाशयेत् ।
 पथ्यं दध्योदनं दद्यात् यद्वा तक्रौदनं चरेत् ॥

(भै० २० पृ० १०१)

सिद्धप्राणेश्वरो रसः

गन्धेशाभ्रं पृथग्वेद भागमन्यच्च भागिकम् ।
 सर्जितङ्कुरवत्ताराः पञ्चैव लवणानि च ॥
 वराव्योपेन्द्रबीजानि द्विज्जीराग्नि यमानिकाः ।
 सहिङ्गु बीजसारश्च शतपुष्पा सुचूर्णिता ॥
 सिद्धप्राणेश्वरः सूतः प्राणिनां प्राणदायकः ।
 मापेकं भक्षयेदस्य नागवल्लीदलैर्युतम् ॥
 उष्णोदकानुपानञ्च दद्यात्तत्रपलत्रयम् ।
 ज्वरातिसारेऽतिसर्तौ केवले वा ज्वरेऽपि च ॥

घोरे त्रिदोषजे रोगे ग्रहणयामसगामये ।
वातरोगे च शूले च शूलेचपरिणामजे ॥

(भै० र० पृ० १००)

ज्वरहरी रसकज्जली

कण्टकारी सिन्धुवारस्तथा पूतिकरञ्जकम् ।
एतेषां रसमादाय कृत्वा खर्परखण्डके ॥
प्रक्षेप्यं गन्धकं तत्र ज्वालं मृद्वग्निना दहेत् ।
गन्धके स्नेहता पत्रे तत्समं पारदं क्षिपेत् ॥
मिश्रीकृत्य ततो द्वाभ्यां द्रुतं तमवतारयेत् ।
आमर्दयेत्तथा तत्तु यथा स्यात् कज्जलप्रभम् ॥
ततस्तु रक्तिकामस्य माषकं जीरकस्य च ।
माषकं लवणस्यापि पर्णे कृत्वा निधापयेत् ॥
ज्वरे त्रिदोषजे घोरे जलमुष्णं पिवेदनु ।
क्षुध्वां शर्करयादद्यात्सामे दद्यात्तथा गुडम् ॥
क्षये क्षागभवं क्षीरं प्रदद्यादनुपानकम् ।
रक्तातिसारे कुटजमूलवल्कलजं रसम् ॥
रक्तवान्तौ तथा दद्यादुदुम्बरं भवं जलम् ।
सर्वव्याधिहरश्चायं गन्धकः कज्जलीकृतः ॥
आयुर्वृद्धिकरश्चैव मृतञ्चापि प्रबोधयेत् ।

(भै० र० पृ० ८६)

लक्ष्मीविलासो रसः (नारदीयः)

पलं कृष्णाभ्रचूर्णस्य तदर्द्धौ रसगन्धकौ ।
तदर्द्धं चन्द्रसंज्ञस्य जातीकोषफले तथा ॥
बृहदारक बीजञ्च बीजं धुस्तूरकस्य च ।

त्रैलोक्यविजयावीजं विदारी मूलमेव च ॥
 नारायणी तथा नागबला चातिबला तथा ।
 बीजं गोश्वरकस्यापि नैचुलं बीजमेव च ॥
 एतेषां कार्पिकं चूर्णं पर्णपत्ररसैः पुनः ।
 संक्षिप्य वटिका कार्या त्रिगुञ्जाफलमानतः ॥
 निहन्ति सन्निपातोत्थान् गदान् घोरांश्चतुर्विधान् ।
 वातोत्थान् पैत्तिकांश्चैव नास्त्यत्र नियमः क्वचित् ॥
 कुष्ठमष्टादशाख्यञ्च प्रमेहान् विंशतिं तथा ।
 नाडीव्रणं व्रणंघोरं गुदामयभगन्दरम् ॥
 श्लीपदं कफवातोत्थं रक्तमांसाश्रितञ्च यत् ।
 मेदोगतं धातुगतं चिरञ्च कुलसंभवम् ॥
 गलशोथमन्त्रवृद्धिमतीसारं सुदारुणम् ।
 आमवातं सर्वरूपं जिह्वास्तम्भं गलग्रहम् ॥
 उदरं कर्णनासाक्षि मुखवैकृतमेव च ।
 कासपीनसयक्ष्मार्शः स्थौल्यदौर्गन्ध्यनाशनः ॥
 सर्वशूलं शिरःशूलं स्त्रीणां गदनिःसूदनम् ।
 वटिकां प्रातरेकैकां खादेन्नित्यं यथावलम् ॥
 अनुपानमिहप्रोक्तं मांसपिष्टं पयोदधिः ।
 वारिभक्त सुरासीधु सेवनात् कामरूपधृक् ॥
 वृद्धोऽपि तरुणस्पर्द्धी न च शुक्रस्य संक्षयः ।
 न च लिङ्गस्य शैथिल्यं न केशायान्ति पक्वताम् ॥
 नित्यं स्त्रीणां शतं गच्छन् मत्तवारण विक्रमः ।
 द्विलक्षयोजनीदृष्टिर्जायते पौष्टिकः परः ॥
 प्रोक्तः प्रयोगराजोऽयं नारदेन महात्मना ।
 रसां लक्ष्मीविलासस्तु वासुदेवे जगत्पतौ ॥

अभ्यासाद्यस्य भगवान् लक्ष नारीषु वल्लभः ॥

(भै० र० पृ० ८२)

श्लेष्मशैलेन्द्र रसः

गन्धकं पारदं चाम्रं ज्युषणं जीरकद्वयम् ।
 शटी शृङ्गी यमानी च पुष्करं रामठं तथा ॥
 सैन्धवं यावशूकञ्च टङ्कनं गजपिप्पली ।
 जातीकोषाजमोदा च लौहं यासलवङ्गकम् ॥
 धुस्तूरबीजं जैपालं कट्फलं चित्रकं तथा ।
 प्रत्येकं कार्षिकं चैषां शृङ्गाचूर्णं प्रकल्पयेत् ॥
 पाषाणे विमले पात्रे घृष्टं पाषाणमुद्गरैः ।
 विल्वमूलरसं दत्वा चार्कचित्रक दन्तिकाः ॥
 शिखरी काञ्जिका बासा निर्गुण्डी गणिकारिका ।
 धुस्तूरं कृष्णजीरञ्च पारिभद्रक पिप्पली ॥
 कण्टकाय्याद्रियोश्चैव मूलान्येतानि दापयेत् ।
 एषां मूलरसं दत्वा घृष्टमातपशोषितम् ॥
 गुञ्जाप्रमाणां वटिकां कारयेत् कुशलो भिषक् ।
 चतुर्विधवटीं खादेन्नित्यमार्द्रकवारिणा ॥
 उष्णतोयानुपानेन श्लेष्मव्याधिं व्यपोहति ।
 विंशतिं श्लेष्मिकांश्चैव शिरोरोगांश्च दारुणान् ॥
 प्रमेहां विंशतिश्चैव पञ्चगुल्मनिःसृदनम् ।
 उदराण्यन्त्रवृद्धिचाप्यामवातं विनाशनम् ।
 पञ्चपाण्ड्वामयान् हन्ति कृमिस्थौल्यामयापहम् ।
 सोदावर्तं ज्वरं कुष्ठं गात्रकण्ड्वामयापहम् ॥
 यथाशुष्केन्धने बहिस्तथा वह्निविवर्द्धनः ।
 श्लेष्मामयि कृपाहेतो रसेन्द्रो मुनिभाषितः ॥

शैष्मशैलेन्द्रको नाम रसेन्द्रगुटिका स्मृता ॥

(भे० १० पृ० ८१)

वसन्तमालती रसः

स्वर्णं मुका दरद मरिचं भागवृद्ध्या प्रदिष्टम् ।
 खर्पराष्टौ प्रथममखिलं मर्दयेत् भ्रङ्क्षणेन ॥
 यावत् स्नेहो व्रजति विलयं निम्बुनीरेण तावत् ।
 गुञ्जाद्वन्द्वं मधुचपलया मालती प्राग्वसन्तः ॥
 सेवितोऽयं हरेत्तर्ण्यं जीर्णञ्च विषमज्वरम् ।
 व्याधीनन्यांश्च कासादीन् प्रदीप्तं कुरुतेऽनलम् ॥

(भेषज्यरत्नावली ४० ८१)

नासाज्वरे आह्वारिरसः

क्षुद्रैला सामया कृष्णा लौहाभ्रं खर्पराणि च ।
 समभागं प्रकर्तव्यं द्विभागः पारदो मतः ॥
 सर्वमेकत्र संमर्द्य द्रोणपुष्पी रसेन च ।
 वल्लभात्रं प्रदातव्यं पुनर्नवरसैर्युतम् ॥
 ग्लौहानं यकृतं शोथमग्निमान्द्यमरोचकम् ।
 नासाज्वरे विशेषेण सर्वञ्च विषमज्वरम् ॥
 आह्वारि रसो ह्येष नाशयेदविकल्पतः ।

(प्रकीर्ण)

कल्पतरु रसः

रसं गन्धं विषं ताम्रं समभागं विचूर्णयेत् ।
 भावयेत् पञ्चभिः पित्तैः क्रमशः पञ्चवासरान् ॥
 निर्गुण्डीस्वरसेनैव मर्दयेत् सप्तवासरान् ।
 आर्द्रकस्य रसेनैव भावयेच्च त्रिधा पुनः ।

सर्षपाभा वटीकार्या ह्ययया परिशोषिता ॥
 ततः सप्तवटीर्योज्या यावन्न त्रिगुणा भवेत् ।
 वयोऽग्नि दोषकं बुद्ध्वा प्रयोज्या भिषजां वरैः ॥
 अनुपानं चोष्णजलं कज्जली पिप्पली युतम् ।
 पानावशेषे प्रस्वाप्य वस्त्रैराच्छादयेन्नरम् ॥
 घर्माभ्यागमनं यावत्ततो रोगात् प्रमुच्यते ।
 रोगिणं स्वापयित्वातु भोजयेत् ससितं दधि ॥
 एष कल्पतरुर्नाम रसः परमदुर्लभः ।
 असाध्यं चिरकालोत्थं जीर्णाश्च विषमज्वरम् ॥
 हन्तिज्वरातिसारौ च ग्रहणौ पाण्डुकामलाम् ।
 न देयः श्वासकासे च शूलयुक्ते नरे तथा ॥
 गोपनीयः प्रयत्नेन न देयो यस्यकस्यचित् ।

(भै० १० पृ० ७६)

ज्वरशूलहरो रसः

रस गन्धकयोः कृत्वा कज्जलीं भाण्डमध्यगाम् ।
 तत्राधोवदनां ताम्रपात्रीं संरुध्य शोषयेत् ॥
 पादांगुष्ठप्रमाणेन चुल्ल्यां ज्वालेन तां दहेत् ।
 यामद्वयं ततस्तत्स्थं रसपात्रं समाहरेत् ॥
 चूर्णयेद्रक्तियुगलं तृतीयं वा विचक्षणः ।
 ताम्बूलीदल योगेन दद्यात् सर्वज्वरैश्चमुम् ॥
 जीरसैन्धव संलिप्त वक्त्राय ज्वरिणे हितम् ।
 स्वेदोद्भूतो भवत्येव देवि सर्वेषु पाप्मसु ॥
 चातुर्थिकादीन् विषमान्नवमागामिनं ज्वरम् ।
 साधारणं सन्निपातं जयत्येव न संशयः ॥

(भैषज्यरत्नावली पृ० ७८)

षडाननो रसः

आरं कांस्यं मृतं ताम्रं दरदं पिप्पली विषम् ।
तुल्यांशं मर्दयेत् खल्ले यामञ्चिन्नोद्भवा रसैः ॥
गुञ्जामात्रं रसं देयं गुञ्जामात्रं लिहेत्सदा ॥
ज्वरे मन्दानले चैव बातपित्तज्वरेषु च ।
ज्वरे वैषम्य तरुणो ज्वरेर्जीर्णो विशेषतः ॥
मुद्गान्नं मुद्गयूपं वा तक्रभक्तञ्च केवलम् ।
नारिकेलोदकं देयं मुद्गपथ्यं विशेषतः ॥
षडाननो रसोनाम सर्वज्वर कुलान्तकृत् ।

(भैषज्यसङ्ग्रहोक्तं पृ० ७८)

विद्यावल्लभोरसः

रसम्लेच्छशिलातालाश्चन्द्रद्वयग्न्यर्क भागिकाः ।
पिष्ट्वातान् सुपर्वातोयस्ताम्रपात्रोदरे क्षिपेत् ॥
न्यस्तं शरावे संरुध्य बालुका यंत्रगं पचेत् ।
स्फुटन्ति व्रीहयो यावत्तच्छिरःस्थाःशनैःशनैः ॥
संचूर्ण्य शर्करा युक्तं द्विवल्लं भक्षयेत्ततः ।
विषमारुह्यान् ज्वरान् हन्ति तैलाम्लादि विवर्जयेत् ॥

(भै० २० पृ० ७७)

ज्वरकुञ्जरपारीन्द्ररसः

मूर्ध्निंतरसकर्पकं तदूर्ध्वं जारिताम्रकम् ।
तारं ताप्यञ्च रसजं* रसकं ताम्रकं तथा ॥
मौक्तिकं विद्रुमं लौहं गिरिजं गेरिकं शिला ।
गन्धकं हेमसारञ्च पलाङ्गञ्च पृथक् पृथक् ॥

*रसजं रसगर्भं रसाजनं (येलो ओक्साइड आफ मर्करी)

क्षीरावी* सुरवल्लीच शोथघ्नी गणिकारिका ।
 फाटामला † ज्योत्स्निका च सतिका तु सुदर्शना ॥
 अग्निजिह्वा ‡ पूतितैला § शूर्पपर्णी प्रसारिणी ॥
 प्रत्येकस्वरसं दत्वा मर्दयेत्त्रिदिनावधि ।
 भक्षयेत्पर्णखंडेन चतुर्गुणाप्रमाणतः ॥
 महाग्निकारको रोगसङ्करघ्नः प्रयोगराट् ।
 सन्ततं सततान्येद्युस्तृतीयकचतुर्थकान् ॥
 ज्वरान्सर्वाग्निहन्त्याशु भास्करस्तिमिरं यथा ।
 कासं श्वासं प्रमेहश्च सशोथं पाण्डुकामले ॥
 ग्रहणीं क्षयरोगश्च सर्वोपद्रवसंयुतम् ।
 ज्वरकुञ्जरपारोन्द्रः प्रथितः पृथिवीतले ॥

(भै० २० पृ० ७७)

श्रीजयमंगलो रसः

हिङ्गुलसंभवं सतं गन्धकं टङ्कणान्तथा ।
 ताम्रं बङ्गं माक्षिकञ्च सैन्धवं मरिचं तथा ॥
 समं सर्वं समाहृत्य द्विगुणं स्वर्णभस्मकम् ।
 तदद्दं कान्तलौहञ्च रूप्यभस्मापि तत्समम् ॥
 एतत्सर्वं विचूर्ण्याथ भावयेत्कनकद्रवैः ।
 शेफालीदलजैश्चापि दशमूलरसेन च ॥
 किराततित्तकक्वाथैस्त्रिवारं भावयेत्सुधीः ।

* क्षीरावी—खिरणी इति प्रसिद्धा ।

† फाटामला—भूम्यामलकी ।

‡ अग्निजिह्वा—ईश, लाङ्गलीति ।

§ पूतितैला—लताकंटकी कश्च इति भाषायाम् ।

भावयित्वा ततः कार्या गुञ्जाद्वयमिता वटी ॥
 अनुपानं प्रयोक्तव्यं जीरकं मधुसंयुतम् ।
 जीर्णज्वरं महाघोरं चिरकालसमुद्भवम् ॥
 ज्वरमष्टविधं हन्ति साध्यासाध्यमथापिवा ।
 पृथग्दोषांश्च विविधान् समस्तान् विषमज्वरान् ॥
 मेदोगतं मांसगतमस्थिमज्जगतं तथा ।
 अर्न्तगतं महाघोरं बहिःस्थञ्च विशेषतः ॥
 नानादोषोद्भवञ्चैव ज्वरं शुक्रगतं तथा ।
 निखिलं ज्वरनामानं हन्ति श्रीशिवशासनात् ॥
 जयमङ्गल नामायं रसः श्रीशिवनिर्मितः ।
 बलपुष्टिकरञ्चैव सर्वरोगनिबर्हणः ॥

(भे. र. पृष्ठ ७६)

ज्वराशानि रसः

रसं गन्धं सैन्धवञ्च विषं ताम्रं समं भवेत् ।
 सर्वचूर्णसमं लौहं तत्समं चूर्णमन्नकम् ॥
 लौहे च लौहदण्डेन निर्गुण्ड्याः स्वरसेन च ।
 मर्दयेद्यत्नतः पश्चान्मरिचं सूत तुल्यकम् ॥
 पर्णेन सह दातव्यो रसो रक्तिकसम्मितः ।
 कासं श्वासं महाघोरं विषमाख्यं ज्वरं वमिम् ॥
 धातुस्थं प्रबलं दाहं ज्वरदोषं चिरोद्भवम् ।
 यकृद्गुल्मोदरप्लीहश्वयथुञ्च विनाशयेत् ॥

(भे. र. पृ. ७६)

स्वच्छन्दभैरवो रसः

समभागांश्च संगृह्य पारदामृतगन्धकान् ।
जातीफलस्य भागार्द्धं दत्वा कुर्याच्च कज्जलीम् ॥
सर्वाङ्गं पिप्पलीचूर्णं खल्लयित्वा निधापयेत् ।
गुल्लैकं वा द्विगुल्लं वा नागवल्लीदलैः सह ॥
आर्द्रकस्य रसेनापि द्रोणपुष्पीरसेन वा ।
शीतज्वरे सन्निपाते विसूर्या विषमज्वरे ॥
पीनसे च प्रतिश्याये ज्वरेऽजीर्णे तथैव च ।
मन्देऽग्नौ वमने चैव शिरोरोगे च दारुणे ॥
प्रयोज्यो भिषजा सम्यग् रसः स्वच्छन्दभैरवः ।
पथ्यं दध्योदनं दद्याद्वीक्ष्यदोषबलाबलम् ॥

(भै. र. पृ. ७४)

ज्वरकालकेतु रसः

रसं विषं गन्धकं ताम्रकञ्च मनःशिलाऽरुक्करं तालकञ्च ।
विमर्द्य वज्रीपयसा समांशं गजाह्वयं तत्र पुटं विदध्यात् ॥
द्विगुल्लमस्यैव मधुप्रयुक्तं ज्वरं निहन्त्यष्टविधं महोष्णम् ।
पुरा भवान्यै कथितो भवेन नृणां हिताय ज्वरकालकेतुः ॥

(भै. र. पृ. ७३)

विश्वेश्वरो रसः

पारदं रसकं गन्धं तुल्यांशं मर्दयेद्भसे ।
अश्वत्थजेज्यहं पश्चाद्भसे कोलकं मूलजे ॥
निदिग्धिका रसे काकमाचिकाया रसे तथा ।
द्विगुल्लं वा त्रिगुल्लं वा गोक्षीरेण प्रदापयेत् ।
रात्रिज्वरं निहन्त्याशु नाम्ना विश्वेश्वरो रसः ॥

(भैषज्यरत्नावली पृ. ७३)

चातुर्थिकारि रसः

रसगन्धकलौहाभ्रहरितालं समांशकम् ।
 रसार्द्धप्रमितं हेमं सर्व्वं खल्लोदरेत्तिपेत् ॥
 कृष्णधुस्तूरपयसा मुनिपुष्परसेन च ।
 भावयित्वा वटी कार्या द्विगुञ्जाफलमानतः ॥
 चम्पकद्रवयोगेन सेवितोऽयं रसेश्वरः ।
 चातुर्थिकादीन्निखिलान्निहन्त्याद्विषमज्वरान् ॥

(भैषज्यरत्नावली पृ० ७१)

त्र्याहिकारि रसः

रसगन्धशिलातालं सर्व्वैरतिविषासमा ।
 रसस्य द्विगुणं लौहं रौप्यं लौहाङ्गि सम्मितम् ॥
 पिचुमर्दरसेनापि विष्णुकान्तारसेन च ।
 सर्व्वं सम्मर्द्य वटिकाः कुर्याद् गुञ्जात्रयोन्मिताः ॥
 हन्यादतिविषाक्वाथसंयुतोऽयं रसोत्तमः ।
 त्र्याहिकादीज्वरान् सर्वान् रक्षांसीव रघूद्वहः ॥

(भैषज्यरत्नावली पृ० ७२)

वातश्लेष्मान्तको रसः

पञ्चकोलं प्रवालञ्च पारदं चाभ्रकं तथा ।
 आर्द्रकस्वरसेनैव मर्दयेदतियत्नतः ॥
 गुञ्जाद्वयं प्रदातव्यं नागवल्लीरसैर्युतम् ।
 वातश्लेष्मज्वरहरो वातश्लेष्मान्तको रसः ॥
 वातजं पित्तजं श्लेष्मद्विदोषजमपि श्रणान् ।
 सर्वान् ज्वरान् निहन्त्याशु भास्करस्तिमिरं यथा ॥

(प्रकीर्ण)

• ज्वरारिसः

रसगन्धककासीसज्यूषणातिविषाऽभयाः ।
चम्पकत्वक् च सर्वाणि यवतिकारसैर्दिनम् ॥
मर्दयित्वा वटी कार्या रक्तिकाद्वयसम्मिता ।
आर्द्रकस्वरसेनाऽथ दापयेज्ज्वरशान्तये ॥
रसैर्वा बहुमञ्जर्याः केवलेन जलेन वा ।
नवज्वरं महाघोरं वातपित्तकफोद्भवम् ॥
सोपद्रवं त्रिदोषोत्थं जीर्णञ्च विषमज्वरम् ।
ज्वरारिसनामाऽसौ नाशयेन्नात्र संशयः ॥

(रसराजमुन्दर)

त्रिलोचन वटी

वारिणामर्दयेत्तालं सीसकं मरिचं विषम् ।
मुद्गमात्रा वटीकार्या जलेन सितयासह ॥
द्विमुहूर्त्तान्तरं दद्यात् क्रमेण वटिका त्रयम् ।
त्रिलोचन वटी ह्येषा पर्यायज्वर * नाशनी ॥

(प्रकीर्ण)

बृहज्ज्वराकुशोरसः

पारदं गन्धकं ताम्रं हिङ्गुलं तालमेव च ।
लौहं वङ्गं माक्षिकञ्च खर्परञ्च मनःशिला ॥
मृताभ्रकं गैरिकञ्च टङ्कनं दन्तिवीजकम् । †
सर्वाण्येतानि तुल्यानि चूर्णयित्वा विभावयेत् ॥
जम्बीर तुलसी चित्र विजया तिन्तिडी रसैः ।

* रिलाप्सिङ्ग् फीवर इति पाश्चात्याः ।

† स्वर्णमग्नं गैरिकञ्च टङ्कनं रुप्यमेवचेतिपाठान्तरम् ।

एभिर्दिनत्रयं रौद्रे निर्जने खल्ल गह्वरे ॥
 चणमात्रां वर्टी कृत्वा क्षायाशुष्कन्तु कारयेत् ।
 महाग्निजननी चैषा सर्वज्वरविनाशिनी ॥
 एकजं द्वन्द्वजञ्चैव चिरकाल समुद्भवम् ।
 एकाहिकं द्वाहिकञ्च त्रिदोषप्रभवं ज्वरम् ॥
 चार्तुथकं तथात्युग्रं जलदोषसमुद्भवम् ।
 सर्वान् ज्वरान् निहन्त्याशु भास्करस्तिमिरं यथा ॥
 नातः परतरं किञ्चिज्ज्वरनाशाय भेषजम् ।
 महाज्वरांकुशो नाम रसोऽयं मुनिभाषितः ॥

(भै. र. पृ. ७१)

स्वल्प ज्वरांकुशो रसः

शुद्धसतं विषं गन्धं धूर्तबीजं त्रिभिःसमम् ।
 चतुर्णां द्विगुणं व्योषं चूर्णं गुञ्जाद्वयं हितम् ॥
 जम्बीरस्य च मज्जाभिरार्द्रकस्य रसैर्युतम् ।
 ज्वरांकुशो रसोनाम्ना ज्वरान् सर्वान् प्रणाशयेत् ॥

(भै. र. पृ. ७०)

शीतभजीरसः

पारदं रसकं तालं तुल्यं टङ्कन गन्धकम् ।
 सर्व्वमेतत् समं शुद्धं कारवल्ली रसैर्दिनम् ॥
 मर्दयेत्तेन कल्केन ताम्रपात्रोदरं लिपेत् ।
 अंगुल्यर्द्धादिमानेन तं पचेत् सिकताह्वये ॥
 यन्त्रे यावत् स्फुटन्त्येव ब्रीह्यस्तस्य पृष्ठतः ।
 ताम्रपात्रं समुद्धृत्य चूर्णयेन्मरिचैः समम् ॥

शीतभञ्जीरसो नांम द्विगुञ्जो वातिके ज्वरे ।

दातव्यः पर्णखण्डेन मुहूर्त्तान्नाशयेज्ज्वरम् ॥

(भै. र. पृ. ६६)

पर्णखण्डेश्वरोरसः

समांशं मर्दयेत्खले रसं गन्धं शिलां विषम् ।

निर्गुणडीस्वरसैर्भाव्यं त्रिवारं चार्द्रकद्रवैः ॥

गुञ्जैकं भक्षयेत्पर्णे ज्वरं हन्ति महान्नुतम् ।

(भै. र. पृ. ६६)

श्रीरसराजः

भागैकं रसराजस्य भागैकं हेममाक्षिकम् ।

भागद्वयं शिलायाश्च गन्धकस्य त्रयो मताः ॥

तालकाष्टादशभागाः शुल्वं स्याद् भागपञ्चकम् ।

भल्लातस्य त्रयोभागाः सर्वमेकत्र चूर्णयेत् ॥

वज्रीक्षीरेप्लुतं कृत्वा दृढे मृण्मय भाजने ।

विधाय सुदृढां मुद्रां पचेत् यामचतुष्टयम् ॥

स्वाङ्गशीतं समुद्धृत्य खलयेत् सुदृढं पुनः ।

गुञ्जाचतुष्टयं चास्य पर्णखण्डेन दापयेत् ॥

रसराजः प्रसिद्धोऽयं ज्वरमष्टविधं जयेत् ।

(भै. र. पृ. ६८)

मृतसञ्जीवनोरसः ।

हिङ्गुलभागाश्चत्वारो जैपालस्य त्रयो मताः ।

द्वौ भागौ टङ्कनस्यापि भागैकममृतस्य च ॥

• तत्सर्वं मर्दयेत् श्लक्ष्णं शुष्कं यामं भिषग्वरः ।

शृङ्गवेराम्बुना मर्द्य व्यापचित्रकसैन्धवैः ॥
 यामद्वयमितस्तापं हरत्येष न संशयः ।
 घनसारससारेणा चन्दनेन विलेपनम् ॥
 विदध्यात् कांस्यपात्रेण वीजयेद्रोगिणं भिषक् ।
 शाल्यञ्च तक्र सहितं भोजयेद्विन्दु संयुतम् ॥
 सन्निपाते महाघोरे त्रिदोषे विषमज्वरे ।
 आमवाते वातगुल्मे शूले प्लीह्नि जलोदरे ॥
 शीतपूर्वे दाहपूर्वे विषमे सन्ततज्वरे ।
 अग्निमान्द्ये च वाते च प्रयोऽयस्य रसोत्तमः ॥
 मृतसञ्जीवनो नाम विरूपातो रससागरः ।

(भै. र. पृ. ६८)

अर्द्धनारीश्वरोरसः

रस गन्धामृतश्चैव समं शुद्धञ्च टङ्कनम् ।
 मर्दयेत्खल्लमभ्ये तु यावत् स्यात् कज्जलप्रभम् ॥
 नकुलारि मुखे क्षिप्त्वा मृदा संवेष्टयेद्बहिः ।
 स्थापयेन्मृण्मये पात्रे ऊर्ध्वाधो लवणं क्षिपेत् ॥
 भाण्डवक्त्रं निरुद्धवाय चतुर्यामं हठाग्निना ।
 साङ्गशैत्यं समुद्धृत्य खल्ले कृत्वा तु कज्जलीम् ॥
 शुब्जामात्रं प्रदातव्यं नस्यकर्मणि योजयेत् ।
 वामभागे ज्वरं हन्ति तक्षणात्तृणकौतुकम् ॥
 कुर्याद्वृत्तिगणभागेन चारोग्यं निश्चितं भवेत् ।
 गोप्याद् गोप्यतमं प्रोक्तं गोपनीयं प्रयत्नतः ॥
 अर्द्धनारीश्वरो नाम रसोऽयं कथितो भुवि ।

(भै. र. पृ. ६७)

श्रीकालानलरसः

रसं गन्धं मृताभ्रञ्च टङ्कनञ्च मनःशिला ।
हिङ्गुलं गरलं दारु विषं ताम्रञ्च तत्समम् ॥
विडालपदमात्रन्तु सर्वं शुद्धं विचूर्णयेत् ।
भावनाय च दातव्यं लाङ्गली मूलकं तथा ॥
घोषामूलं तथा देयं मूलं लोहित चित्रजम् ।
अपुष्पफल भूधात्री मूलं भ्रमररुद्रकम् ॥ *
क्लाग वाराह मायूर माहिषो मत्स्य एव च ।
एतेषां च ददेत्पित्तमार्द्रकस्य रसेन च ॥
प्रत्येकं मर्दितं शुष्कं कणमात्रा प्रमाणातः ।

(भै. र. पृ. ६३)

कस्तूरीभैरवोरसः

हिङ्गुलञ्च विषं टङ्कं जातीकोषफले तथा ।
मरिचं पिप्पलीं चैव कस्तूरीं च समांशिकाम् ॥
रक्तिद्वयं ततः खादेत् सन्निपाते सुदारुणे ।

(भै. र. पृ. ६२)

वृहत् कस्तूरीभैरवोरसः

मृगमदशशिसूर्या धातकी शूकशिम्बी ।
रजतकनकमुक्ता विद्रुमं लौहपाठे ॥
क्रिमिरिपुघनविश्वा वारितालाभ्रधात्री ।
रविदलरसपिष्टं भैरवः कादिपूर्वः ॥

* अत्र भ्रमरः भ्रमरेष्टा भार्गीत्यर्थः

कस्तूरीभैरवः ख्यातः सर्वज्वरविनाशनः ।
 आर्द्रकस्य रसैः पेयो विषमज्वरनाशनः ॥
 द्वन्द्वजान्भौतिकान्वापि ज्वरान्कामादिसम्भवान् ।
 अभिचारकृतांश्चैव तथा शस्त्रकृतान् पुनः ॥
 निहन्याद्भक्षणादेव डाकिन्यादियुतांस्तथा ।
 बिल्वचूर्णैर्जीरकाभ्यां मधुना सह पानतः ॥
 आम्रातिसारं ग्रहणीं ज्वरातीसारमेव च ।
 अग्निदीप्तिकरः शान्तः कासरोगनिकृन्तनः ॥
 क्षपयेद्भक्षणादेव मेहरोगं हृत्पीडकम् ।
 जीर्णज्वरं नूतनं वा द्वीकालीनञ्च सन्ततम् ॥
 आक्षेपं भौतिकं वापि हन्ति सर्वान् विशेषतः ।
 एकाहिकं द्वाहाहिकं वा त्र्याहिकं चतुराहिकम् ॥
 पाञ्चाहिकं वा षाष्ठाहं पाक्षिकं मासिकं पुनः ।
 सर्वाज्वराधिहन्त्याशु भक्षणादार्द्रकद्रवैः ॥

(भै. र. ४. ६२)

श्रीप्रतापलङ्केश्वरो रसः

अपामार्गस्यमूलानां चूर्णांश्चित्रकमूलजैः ।
 बल्कलैर्मर्दयित्वाथ रसं बस्त्रेण गालयेत् ।
 तेन सततसमं गन्धमध्नकं पारदं विषम् ॥
 टङ्कणं तालकञ्चैव मर्दयेद्दिनसप्तकम् ।
 त्रिदिनं मुषलीकन्दैर्भावयेत् घर्मरक्षितम् ॥
 मूष्राञ्च गोस्तनाकारामापूर्य्यो परि ढक्येत् ।
 सप्तमिमृत्तिकावस्त्रैर्वैष्टयित्वा पुटेल्लघु ॥
 रसतुल्यं लौहमस्म मृतबद्धमहिस्तथा ।

मधूकसारं जलदं रेणुकं गुग्गुलं शिला ॥
 चाम्पेयञ्च समांशं स्यात् भागार्द्धशोधितं विषम् ।
 तत्सर्वं मर्दयेत्खल्वे भावयेत् विषनीरतः ॥
 आतपे सप्तधा तीव्रे मर्दयेत् घटिकाद्वयम् ।
 कटुत्रयकषायेण कनकस्य रसेन च ॥
 फलत्रयकषायेण मुनिपुष्परसेन च ।
 समुद्रफेन नीरेण विजयापत्रवारिणा ॥
 चित्रकस्य कषायेण ज्वालामुख्यारसेन च ।
 प्रत्येकं सप्तधा भाव्यं तद्वत्पित्तेश्च पञ्चभिः ॥
 सर्वस्य समभागेन विषेण परिधूपयेत् ।
 विमर्द्य प्रक्षयित्वा च रक्षयेत् कूपि कोदरे ॥
 गुग्गुलैकं वह्निनीरेण शृङ्गवेररसेन वा ।
 दद्याच्च रोगिणे तीव्रमौढ्यं विस्मृति शान्तये ॥
 क्षुरेण तालुमाहृत्य घर्षयेदार्द्रनीरतः ।
 नोद्धटन्ते यदा दन्तास्तदा कुर्यादमुं विधिम् ॥
 सेचयेज्मन्त्रविद्वैद्यो वारां कुम्भशतैर्नरम् ।
 भोजनेच्छा यदातस्य जायते रोगिणः परम् ॥
 दध्योदनं सितायुक्तं दद्यात्तक्रं सजीरकम् ।
 पाने पानं सिताजातं यदिच्छेत ददीत तत् ॥
 एवं कृतेन शान्तिः स्यात् तापस्यच रुजस्य च ।
 सचन्द्रचन्दनरसालेपनं कुरु शीतलम् ॥
 यूथिका मल्लिका जाती पुन्नाग वकुला वृताम् ।
 विधाय शय्यां तत्रस्थां लेपनश्चन्दनैर्मुहुः ॥
 हान्नभावविलासोक्तैः कटाक्षचञ्चलैश्चणैः ।
 पीनोत्तङ्गकुक्षापीडैः कामिनी परिरम्भणैः ॥

रम्यदीणा निनादोच्चैर्गायनैः श्रवणामृतैः ।
 पुण्यश्लोक कथाद्यैश्च सन्तापहरणं कुरु ॥
 दद्यात् वातेषु सर्वेषु सिन्धुजैः सह वह्निभिः ।
 दद्यात् कणामाक्षिकाम्यां कामलाक्षय पाण्डुषु ॥
 तत्तद्रोगानुपानेन सर्व्वरोगेषु योजयेत् ।
 अयं प्रतापलंकेशः सन्निपात हरः पर ॥

(भै० १० पृ० ६०)

प्रकर्मूर्त्ति रसः

लोहाष्टकं मारितमर्कभागं सूतं द्विभागं द्विगुणञ्च गन्धम् ।
 विमर्दयेद्वह्निरसेन तापे दिनत्रयं चात्र विषं कलांशम् ॥
 निक्षिप्य पित्तं परिभाविताऽयं रसोऽर्कमूर्त्तिर्भवतित्रिदोषे ।
 ताम्रस्य पात्रे तु दिनैकमात्रं निम्बूरसेनापि च पित्तत्रयैः ॥
 क्षुद्रार्द्रकोत्थेन रसेन सूतस्त्रिदोषदावानल एव सिद्धः ।
 गुञ्जाद्वयं व्यूषणयुक्तमस्य ददात चित्रार्द्ररसेन वापि ॥
 नासापुटे चापि नियोजनीया गुञ्जास्य गुग्गुली मरिचेन युक्ता ।

(भै० १० पृ० ६६)

त्रिदोषदावानलकालमेघो रसः

तालेन बद्धं शिलयाच नागं रसैः सुवर्णं रवि तारपत्रम् ।
 गन्धेन लौहं दरदेन सर्व्वं पुटे मृतं योजय तुल्य भागम् ॥
 तत्तुल्य सूतं द्विगुणञ्च गन्धं तुल्यञ्च गन्धेन समान भागम् ।
 निम्बूत्थतोयेनविमर्दयसर्व्वं गोलं प्रकृत्याथ मृदाविलिप्य ॥
 पुटञ्च दत्वाथ विमर्दयेत् गन्धेन तुल्येन रुशानुनीरैः ।
 विषञ्च दत्वाथ कलाप्रमाणमीषत् रुशानुत्थरसैः पचेत्तत् ॥
 पित्तैस्तथा भाषित एषसूतस्त्रिदोषदावानल कालमेघः ।

बलं ददीतास्य च पूर्वयुक्त्या दाहोत्तरे तं मधुपिप्पलीभिः ॥
मुद्गश्च शाल्यन्नमिहप्रशस्तं पथ्यं भवेत् कोष्णमिदं दिवान्ते ॥
(भै० २० पृ० १६)

बडवानलोरसः

कान्तञ्च सूतं हरितालगन्धं समुद्रफेनं लवणानि पञ्च ।
नीलाञ्जनं तुत्यकमेव रूप्यं भस्मप्रवालानि वराटकाश्च ॥
वैकान्त शम्बूक समुद्रशुक्ति सर्वाणि चैतानि समानि कुर्यात् ।
सूतं भवेद्द्रादशभागकञ्च स्नुह्यर्कं दुग्धेन विमर्दयेच्च ॥
दिनत्रयं वह्निस्सैस्ततश्च निवेशयेत्ताम्रजसंपुटे तत् ।
मृदाच संलिप्य रसं पुटेत्तद्रसस्ततः स्याद् बडवानलाख्यः ॥
तत्पादभागेनविषं नियोज्य कृशानुतोयेन पचेत् क्षणं तत् ।
वातप्रधाने च कफप्रधाने नियोजयेत् त्र्यूषणचित्रयुक्तम् ।
दोषत्रयोत्येऽपि च सन्निपाते वाताधिकत्वादिह सूतकोक्तः ॥
(भैषज्यरत्नावली पृ० १६)

त्रैलोक्यचिन्तामणिः

रसभस्म त्रयोभागा द्विभागञ्च भुजङ्गकम् ।
कालकूटञ्च षड्भागं भागैकं तालकं तथा ॥
गोदन्तं गगनं तुत्यं शिलागन्धक टङ्कनम् ।
जयपालोन्मत्त दन्ती करवीरञ्च लाङ्गली ॥
पलाशमूलजैर्नीरैः सप्तधा भावितं दृढम् ।
चित्रमूल कषायेण चार्द्रकस्य च वारिणा ॥
मात्स्य माहिष मायूरच्छाग वाराह डुण्डुभम् ।
प्रत्येकं दशधा मर्द्यं शिलाखल्ले च संक्षयात् ॥

धान्यद्वयां वर्टी कुर्व्यात् शुद्ध वस्त्रेण धारयेत् ।
 दातव्यं चानुपानेन नारिकेलोदकेन च ॥
 ताम्बूलञ्च ततोदद्यात् मध्यशीतोपचारकम् ।
 तिलतैले सदा स्नानं घृतमत्स्यादि भोजनम् ॥
 शीताग्नं दधिसंयुक्तं पुराणान्नञ्च भक्षयेत् ।

(भै० २० पृ० ६७)

रसिधरः

रसेन गन्धं द्विगुणं गृहीत्वा तत्पादताम्रं हरिताल हेम ।
 भस्मीकृतं योजय मर्दयेत्तु दिनत्रयं वह्निरसेन घर्मे ॥
 विषञ्च दस्वात्र कला प्रमाणमजादिपित्तैः परिभावयेच्च ।
 रक्तिद्वयं चास्य ददात वह्नि कटुत्रयेणाद्ररसप्रयुक्तम् ॥
 तैलेन चाभ्यक्त यपुश्च कुर्व्यात् स्नानं जलेनैव सुशीतलेन ।
 यावद्भवेत् दुःसहमस्य शीतं मूत्रं पुरीषञ्च शरीरकम्पः ॥
 पथ्ये यदीच्छा परिजायतेऽस्य मरीचखण्डं दधि भक्तकञ्च ।
 अल्पं ददीताद्रकमत्र शाकं दिनाष्टकं स्नानमिदञ्चपथ्यम् ॥

(भै० २० पृ० ६८)

कालाग्निभैरवोरसः

शुद्ध सूतं द्विधागन्धं मर्दयेद्गोश्वरद्रवः ।
 भावितञ्च विशोष्याथ चूर्णयेदतिचिकणाम् ॥
 चूर्णतुल्यं मृतं ताम्रं ताम्रादष्टांशिकं विषम् ।
 द्विगुलं रसभागञ्च द्वौ भागौ कनकस्य च ॥
 बाणभागोऽत्र गोदन्तः कालभागा मनःशिला ।
 टङ्कनं नेत्रभागञ्च ऋतुभागञ्च खर्परम् ॥

ब्रह्मभागश्च जैपालं नेत्रभागं हलाहलम् ।
 मात्तिकं चाग्निभागश्च लौहं वङ्गश्च भागकम् ॥
 सर्वान् खल्लोदरे क्षिप्त्वा क्षीरेणाकस्य मर्दयेत् ।
 दशमूलकषायेण मर्दयेद्याममात्रकम् ॥
 पञ्चमूलकषायेण तथैव च विमर्दयेत् ।
 चणमात्रां वटीं कृत्वा बलं ज्ञात्वा प्रयोजयेत् ॥
 सर्वं त्रिदोषजं हन्ति सन्निपातं सुदाहणम् ।
 पूर्व्ववद्वापयेत्पथ्यं जलयोगश्चकारयेत् ॥
 पथ्यं शाल्योदनं ज्ञेयं दधिभक्तसमन्वितम् ।
 कालाग्नि भैरवोनाम रसोऽयं भूरिपूजितः ॥

(भैषज्यरत्नावली पृ० १७)

श्रीसन्निपातमृत्युञ्जयो रसः

विषं सूतकगन्धौ च पित्तं मत्स्यवराहयोः ।
 आजमायूरपित्ते च महिष्याश्चापि योजयेत् ॥
 हरितालश्च सव्योषं वानरीबीजं संयुतम् ।
 अपामार्गं चित्रमूलं जयपालश्च कल्कयेत् ॥
 एतत्सर्वं समांशेन क्वागीमूत्रेण मर्दयेत् ।
 माषेन सदृशी कार्या वटिका सद्भिषग्वरैः ॥
 महाज्वरे महाशीते महाशीतज्वरेऽपि च ।
 मज्जागते सन्निपाते विसूच्यां विषमज्वरे ॥
 असाध्ये मानवे युञ्ज्यादेकाहाज्वरनाशिनी ।
 जलोदरे शैथिल्लाङ्गे नासास्त्रावे च पीनसे ॥
 अजीर्णं मूर्च्छनाभावे श्लेष्मभावेऽतिदुर्जये ।
 शोथकामलक्षिण्ड्वादि सर्वरोगापहारकः ॥

सन्निपातं जयेदेष ज्ञानज्योतिः प्रकाशितः ।
 भृङ्गराज रसेनाऽयं रसराजः प्रदीयते ॥
 निर्वृतिं निर्जने स्थाने बहुबल्य समावृते ।
 प्रस्वेदः क्षणमात्रेण जायते चिह्ननीदृशम् ॥
 मूर्द्धितः पतितो भूमौ दह्यमानः पुनः पुनः ।
 एवं चिह्नं समालोक्य वदेन्नैरुज्य माशु वै ॥
 पथ्यं यद्याचते रोगी तद्दातव्यं प्रयत्नतः ।
 दध्योदनं शीतजलं दातव्यं तद् विचक्षणैः ॥
 एवं महारसः श्रेष्ठः शम्भुना प्रेरितो भुवि ।
 रुपया सर्वं भूतानां ज्ञानज्योतिः प्रकाशितः ॥

(भे. र. पृ. १६)

प्राणोत्परोरसः

शुद्धमृतं तथा गन्धं मृताभ्रं विपक्षयुतम् ।
 रसं संमर्द्धितं तालमूलीनीरैरुच्यते बुधः ॥
 पूरयेत्कूपिकान्ते च मुद्रयित्वा च शोषयेत् ।
 समभिमृत्तिका बल्लेर्वेष्टयित्वा च शोषयेत् ।
 पुटेत् कुण्डप्रमाणेन स्वाङ्गशीतं समुद्धरेत् ॥
 गृहीत्वा कूपिका मध्यान्मर्दयेच्च दिनं ततः ।
 अजाजी जीरकं द्विगु सर्जिका टङ्कनं जगत् ॥ *
 गुग्गुलुः पञ्चलवणं यवक्षारो यमानिका ।
 मरिचं पिप्पली चैव प्रत्येकं रसमानतः ॥

* जगत् शब्देन तौराष्ट्र मृत्तिका ग्राह्या, तद्भावे बुधरी, स्फटिकेति भाषायाम्.

एषां कषायेण पुनर्भावयेत् सप्तधातपे ।
 नागवल्ली दलयुतं पञ्चगुञ्जं रसेश्वरम् ।
 दद्यान्नवज्वरे तीव्रे सोष्णं वारि पिवेदनु ॥
 प्राणेश्वरो रसो नाम सन्निपात प्रकोपनुत् ॥
 शीतज्वरे दाहपूर्वे गुल्मशूले त्रिदोषजे ।
 वाञ्छितं भोजनं दद्यात् कुर्याच्चन्दनलेपनम् ॥
 तापोद्रेकस्य शमनं वलाधिष्ठान कारकम् ।
 भावेन्नात्र सन्देहः स्वास्थ्यश्च लभते नरः ॥

(भैषज्यरत्नावली पृ० ५३)

सन्निपातभैरवोरसः

रसं विषं गन्धकश्च हरितालं फलत्रयम् ।
 जयपाल त्रिवृत् स्वर्णं ताम्रं सीसाभ्रलोहकम् ।
 अर्कक्षीरं लाङ्गलीञ्च स्वर्णमालिकमेव च ।
 समं कृत्वा रसेनैषां त्रिंशद्द्वारश्च मर्दयेत् ॥
 अर्कश्वेतालम्बुषा च सूर्यावर्तश्च कारवी ।
 काकजङ्घा शोणकश्च कुष्ठं व्योषं विकङ्कतम् ॥
 सूर्यमणिश्चन्द्रकान्तो निर्गुण्डीशजटापि च ।
 धुस्तूर दन्ति पिप्पल्यौ दशाष्टाङ्गमिदं शुभम् ॥
 रसतुल्यं प्रदातव्यं दत्त्वा तोयं चतुर्गुणम् ।
 शिष्टैक गुणतोयेन भावना विधिरिष्यते ॥
 भावनायां भावनायां शोषणं मुहुरिष्यते ।
 ततश्च वटिकां कृत्वा भैरवाय बलिं ददेत् ॥
 रसोऽयं श्रीसन्निपातभैरवो ज्वरनाशनः ।
 सर्वोपद्रवसंयुक्तं ज्वरं हन्ति न सशयः ॥

सन्निपातज्वरं हन्ति जीर्णञ्च विषमं तथा ।
 ऐकाहिकं द्व्याहिकञ्च चातुर्थकमपि ध्रुवम् ॥
 ज्वरञ्च जलदोषोत्थं सर्वरोगं समाकुलम् ।
 भैरवस्य प्रसादेन जगदानन्दकञ्जयी ॥

(भैषज्य रत्नावली ५४)

सिद्धकला पानीयवटिका

अनाथनाथो जगदेकनाथः श्रीलोकनाथः प्रथमः प्रसन्नः ।
 जगाद् पानीयवटीं सुपट्वीं तामेव वक्ष्यामि गुरुप्रसादात् ॥
 जयार्कस्वरसं चैव निर्गुण्डी वासकं तथा
 वाट्यालकं करञ्जञ्च सूर्यावर्तकं चित्रको ।
 ब्राह्मी वनस्पत्यञ्च भृङ्गराजं विनित्तिपेत् ॥
 दन्ती च त्रिवृता चैव तथारग्वध पत्रकम् ।
 सहदेवामरं भण्डी तथा त्रिपुरभण्डिका ॥
 मण्डूकपर्णी पिप्पल्यां द्रोणपुष्पक वायसी ।
 गुञ्जाकिनी केशराजस्तथा योजनमल्लिका ॥
 आसारणेति विख्याता धुस्तूरः कनकस्तथा ।
 त्रैलोक्य विजया चैव तथा श्वेतापराजिता ॥
 प्रत्येकं कार्पिकञ्चैव रसमाकृष्य भाजने ।
 एकैकञ्च रसं दत्वा मर्दयेत्लोहं दण्डतः ॥
 चण्डातपे च संशोष्य क्षीरं तत्र पुनः क्षिपेत् ।
 स्नुहीक्षीरं चाकंदुग्धं वटदुग्धं तथैव च ।
 प्रत्येकं कार्पिकं दत्वा मर्दयेच्च पुनः पुनः ॥
 सुमर्दितञ्च तं ज्ञात्वा यदा पिसडत्वमागतम् ।
 द्रव्याण्येतानि संचूययं वस्त्रपूतानि कायेत् ॥

दग्धहीरं चातिविषां कोचिलामध्रकं तथा ।
 पारदं शोधितञ्चैव गन्धकं विषमाधुरम् ॥
 हरितालं विषञ्चैव माक्षिकञ्च मनःशिला ।
 प्रत्येकञ्च चतुर्माषं सर्व्वं चूर्णीकृतञ्च तत् ॥
 प्रक्षिप्य मर्दयेत् सर्व्वं शोषयित्वा पुनः पुनः ।
 सुमर्दितञ्च तं दृष्ट्वा यदा पिण्डत्वमागतम् ॥
 तिल प्रमाणा वटिका कारयेन्मतिमान् भिषक् ।
 त्रिदोषजनितो वैद्यमुक्तयोऽपि बहुसम्मतः ।
 लङ्घनैर्बालुकास्वेदैः प्रक्लान्तो दीनदर्शनः ॥
 संपूज्य करुणाधारं प्रणम्य च खसर्पणम् ।
 शरावे वारिणा घृष्ट्वा विंशतिं वटिकाः पिवेत् ॥
 पीततद्द्वेषजं पश्चाद् बल्लेणाच्छादयेन्नरम् ।
 रसलग्नं वपुर्ज्ञात्वा दद्यात् वारि सुशीतलम् ॥
 शराव प्रमितं वारि पातव्यञ्च पुनः पुनः ।
 सन्निपातज्वरञ्चैव दाहञ्चैव सुदारुणम् ॥
 कासं श्वासञ्च हिकाञ्च विड्ग्रहं चाश्मरीं जयेत् ।
 मूत्ररोग विबन्धेतु दातव्यं क्षीरसंयुतम् ॥
 पञ्चतृणकृतकाथं दातव्यञ्च पुनः पुनः ।
 पानीय वटिका ह्येषा लोकनाथेन निर्मिता ॥
 लोकानामुपकाराय सर्व्वसिद्धिं प्रदायिनी ।

(भै० २० पृ० ४७)

वृहत् सूचिकाभरणो रसः

रस गन्धक नागाभ्रं विषं स्थावर जङ्गमम् ।

मात्स्यचारुहमायूरच्छागापित्तैर्विभावयेत् ॥

सूचिकाभरणोनाम भैरवेण प्रकीर्तितः ।
 सूचिकाग्रेण दातव्यं पयःपेटीजलेन च ॥
 त्रयोदशे सन्निपाते विसूच्यामतिसारके ।
 त्रिदोषजे तथा कासे दापयेत् कुशलो भिषक् ॥
 पयःपेटीशतं दद्यात् भोजनं दधि भक्तकम् ।
 तथा सुभर्जितं मांसं लेपनं तिलं चन्दनैः ॥
 रोगिणो यत् प्रियं द्रव्यं तस्मैतच्च प्रदापयेत् ।

(भै. र. पृ. ४६)

मृतोत्थापनोरमः

शुद्धसूतं द्विधागन्धं शिला च विषहिं गुल्मम् ।
 मृतकान्ताम्रताम्रायस्तालकं मात्तिकं समम् ॥
 अम्लवेतसं जम्बीरं चाङ्गुरीणां रसेन च ।
 निर्गुण्डीहस्तिशुण्ड्योश्चद्रवैर्मर्द्यं दिनत्रयम् ॥
 रुद्धा तु भूधरे पाच्यं दिनान्तेतत्समुद्धरेत् ।
 चित्रकस्य कपायेण मर्दयेत् प्रहरद्वयम् ॥
 माषमात्रं प्रदातव्यं हिं गुण्ड्योपाद्रकद्रवैः ।
 सकर्पूरानुपानं स्यान्मृतस्योत्थापने रसे ॥
 पीडितं सन्निपातेन गतं वापि यमालयम् ।
 तत्क्षणाज्जीवयत्येष पथ्यं क्षीरैः प्रयोजयेत् ॥

(भै. र. पृ. ४६)

आनन्द भैरवीवटी

विषं त्रिकटुकं गन्धं टङ्गुलं मृतं शुल्बकम् ।
 धुस्तूरस्य च बीजानि हिं गुलं नवमं स्मृतम् ॥
 एतानि समभागानि दिनैकं विजयारसैः ।
 मर्दयेच्चणकूभा तु चटिकानन्दभैरवी ॥

भक्षयित्वा पिवेच्चानु रविमूल कषायकम् ।

सव्योषं हन्ति नो चित्रं सन्निपातं सुदारुणम् ॥

(भैषज्य रत्नावली पृष्ठ ४३)

ब्रह्मरन्ध्र रसः

रसाभ्रगन्धकं तालं हिंगुलं मरिचं तथा ।

टङ्कनं सैन्धवोपेतं सर्वांशममृतं तथा ॥

सर्वपाद समेपेतं महिषीपित्तमर्दितम् ।

ब्रह्मरन्ध्रे प्रयोक्तव्यं सन्यासज्ञानसङ्गमे ॥

सहस्र कलसैः स्नानं लेपनं चन्दनादिभिः ।

इक्षुमुद्गरसं भोज्यं तक्रभक्तं यथेप्सितम् ॥

(भै० र० पृ० ४४)

श्रीवेतालोरसः

रसं गन्धं विषञ्चैव मरिचालं समान्तिकम् ।

मर्दयेच्छिखलया तावत् यावज्जायेत कज्जलम् ॥

गुञ्जामात्रप्रमाणेन हरेद्वादशसंज्ञकम् ।

साध्यासाध्यं निहन्त्याशु सन्निपातं सुदारुणम् ॥

म्लानेषु लिप्तदेहेषु मोहप्रस्तेषु देहिषु ।

दातुमर्हति वेतालो यमदूत निवारकः ॥

(भैषज्य रत्नावली पृ० ४२)

सौभाग्य वटी

सौभाग्यामृत जीर पञ्चलवण व्योषाभयाक्षामला ।

निश्चन्द्राभ्रक शुद्धगन्धकरसानेकीकृतान् भावयेत् ॥

निर्गुण्डीयुग भृङ्गराजक वृषापामार्गपत्रोल्लसत् ।

प्रत्येक स्वरसेन सिद्धवटिका हन्ति त्रिदोषोदयम् ॥

येषां शीतमतीव दाहमखिलं स्वेदद्रवार्द्रकृतम् ।

निद्रां श्रोतॄणां समस्तकरण व्यामाहमूढं मनः ॥
 शूलश्वास बलासकाससहितं मूर्च्छां रुचिस्तुङ्ग्वर ।
 स्तेषां वै परिहृत्य जीवितमसौ गृह्णाति मृत्योर्मुखात् ॥
 (भै० १० पृ० ४३)

कुलबधुः

शुद्धसूतं मृतं नागं मृतं ताम्रं मनःशिला ।
 तुल्यकं तुल्यतुल्यांशं दिनमेकं विमर्दयेत् ॥
 रसैश्चात्तरवारुण्याश्चणमात्रा वटी कृता ।
 सन्निपातं निहन्त्याशु नस्यमात्रेणा दारुणाम् ॥
 एषः कुलबधूर्नाम जलेर्घृष्टा प्रदापयेत् ।
 (भैषज्यरत्नावली पृ० ४३)

मोहान्धसूर्योत्सः

गन्धेशोलशुनाम्भोभिर्मर्दयेद्याम मात्रकम् ।
 तस्योदकेन संयुक्तं नस्यं तत्प्रतिबोधयेत् ॥
 मरिचेन समायुक्तं हन्ति तन्द्राप्रलापकम् ।
 (भैषज्यरत्नावली पृ० ४३)

अचिन्त्यशक्ति रसः

रसगन्धकयोर्ग्राह्यं प्रत्येकं मापकद्वयम् ।
 शृङ्गकेशारुय निगुं राडी मण्डूकीपत्रमुन्दराः ॥
 श्वेतापराजितामूलं शालिश्चकालमारिपम् ।
 सूर्यावर्तः सितश्रेष्ठां चतुर्मापकं सम्मितैः ॥
 प्रत्येकं स्वरसैः खल्लशिलायामवधानतः ।
 स्वर्णमाक्षिक मापश्च दत्त्वा मरिच मापकम् ॥
 नेपालताम्रदण्डेन घृष्ट्वा तं कज्जलयतिम् ।
 वटी मुद्गोपमा कांय्या द्यायाशुष्का तु रक्षिता ॥

प्रथमे वटिकास्तिंशः कृत्वा नवशरावके ।
 ततः खसर्पणं सूर्यं पूजयित्वा प्रणम्य च ॥
 वारिणा गोलयित्वा तु पातुं देयञ्च रोगिणे ।
 स्वेदोपवासरचिते क्लान्ते चात्यबले तथा ॥
 द्वितीयेऽङ्घ्रि वटीयुग्मे वटीमेकां तृतीयके ।
 यावन्तो वटका देयास्तावज्जल शरावकम् ॥
 तृष्णायाञ्च रसं दद्याज्जाङ्गलानां जलं तृषि ।
 लुलाप दधि संयुक्तं भक्तं भोज्यं यथेप्सितम् ॥
 लावपक्षिरसो देयः संस्कृतः सैन्धवादिभिः ।
 पथ्यमग्निबलं वीक्ष्य वारिभक्तरसं तथा ॥
 शिरश्चलन शूलादौ तैलं नारायणादि च ।

(भै. र. पृष्ठ ४२)

उदकमञ्जरी रसः

सूतो गन्धष्टङ्गणः सोषणः स्यादेतैस्तुल्या शर्करामत्स्यपित्तैः ।
 भूयोभूयो भावयेच्च त्रिरात्रं बल्लो देयः शृङ्गवेरस्य वारा ॥
 सम्यक् तापे वारिभक्तं सतक्रं वृन्ताकाढ्यं पथ्यमत्र प्रदिष्टम् ।
 अह्नौ वोग्रं हन्ति सद्यो ज्वरन्तु पित्ताधिक्ये मूर्च्छिवारिप्रयोगः ॥

(भै. र. पृ. ४२)

चण्डेश्वरो रसः

रसं गन्धं विषं ताम्रं मर्दयेदेकयामकम् ।
 आर्द्रकस्य रसेनैव मर्दयेत्सप्तवारकम् ॥
 निगुण्ड्याः स्वरसे पश्चान्मर्दयेत् सप्तवारम् ।
 गुञ्जैर्कार्द्वरसेनैव दत्तो हन्ति ज्वरं क्षणात् ॥

वातजं पित्तजं श्लेष्म द्विदोषजमपि क्षणात् ।
 सुशीतलजलेस्नानं तृपार्थं क्षीर भोजनम् ॥
 आम्रश्च पनसंनैव चन्दनागुहलेपनम् ।
 पतत्समो रसो नास्ति वैद्यानां हृद्यंगमः ॥
 एष चण्डेश्वरो नाम सर्वज्वर कुलान्तकृत् ॥

(भैषज्यरत्नावली पृष्ठ ४१)

रत्नगिरि रसः

शुद्धसूतं समं गन्धं मृतताम्राभ्रहाटकम् ।
 प्रत्येकं सूतं तूल्यं स्यात् सूताद्धं मृतलौहकम् ॥
 लौहाद्धं मृत वैक्रान्तं मर्द्दयेद् भृङ्गजद्रवैः ।
 पर्पटीरसवत् पाच्यं चूर्णितं भावयेत् पृथक् ॥
 शिग्रुवासक निर्गुण्डी वचाग्नि भृङ्गमुण्डिकैः ।
 क्षुद्रामृता जयन्तीभिर्मुनिब्रह्मी सुतिक्तकैः ॥
 कन्यायाश्च द्रवैर्भाव्यं प्रतिवारं त्रिधा त्रिधा ।
 रुद्ध्वा लघुपुटे पाच्यं वालुकायंत्र मध्यगम् ॥
 यन्त्रं निरुध्ययत्नेन स्वाङ्गशीतं समुद्धरेत् ।
 चूर्णं नवज्वरे देयं माषमात्रं रसस्य वै ॥
 कृष्णाधान्य समायुक्तं मुहूर्त्ताग्नाशयेज्वरम् ।
 अयं रत्नगिरिर्नाम रसो योगस्य वाहकः ।

(भैषज्यरत्नावली पृ० ४१)

वैद्यनाथ वटी

शार्ङ्गं गन्धमथो रसस्य च तथा कृत्वा द्वयोः कज्जलीम् ।
 तिक्ताचूर्णमथाक्षमेव सकलं रौद्रे त्रिधा भावयेत् ॥

पश्चात् तत्सुषवी रसेन नतुवा क्वाथेऽमले त्रैफले ।
 संशोष्या गुड़िका कलायसदशी कार्या बुधैर्यत्नतः ॥
 ज्ञात्वा दोषवलं रसेन सुषवी पत्रस्य पर्णस्य वा ।
 एकद्वित्रिचतुः क्रमेण वटिकां दद्यात् कदुष्णाभुना ।
 हन्ति शूलनिचयं नवज्वरं पाण्डुतामरुचिशोथसञ्चयम् ।
 रेचने च दधिभक्त भोजनं वैद्यनाथ सुकुमार रेचनम् ॥
 (भैषज्यरत्नावली पृ० ४०)

प्रचण्ड रसः

अमृतं पारदं गन्धं मर्दयेत् प्रहरद्वयम् ।
 सिन्धुवार रसैः पश्चात् भावयेदेकविंशतिम् ॥
 तिलप्रमाणं दातव्यं नवज्वर विनाशनम् ।
 उद्वेगे मस्तके तैलं तक्रञ्चापि प्रदापयेत् ॥
 अनुपानमार्द्ररसः प्रचण्डरस संज्ञकः ।
 (भै. र. पृ. ४०)

नवज्वराङ्कुशो रसः

क्रमेण वृद्धान् रसगन्ध हिङ्गुलान्,
 नैकुम्भवीजान्यथ दन्तिवारिणा ।
 पिष्ट्वास्य गुञ्जाभिनवज्वरापहा,
 जलेन चाह्वा सितया प्रयोजिता ॥
 (भैषज्यरत्नावली पृ० ३६)

श्रीमृत्युञ्जयोरसः

विषस्यैकस्तथा भागो मरिचं पिप्पली कणाः ।
 गन्धकस्य तथा भागो भागः स्यात् टङ्कनस्य वै ॥

सर्वत्र समभागः स्यात् द्विभागं हिङ्गुलं भवेत् ।
 जम्बीरस्य रसेनात्र हिङ्गुलं भावयेत् भिषक् ॥
 रसश्चेत्समभागः स्यात् हिङ्गुलं नेष्यते तदा ।
 गोमूत्रशोधितञ्चात्र विषं सौरविशोषितम् ॥
 चूर्णयेत् खल्वमध्येतु मुग्धमात्रां वटीं चरेत् ।
 मधुना लेहनं प्राक्तं सर्वज्वर निवृत्तये ॥
 दध्युदकानुपानेन वातज्वर निवर्हणः ।
 आद्रकस्य रसैः पानं दारुणो साक्षिपातिके ॥
 जम्बीररसयोगेन अजीर्ण ज्वरनाशनः ।
 अजाजीगुबुसंयुक्तो विषमज्वर नाशनः ॥
 जीर्णज्वरे महाघोरे पुरुषे यौवनान्विते ।
 पूर्णमात्रा प्रदातव्या पूर्णं घटिचतुष्टयम् ॥
 अतिक्षीणेऽतिवृद्धे च शिशौ चाल्पवयस्यपि ।
 तूर्यमात्रा प्रदातव्या व्यवस्थासार निश्चिता ॥
 नवज्वरे प्रदाने च यामैकान्नाशयेज्ज्वरम् ।
 अक्षीणे च कफाभावे दाहे च वातपैत्तिके ॥
 सितां दद्यात् प्रयत्नेन नारिकेलाम्बु निर्भयम् ।
 अयंमृत्युञ्जयो नाम रसः सर्वज्वरापहः ॥
 अनुपान प्रभेदेन निहन्ति सकलान् गदान् ॥

(भै. र. पृ ३८)

तक्षणज्वरारि रसः

जेपाल गन्धं विष पारदञ्च तुल्यं कुमारीस्वरसेन मर्द्यम् ।
 अस्यद्विगुञ्जा हि सितोदकेन ख्यातो रसोऽयं तक्षणज्वरारिः ॥
 दातव्य एषोऽहनि-पञ्चमे वा पष्टेऽथवा सप्तमे एव वापि ।

जाते विरेके विगतज्वरः स्यात् पटोल मुद्गान्न निषेवणेन ॥

(भै. र. पृ. ३८)

शीतभञ्जी रसः

रस हिङ्गुल गन्धश्च जैपालं मर्दितं त्रिभिः ।

दन्तीकवाथेन समर्घ रसो ज्वरहरः परः ॥

आर्द्रकस्वरसेनाथ दापयेद्रक्तिकाद्वयम् ।

नवज्वरं महाघोरं नाशयेद्याममात्रकम् ॥

शीततोयं पिवेच्चानु इक्षुमुद्गरसो हितः ।

शीत भञ्जीरसो नाम्ना सर्वज्वरकुलान्तकृत् ॥

हिङ्गुलेश्वरो रसः

तुल्याशं मर्दयेत् खल्ले पिप्पली हिङ्गुलं विषम् ।

गुञ्जाद् मधुना देयं वातज्वर निवृत्तये ॥

अनुपाने रसा योज्या देशकालानुसारिभिः ।

दोषघ्नैर्मधुना वापि केवलेन जलेन वा ॥

(भै. र. पृ. ३७)

ज्वरनाग मयूर चूर्णम्

लौहाभ्रं टङ्कणं ताम्रं तालकं वङ्गमेव च ।

शुद्धसूतं गन्धकश्च शिशुबीजं फलत्रिकम् ॥

चन्दनातिविषा पाठा वचा च रजनीद्वयम् ।

उशीरं चित्रकं देवकाष्ठश्च सपटोलकम् ॥

जीवकर्षभकाजाज्यस्तालीसं वंशरोचनम् ।

कण्टकार्याः फलं मूलं शटी पत्रं कटुत्रयम् ॥

गुडूचीसत्वधान्याकं कटुका क्षेत्रपर्पटी ।

मुस्तकं बालकं बिल्वं यष्टीमधु समंसमम् ॥

भागाच्चतुर्गुणं देयं कृष्णजीरस्य चूर्णकम् ।
 तत्समं तालपुष्पञ्च चूर्णं दण्डोत्पलाभवम् ॥
 कैरातं तत्समं देयं तत्समंचपलाभवम् ।
 एतच्चूर्णं समाख्यातं ज्वरनागमयूरकम् ॥
 प्रतिमाषमितं खाद्यं युक्त्या वा त्रुटिवर्द्धनम् ।
 सन्ततादि ज्वरं हन्ति साध्यासाध्य न संशयः ॥
 त्रयोद्भवञ्च धातुस्थं कामशोकोद्भवं ज्वरम् ।
 भूतावेशज्वरञ्चैवमभिचारसमुद्भवम् ॥
 दाहशीतज्वरं घोरं चातुर्यादिविपर्ययम् ।
 जीर्णञ्च विषमं सर्वं प्लीहानमुदरं तथा ॥
 कामलां पाण्डुरोगञ्च शोथं हन्ति न संशयः ।
 भ्रमं तृष्णाञ्च कासञ्च शूलानाहौ क्षयं तथा ॥
 यकृतं गुल्मशूलञ्च आमघातं निहन्ति च ।
 त्रिकपृष्ठकटीजानुपाश्वर्णानां शूलनाशनम् ॥
 अनुपानं शीतजलं न देयमुष्णवारिणा ॥

(भैषज्यरत्नावली पृ० ३२)

उपरोक्त सब अवतरण प्रायः 'भैषज्यरत्नावली' के हैं।
 प्रत्येक योग के नीचे ग्रन्थ का नाम दे दिया गया है। इन अवतरणों
 के प्रयोग करने से यह स्पष्ट विदित हो जावेगा कि आयुर्वेद
 के रसशास्त्रियों ने पारद का उपयोग किन किन
 रोगों में किस प्रकार किया है, और उनमें रोगनाशक शक्ति
 कितनी प्रबल है। पाश्चात्य-चिकित्सा-पद्धति के आधार पर
 शरीर के अवयवों पर इन योगों का रोगविशेष में किस प्रकार
 कार्य होता है यह भी अध्ययन कर लिया जाय तो ये योग संसार

व्यापी हो सकते हैं और इनके चमत्कारों का लाभ संसार के सब मनुष्यों को समान रूप से पहुँच सकता है।

पारद का उपयोग रस शास्त्रियों ने रोग-शमनोपाय में ही नहीं किया है किन्तु उसके मूल तत्वों के परिवर्तन की शक्ति का भी विशेष अध्ययन किया है। एक धातु का दूसरे धातु में कैसे परिवर्तन हो जाता है इसके कुछ उदाहरण के अवतरण नीचे दिये जाते हैं और जिनकी परीक्षा भी आधुनिक समय में करने से संसार के रसायन शास्त्र में नवयुग आरम्भ किया जा सकता है। ये अवतरण 'रसार्णवतंत्र' से दिये जा रहे हैं। इस तन्त्र का प्रकाशन स्वनामख्यात प्रातःस्मरणीय सर पी० सी० राय डी०एस-सी. पी-एच० डी० (Sir P.C. Ray D.Sc. Ph. D.) कलकत्ता निवासी ने दी एशियाटिक सुसाइटी आफ़ बेंगाल, की तरफ से कराया है। आप उसकी भूमिका में इस तन्त्र के विषय में जो विचार प्रकाशित करते हैं वे प्रत्येक वैद्य को स्मरण रखना आवश्यक हैं। इसलिए यहां उसका उद्धृत करना अप्रासङ्गिक न होगा:—

“While collecting materials for my History of Hindu Chemistry I was very much struck with the wealth of information and chemical knowledge of which “*Rasarnava*” is the repository. Thus “Nature” in its review of “Hindu Chemistry” (Vol. I) speaking of the progress of chemistry in ancient India quotes two remarkable passages from *Rasarnava*.

• ‘Copper yields a blue flame:.....that of

tin is pigeon coloured; that of Lead is pale-tinted'.

And as another example :—

'A pure metal is that which, when melted in a crucible, does not give off sparks, nor bubbles, nor spurts, nor emits any sound, nor shows any line on a surface, but is tranquil as a gem.' (See page 51—52 *vs.* 49—52 "Nature" 1903 LXVIII, 51).

Among the alchemical Tantras Rasarnava holds a unique position and I have referred to it in the following terms in the Introduction to the History of Hindu Chemistry Vol. I. 2nd Ed. *Intro. LXXXIII* :—

"It is to be regretted that of the several works quoted by Madhava Rasarnava alone seems to have survived to our days. This work is almost unknown in Bengal, and extremely rare even in Northern India and Deccan. We have been fortunate enough to procure a transcript of it in the Raghunath Temple Library, Kashmir, and another from the Oriental Mss. Library, Madras. As one of the earliest works of the kind, which throws a flood of light on the chemical knowledge of the Hindus about the 12th Century

A.D. Rasarnava must be regarded as a valuable national legacy. It has besides, the merit of being the inspirer of several works of introductory period, notably '*Rasaratna-Samuchchaya*' and '*Rasendra-Chintamani*'".

इस लेख के देखने से इस तंत्र के योगों को सरलता से महत्व दिया जा सकता है। धातु के परिवर्तन करने के लिये अनेक प्रकार की रासायनिक क्रियाओं का वर्णन है। यद्यपि इस विषय के ज्ञान के लिये सुवर्ण और राजती विद्या विषयक रसतंत्रों के विशेष पाठ संग्रह कर आलोचना करना उपयुक्त है, तथापि दिग्दर्शन मात्र के लिए यहां कुछेक योग उद्धृत किये जाते हैं।

रसक्रामण

गण्डोलविषभेकास्य महिषाक्षिमलं तथा ।
 रुधिरेण समायुक्तं रस संक्रामणं परम् ॥
 विषं सुरेन्द्र गोपञ्च रोचना गुग्गुलुस्तथा ।
 स्त्रीस्तन्यं चैव तैर्युक्तो लोहेतु क्रमतेरसः ॥
 श्रीखण्ड निम्ब निर्यास स्त्रीस्तन्यविषटङ्कणैः ।
 गोघृतेन समायुक्तो लोहेतु क्रमतेरसः ॥
 अरिवर्गं हतौ वङ्गनागौ द्वौ क्रामणं परम् ।
 मातृवाहः कुलीरश्च शङ्खाभ्यन्तरजो मलः ॥
 तथा कपित्थ निर्यासो रस संक्रामणं परम् ।
 क्रामणं रसराजस्य वेध काले प्रदापयेत् ॥
 क्रामणं यो न जानाति श्रमस्तस्य निरर्थकः ।

अतः परं प्रवक्ष्यामि हेमतारदलानि तु ॥
 नाग सूतं समं घृष्टं गन्धद्वादशसंयुतम् ।
 धत्तूरक रसे घृष्ट्वा गुटिका चणकाकृतिः ॥
 तारस्य भागाश्चत्वारः शुल्बभागास्त्रयस्तथा ।
 सम्यगावर्त्य देवेशि गुटिकैकां तु निश्चिपेत् ॥
 अनेन क्रमयोगेन तारे ताम्रं तु बाहयेत् ।
 यावत्तु जायते रक्तं तारं चैव न संशयः ॥
 अस्य भागद्वयं ग्राह्यं तारस्य भाग पञ्चकम् ।
 हेमभागेकं संयुक्तं द्रुतं हेमाष्टकं भवेत् ॥
 गन्धकेन हतं शुल्बं दरदेन समन्वितम् ।
 आर्द्रकं मूलकं शुण्ठी लसुनं द्विगु माशिकम् ॥
 मर्दयेन्मातुलुङ्गेन नागपत्राणि लेपयेत् ।
 पुटेन म्रियते नागः सिन्दूराण्यसन्निभम् ॥
 तत्तारे त्रिगुणे व्यूहं निर्वीजं कनकं भवेत् ।
 गन्धपाषाणं दरद तीक्ष्णं खर्परं सूतकैः ॥
 भाग वृद्धैः समध्वज्यैः पञ्चमांशेन लेपयेत् ।
 पुटनाच्छुष्कपुटनान् द्विधा तारस्य कृष्णता ॥
 पीतगन्धकं पालाशं निर्यासेन प्रलेपितम् ।
 पुटत्रयं प्रदानेन रजतं काञ्चनं भवेत् ॥
 पीतकृष्णाण्यगणं यथाकामं सुचूर्णितम् ।
 गोसर्पिर्भात्रितं तारे वापेन श्वेतं नाशनम् ॥
 रक्तपीतासितगणं क्वागक्षीरेण भूयसा ।
 सप्ताहं स्थापयेत्तारे निषेकाद्रक्तिं वर्द्धनम् ॥
 यदा वाप निशेकाभ्यां माज्जारं नयनप्रभम् ।
 तत्तारं दलसंयुक्तं मेलनं परमं मतम् ।

शुल्वस्य कांस्य कृष्णं तु रसकेन तु रञ्जयेत् ॥
 द्वौभागौ तस्य शुल्वस्य तारस्यैकं तु मेलयेत् ।
 तदा तस्य रसेन्द्रस्य मेलनं परमं मतम् ॥
 वेधयेत् शुद्धसूतेन शतांशेन सुरेश्वरि ।
 हेम माक्षिक लवणं च पेषयेन्मधु सर्पिषा ॥
 कुंकुमाभं भवेद्यावत् तेन नाग पुटे पचेत् ।
 समं शुल्वं ततोदेयं तच्छुल्वं तारपत्रके ।
 त्रिवारं शोधयेद्दत्त्वा शुद्धं हेमदलं भवेत् ॥
 बङ्गं नागं तथा तीक्ष्णं शुल्वं तारञ्च पञ्चकम् ॥
 त्रिवारं शोधयेद्दत्त्वा शुद्धं हेमदलं भवेत् ।
 तालकं गन्धपाषाणं माक्षिकं खर्परं विषम् ॥
 मातुलुङ्गयुतं लिप्त्वा बङ्गलोहं पुटे पचेत् ।
 कुन्दी गन्ध पाषाणं माक्षिकं सैन्धवं विषम् ॥
 मातुलुङ्गयुतं लिप्त्वा नागलोहं पुटे पचेत् ।
 सर्व्वं हेमदले बाह्यं हेम बद्धेन वेधयेत् ॥
 तुल्यांशौ हेमकरिणौ तीक्ष्णं द्विगुणमेव च ।
 व्यूढं रक्त गणैः सिक्तं तत्तारं कनकं भवेत् ॥
 शुल्वं ताप्यहतं कृत्वा वरनागं तु रञ्जयेत् ।
 तं नागं वाहयेत्तारे यावद्धेम दलं भवेत् ॥
 विषं सूतसमं गन्धं त्रिगुणाञ्जन संयुतम् ।
 अम्लेन त्रिदिनं पिष्ट्वा ताराकौ वर्तयेत् समौ ॥
 पक्वं पञ्चमृदाच्चैव पुटेत्तारावशेषितम् ।
 एवं वा स्नपने नैव रञ्जयेत्तारमुत्तमम् ॥
 भुजङ्गस्य च शुल्वस्य पृथगंशं चतुष्टयम् ।
 पृथग्द्वादश तैलस्य रीतिकातारयोर्द्वयोः ॥

कनकस्य तु भागेकं हेमतारावशेषितम् ।
 मार्जारक्षिप्रभं देवि वरं हेमदलं भवेत् ॥
 ताराष्टकं ताम्रं चतुष्कभागं,
 नागद्वयं काञ्चनमेकभागम् ।
 सर्व्वं ततो रक्त गणेन सिक्तं,
 तारावशेषं कनकं करोति ॥
 राजावर्तं चतुर्थं च दरदश्च प्रवालकम् ।
 हेम माक्षिक संयुक्तं समभागानि कारयेत् ॥
 रसकस्य त्रयो भागा मेषाक्षोरैर्ग मर्हयेत् ।
 वटिकां कारयेत् पश्चात् क्वायायां शोषयेत्ततः ॥
 पञ्चद्रावक संयुक्तां शिला पट्टेन पेपयेत् ।
 अनेन सिद्ध कल्केन ताराणिष्टं तु योजयेत् ॥
 प्रथमे सम कल्केन द्वितीये तु तदर्धकम् ।
 तृतीये पाद भागेन ताराणिष्टं तु जायते ॥
 पत्रे दाहे कपेच्छेदे हेम तच्चाक्षयं भवेत् ।
 सुतकं दरदं ताप्यं गन्धकं कुमटी तथा ॥
 गृहीत्वा क्रमवद्भान्तु शुल्ब पत्राणि लेपयेत् ।
 चाङ्गेरी स्वरसे पिष्ट्वा दापयेत् पुट पञ्चकम् ॥
 सच्चरग्यं चाहयेत्तारे हेमाकष्टिरियं भवेत् ।
 कनके योजयेद्देवि कृष्णवर्णं भवेत्ततः ॥
 गोमूत्रेण निशां पिष्ट्वा शुल्बमावर्त्य सेचयेत् ।
 शतधा शोधनेनैव भवेत् काञ्चन तारकम् ॥
 अथ कांस्योद्धृतं ताम्रमारोटमथवा प्रिये ।
 पङ्गुणेन तु नागेन शोधयित्वा ततो बुधः ॥
 शतार्द्धं सिन्धुवारस्य रसमध्ये तु ढालयेत् ।

कुष्माण्डस्य रसे पश्चात् सप्तवारं तु दापयेत् ॥
 तथा तक्ते निशायुक्ते तप्ततप्तं च दापयेत् ।
 शुक्रतुण्डं किंशुक्राभं छेदे रक्तं मृदुं तथा ॥
 ताप्येन वाप्यं कृत्स्नं तत् शुल्वं कालिकया गतम् ।
 दरदं किंशुकरसं रक्तचित्रकमेव च ॥
 हरिद्रे द्वे वरारोहे क्लृप्तमूत्रेण पेषयेत् ।
 दद्यान्निषेवरां शुल्वे सप्तवारं न संशयः ॥
 शुल्वं सिन्दूरवर्णं च वरं हेमदलं भवेत् ।
 द्विगुणौ तीक्ष्णभुजगौ घोषकृष्णं तु वाहयेत् ॥
 अथवा यन्त्रकारस्य चैकद्वित्रिपलक्रमात् ।
 त्रिपञ्चकं च नागस्य शुल्वस्य च पलं तथा ॥
 ध्मातं यदवशिष्टं तत् तपनीयनिभं भवेत् ।
 लाङ्गली चित्रकं शिग्रुनिर्गुणं गडी करवीरकम् ।
 स्नुह्यर्क क्षीर चिञ्चाम्ल वज्रकन्द समन्विताम् ।
 महिषीक्षीरसंयुक्तां सुरां देवि प्रकल्पयेत् ॥
 स्नुह्यर्क क्षीर संयुक्तां शुल्वपत्राणि लेपयेत् ।
 सुरायां प्रथमोक्तायां दिनमेकन्तु पाचयेत् ।
 प्राग्वल्लिप्ताग्निवर्णानि सुरायां सेचयेन्मुहुः ॥
 आवर्तितानि बहुधा कुर्यात् कुण्डवराटकैः ।
 सर्जिका सिन्धुदत्तश्च वपेत् कर्मसु योजयेत् ॥
 रसकस्य पलैकं तु हेम माक्षिकं संयुतम् ।
 पाचनं कारयेत् पश्चात् ध्मातं कुङ्कम सन्निभम् ॥
 इन्द्रगोपसमं कल्कं पुटयोगेन जारयेत् ।
 तत्कल्कं मधु संयुक्तं शर्करा टङ्कणान्वितम् ॥
 एकीकृत्याथैव संमर्द्य गव्यक्षीरेण पाचयेत् ।

प्रागेव शोधितं शुल्वं रसकल्केन रञ्जयेत् ॥
 रञ्जयेत् त्राणि बाराणि जायते हेम शोभनम् ।
 भावयेन्मुनिपुष्पाणि करवीरं मनःशिलाम् ॥
 तत्पूर्वं रञ्जितं शुल्वं शिलया न तथा युतम् ।
 अन्धमूषागतं ध्मातं जायते हेम शोभनम् ॥
 तेनैव रसकल्केन तारपिष्टं तु कारयेत् ।
 सेचयेत् कङ्कुणी तैले तद्विष्यं कनकं भवेत् ॥
 अज्जुनी लाङ्गुली पञ्चचारिणी शक्रवारुणी ।
 सुवर्णा चौपधोभिश्च गैरिकेण तु पार्वति ॥
 विलिप्तं शुल्वपत्रं तु निषिक्तं कनकं भवेत् ।
 मयूरग्रीवतुल्यं च कुङ्कुमं रसकं तथा ॥
 बालवत्सपुरीषश्च विषं द्वाताहलं तथा ।
 रक्तचित्रक चूर्णाञ्च सम भागानि कारयेत् ॥
 मर्दयेन्मध्यमाग्लेन छाया शुष्कं तु कारयेत् ।
 मधुना सह संयोज्य नागपत्राणि लेपयेत् ॥
 मूकमूषागतं ध्मातं नागं रञ्जयति क्षणात् ।
 शाकपत्ररसेनैव सप्तवारं निषेचयेत् ॥
 अष्टाविंशति कृत्वा वा तैले भूनागसम्भवे ।
 तन्नागं जायते दिव्यं देवाभरणभूषणम् ॥
 अथवा भूलताचूर्णं नागचूर्णं समांशकम् ।
 अन्धमूषागतं ध्मातं तैले तप्तं निषेचयेत् ॥
 एवं कृते सप्तवारं भवेत् षोडश वर्णकम् ।
 बालवत्सपुरीषं च लाक्षा गैरिक चन्दनम् ॥
 हंसपादाख्य द्रवदं विल्वमज्जा गुडस्तथा ।
 राजावर्तं च कङ्कुष्ठं शाकपल्लवचारिणा ॥

भुजङ्गं कनकं कुर्याच्छतवारं निषेचनात् ।
 मञ्जिष्ठा रजनी द्वन्द्वं कांक्षी कनक माक्षिकम् ।
 कौसुमं विषलिन्धूतं दरदं रक्तचन्दनम् ॥
 शाकपल्लव पालाशकुसुमैः सह संयुतम् ।
 सेचनाच्छतवारेण नागं रञ्जयति श्रिये ॥
 कंकुष्टं गन्धपाषाणं रजनी द्वितयं तथा ।
 भावयेत् सप्तवारांश्च चामीकर रसेन तु ॥
 निषिक्तं शिंशपा तैले सप्तधा प्रतिष्ठापितम् ।
 नागं रञ्जति च क्षिप्रं रञ्जितश्चाक्षयं भवेत् ॥
 विद्रुमं दरदं तीक्ष्णं अनेन प्रतिष्ठापितम् ।
 मञ्जिष्ठा किंशुकरसे शाके चैव निषेचयेत् ॥
 प्रतिवाप निषिक्तञ्च क्रमेणानेन रञ्जितः ।
 भुजगो हेमतां याति नात्रकार्या विचारणा ॥
 उक्तं हेमदलं देवि वरं तारदलं शृणु ।
 श्वेताभ्रं काञ्चिके स्विन्नं त्रिवारं पुटितं ततः ॥
 स्वल्पदङ्कणं वङ्गञ्च शुद्धशुल्वे तु वापयेत् ।
 पञ्चमांशेन मिश्रं तत् तारं तालं च वेधयेत् ॥
 रस सैन्धव मेकैकं तिले सर्जिं द्वयं द्वयम् ।
 टङ्कैकं कनकरसे मर्दयेद्विवसत्रयम् ॥
 तेन लिप्तं ताम्रपत्रं धमेदावर्त्तितं पुनः ।
 शङ्कुदं सतालमूलं दध्यम्लेन तु पेपयेत् ॥
 तन्मध्ये ढालयेच्छुल्वं सप्तवारं दलं भवेत् ।
 तृतीयांशेन बीजस्य मेलयेत् परमेश्वरी ॥
 लाङ्गली चित्रको दन्ती हयघ्नोत्तरवारुणी ।
 गोधावती वज्रवल्ली श्वेतार्कः श्वेतवारुणी ॥

विष्णुकान्ताश्वगन्धा च शिग्रपञ्चांगुली तथा ।
 पुनर्नवा अपामार्ग इङ्गुदी चक्रमर्दकः ॥
 गुडची चैव हिस्त्रा च एकद्वित्रि चतुर्थकः ।
 महिषी क्षीर सन्धानात् सप्ताहादुपरि प्रिये ॥
 निपेके क्रियमाणे तु जायते शुल्ब शोधनम् ।
 तालं पाण्डसभागेन शुल्बपत्राणि लेपयेत् ॥
 स्थापयित्वान्ध्रमुपायां त्रिधा चाधत्तेत्येत् पुनः ।
 शुक्लवर्गस्त्रिधाक्षारं शङ्ख सैन्धव सर्जिकाः ॥
 दन्ता कपर्दाः कम्बुश्च शुक्लप्रः शुल्बवापनाः ।
 पादमे तत्सुरालेकैर्जायते नखपांडुरम् ॥
 त्रयोऽयस्कान्त भागाः स्युरारतारद्वयं तथा ।
 बङ्गस्य दश भागास्युस्तार बंधेन वेधयेत् ॥
 आरस्य द्विगुणं तारं तारात् कान्तं चतुर्गुणम् ।
 कान्तादष्टगुणं बङ्गं तारवेधेन वेधयेत् ॥
 तालं सूतं समं कृत्वा वज्रीक्षीरेण मर्दितम् ।
 पुटं दत्वा तु यन्त्रेण सत्त्वं पतति शोभनम् ॥
 बङ्गमावर्त्य देवेशि वज्रीक्षीरेण पेपयेत् ।
 एकविंशति वाराणि बङ्गशोधनमुत्तमम् ।
 तद्वङ्गं जारयेत् सूतं समं वा द्विगुणादिकम् ॥
 भल्लातराजिका तैलशंखं चूर्णा विडेन च ।
 नागवङ्गौ भवेत्तेन समं वङ्गेन सारणात् ॥
 क्षारोदक निपेकाच्च तद्वद्वीजमनेकधा ।
 तमुपायं प्रवक्ष्यामि मार्दवं येन जायते ॥
 घृतं दधि पयः क्षौद्रं विल्वजम्बीरकद्रवैः ।
 गुडस्तिल समायुक्तं निपेकात् मृदुकारकः ॥

गजदन्ता हय नखा मेषशृङ्गं च सैरिभम् ।
 कम्बु निर्यास संयुक्तं सप्तवारं निषेचयेत् ॥
 सहस्रधा विस्फुटितं दलं भजति मार्दवम् ।
 ज्योतिष्मति कुसुम्भानां तैले कारञ्जकेऽपि वा ॥
 निषेक शस्यतेऽत्यर्थं कनकस्य विचक्षणैः ।
 आवर्त्यमानं तारे च यदि तन्नैव निर्मलम् ॥
 काचटङ्कण वापेनं क्षिप्रं निर्मलतां वृजेत् ।
 मधूक मधुमेषाज्य सौराष्ट्री गुड सैन्धवैः ॥
 शुक्ति कम्बु खुरावापं चन्द्रार्कं मृदु जायते ।
 मधुतैलघृतैश्चैव वासमूत्रे निषेचनात् ॥
 जायते खरसत्त्वानां दलानामपि मार्दवम् ।
 चित्रारसेन सामुद्रैः क्षीरे चार्कस्य वह्निना ।
 विशुद्धं जायते तारं शङ्ख कुन्देन्दु सन्निभम् ॥
 यदि तन्निर्मलं नैव तदा तद्वत् पुनः पचेत् ।
 विधिरेष समाख्यातस्तार्कमणिपूजितः ॥
 कंगुणी तैल मञ्जिष्ठा हरिद्राद्वयं कुंकुमम् ।
 निषेकात् कुरुते हेम बालार्कं सदृशप्रभम् ॥
 शुल्बाद्धं गन्धकं दत्वा तदद्धं मृत सूतकम् ।
 चाङ्गेरी स्वरसे नैव मर्दयेद्वासरत्रयम् ॥
 प्लुतं चित्ररसेनैव लेपयेद्धेमपाण्डुरम् ।
 पक्त्वा पञ्चमृदा देवि हेमोत्कर्षणमुत्तमम् ॥
 हेमशुल्वं तथा तीक्ष्णं समभागानि कारयेत् ।
 अन्धमूषा गतं ध्मातं खोटो भवति तत्क्षणात् ॥ •
 खोटस्य भागमेकं तु रसहेम समन्वितम् ।
 पाचयेदनुजाम्लेन यावत् कुङ्कुम सन्निभम् ॥

शतांशेन तु तेनैव वेधयेद्धेमपाण्डुरम् ।
 जायते कनकं दिव्यं द्विवर्णोत्कर्षणं भवेत् ॥
 यावच्छुद्धं भवेत्तावत् पुटेल्लवणं भस्मना ।
 रक्ततैलं निषेक्तव्यं जायते हेम शोभनम् ॥
 मर्दितं कटुतैलेन स्वर्णगौरिकगन्धकम् ।
 अथवा मानुलुङ्गाम्लं राजावर्तकं मात्तिकम् ॥
 अथवा विट् कपोतस्य राजावर्तकं सैन्धवम् ।
 पुटनाच्छूवेत कनकं कुरुते कंकुमप्रभम् ॥
 राजावर्तस्य चूर्णं तु शिरीषं कुसुमद्रवः ।
 भावितं बहुपः क्षिप्तम् शीतपमंशेन वर्णादः ॥
 रसोपरसवर्गं तु निर्वहेन्नागं वङ्गयाः ।
 नागवङ्गौ पुनः शुल्वं शुल्वं तारे तु निर्वहेत् ॥
 तारं निषिक्तं देवेशि रक्ततैले पुनः पुनः ।
 जायते हेम कल्याणं सर्वदापि विवर्जितम् ॥
 उद्घाटं कथयिष्यामि रसं विद्धं च पञ्चगम् ।
 घोषारुष्टं तु यत् शुल्वं पाण्डुशोभनं योजयेत् ॥
 एकीकृत्य समावर्त्य द्वागमूर्ध्नि सेचयेत् ।
 सर्वदापि विनिर्मुक्तं जायते हेम शोभनम् ॥
 लोहं वेध इतिख्यातो विस्तरेण सुरेश्वरि ।
 यथा लोहे तथादेहे कर्त्तव्यः सूतकः सदा ॥
 समानं कुरुते देवि प्रविशन् देहलोहयाः ।
 पूर्वं लोहे परीक्षेत ततो देहे प्रयोजयेत् ॥

(सार्याव सप्तदश पटल)

ऊपर के अध्याय के वर्णान से यह स्पष्ट है कि प्राच्य आर्य-
 रस-शास्त्रियों ने पारद का प्रयोग केवल औषधिबर्ग में ही

नहीं किया किन्तु उसको धातुओं की मौलिकता के परिवर्तन में भी अनेक प्रकार से व्यवहार कर रासायनिक ज्ञान को उच्च-कोटि का अविष्कार करके जगत् गुरु बनने का सच्चा मार्ग प्रदर्शित किया था। आजकल पाश्चात्य रसायन-शास्त्र के अध्ययन में भी इसी प्रकार का मौलिक कार्य हो रहा है; हन्त ! हम ऋषि सन्तान कहलाने वाले प्राचीन-शास्त्र की मौखिक प्रशंसा करते हुये भी इतना कार्य नहीं करते कि जिससे अवशिष्ट ज्ञान को प्रत्यक्ष कर सत्यासत्य का निर्णय कर संसार को यह दिखा दें कि आयुर्वेद शास्त्र के प्रत्येक वाक्य और वाक्यांश नित्य सत्य पर अवलम्बित हैं और वह सत्य पुरुषार्थ करने में सरलता पूर्वक सर्वावस्था में प्रत्यक्ष किया जा सकता है। मैंने इस अध्याय में औषधि-योग केवल इसलिये दिये हैं कि वैद्यबन्धु खनिज-हिङ्गुल से पारद निकाल कर और जहाँ केवल हिङ्गुल का योग है वहाँ पर खनिज हिङ्गुल का ही प्रयोग कर भिन्न भिन्न रोगों पर इन योगों की विशेष परीक्षा कर यह निर्णय करें कि ये औषधियाँ वस्तुतः उल्लिखित रोगों में किन किन दशाओं में कितना कितना लाभ करती हैं और लाभालाभ का शतांशिक फल क्या रहता है। ऐसा करने से सबसे अधिक लाभ यह होगा कि सिद्ध योग सब प्रकार के ज्ञान वाले भाइयों को एकत्र प्राप्त हो जावेंगे और सारे देश में एक रोग की एक या दो निश्चित औषधियाँ सर्वत्र वैद्य व्यवसायियों के यहाँ सदा तय्यार मिल सकेंगी। पाश्चात्य चिकित्सा की उन्नति का यह एक बड़ा कारण है कि उनके योग निश्चित हैं और

एक चिकित्सक का व्यवस्थापन संसार के किसी कोने में प्राप्त कर लाभ उठाया जा सकता है, तद्विपरीत हमारे देश में एक ही नगर या ग्राम में एक वैद्य दूसरे वैद्य की बनाई हुई औषधि व्यवहार नहीं कर सकता। ऐसी दशा में एकता कैसे हो सकती है। इस सन्देह का कारण द्रव्य और योगों का अनिश्चय ही है। इसलिये प्रत्येक वैद्यबन्धु का यह कर्त्तव्य होना आवश्यक है कि वे अपनी और अपने व्यवसाय की भलाई के लिये सतत प्रयत्न कर द्रव्य और योगों का निर्णय कर निश्चित द्रव्य को ही व्यवहार में लाने का दृढ़ प्रयत्न करें। इस अध्याय के योग किस रोग में विशेष अनुभूत है, इसकी रोगानुसार सूची अन्त में दे दी गई है जिससे शोघ्र प्रयोग निकालकर बनाने और उपयोग करने में सरलता हो सके।

मैंने इस अध्याय के सङ्कलन में जो विशेष कार्य किया है वह है लुप्तप्राय पारद के अनेक खनिजों का वर्णन। खनिजों के वर्णन से तीन बातों पर विशेष प्रकाश पड़ता है। एक तो रसांजन के विषय में। "रसरत्न समुच्चय" के संग्रहकर्ता ने स्पष्ट लक्षण लिखा है कि "रसांजनं च पीताभं विष नेत्रगदापहम्" यहाँ पर 'पीताभ' शब्द स्वरूप वाचक है किन्तु जहाँ जहाँ योगों में रसांजन शब्द आता है वहाँ वहाँ वैद्य व्यवसाई दाहहरिद्रा जन्य रसोत नामक कृष्ण वर्ण की रस-क्रिया को लेते हैं जो न धातु है न पीतवर्ण ही। धातु और खनिज प्रकरणोक्त विषय में इतना भ्रम कर द्रव्यान्तर लेना हमारे खनिज शास्त्र के अज्ञान से कितनी हानि हुई है उसका यह ज्वलन्त उदाहरण है। रसांजन का जहाँ रसयोगों में प्रयोग है वहाँ पर - नेत्ररोग नाशक 'येला मर्क्युरिक ओक्साइड'

(*Yellow Mercuric Oxide, HgO.*) ही काम में लाना चाहिये । आजकल पाश्चात्य चिकित्सा में नेत्ररोगों के अन्दर इसका बाहुल्य से प्रयोग है । यह खनिज-शास्त्र की परिभाषा के अनुसार “मोन्ट्रोयडाइट” कहलाता है (देखो पृष्ठ २२) इसी प्रकार खातोंजन का निर्णय भी पारद के खनिज जाने बिना नहीं हो सकता (देखो पृष्ठ १९-२०) । कृष्ण हिंगुल, प्रवालाभ हिंगुल, दैत्येन्द्र रक्त, नाम से जो खनिज हिंगुल भिन्न भिन्न देशों में मिलता था उसका सर्वथा अभाव हो गया है । इसी प्रकार रसपुष्प (केलोमल) जो आयुर्वेदीय द्रव्य है उसे पाश्चात्य चिकित्सक काम में लाते हैं और हमारे यहां इस का प्रयोग एकदम बन्द हो गया है । यह अत्यन्त चिन्तनीय है । अब इस अध्याय के पारदीय खनिज-पढ़ने से पता लगेगा कि हमारे प्राचीनों ने अर्वाचीन खनिज शास्त्रों से भी कितना अधिक गंभीर ज्ञान प्राप्त किया है । यदि इसी प्रकार प्राच्य और प्रतीच्य का तारतम्य, ज्ञान के लिये सर्व प्रकार से प्रयत्न होता रहा तो पाठक देखेंगे कि आयुर्वेद शास्त्र का यशःसूर्य फिर किस प्रकार चमकने लगता है । आशा है वैद्यगण पारदादि खनिजों का उचित ज्ञान प्राप्त कर इसके प्रचार में हार्दिक सफल प्रयत्न करेंगे ।

उदयपुरवास्तव्यरावोपाहकविराज श्रीप्रतापसिंह कृत

रसविज्ञानीयः प्रथमोऽध्यायः समाप्तः ।

द्वितीय अध्याय .

गन्धक

SULPHUR

आयुर्वेदीय खनिज विज्ञान

आयुर्वेदीय खनिज विज्ञान

द्वितीय अध्याय

गन्धक (Sulphur—सल्फर)

इस मूलतत्व (Element) का ज्ञान सांसारिक प्राणियों को कब से है ; इसके ऐतिहासिक वृत्त का व्योरा अभीतक प्राप्त नहीं हुआ है । संभवतः इस तत्व का ज्ञान भ्रमणशील रसायन प्रेमियों ने ज्वालामुखी, उष्णस्रोत, गोदन्ती के क्षेत्रप्रभृति प्रदेशों में उग्र गंध और ज्वलनशक्ति देखकर अन्वेषण किया हो, इसीलिये प्राचीन आर्य रसायन ग्रन्थों में “गन्धक” नाम से ही इसका अभिधान किया गया है, गन्धक के उत्पत्ति प्रकरण में लिखा है कि :—

निजगन्धेन तान्सर्वान् हर्षयन्दैत्यदानवान् ।

ततो देवगणैरुक्तं गन्धकाख्यो भवत्वयम् ॥”

इसी प्रकार पाश्चात्य वैज्ञानिक साहित्य में ज्वलन शक्ति के कारण इसको सल्फर (Sul= Sal=Salt, Fur=fire) अर्थात् ज्वलन-शील-लवण के अभिधान से संबोधित किया है ।

गन्धक प्रायः ज्वालामुखी प्रदेशों में स्वतंत्र दशा में पाया जाता है। मिस्चरलिच (Mitscherlich) नामक विद्वान ने सर्व प्रथम योरोप में गन्धक की अनेक प्रकार की परिवर्तित रासायनिक दशाओं का ज्ञान प्राप्त करने का प्रयत्न किया था। गन्धक का प्रयोग भारतवर्ष में अति प्राचीन काल से किया जा रहा है। रस ग्रन्थों के अवलोकन से विदित होता है कि आर्य-रसायन-विज्ञान ने भी व्योरेवार इसके रासायनिक परिवर्तन और गुणों का अध्ययन किया, तथा उनका औषधि में उपयोग कर जन समुदाय का बड़ा उपकार किया था। किंतु इस व्योरे से यह प्रगट नहीं होता कि गन्धक का क्रमबद्ध अध्ययन करने वाला महापुरुष कौन था और किस समय में वह वर्तमान रहा। यह ऐतिहासिक वृत्त अन्वेषणीय है।

गन्धक उन थोड़े से मूलतत्वों में गिना जाता है जो प्रकृति में स्वतंत्र रूप से पर्याप्त मात्रा में पाये जाते हैं। यह प्रशान्त या प्रज्वलित ज्वालामुखी प्रदेशों में आधिक्य से प्राप्त होता है। योरोप में इटली (Italy) सिसली (Sicily) आइसलैन्ड (Iceland) आदि देशों में बहुतायत से मिलता है। असाधारणतया अन्य खनिजों के साथ में भी यह यौगिक रूप में पाया जाता है। कहीं कहीं हाइड्रोजन गैस के साथ 'सल्फ्युरेटेड हाइड्रोजन (Sulphurated Hydrogen) के रूप में उष्णस्रोतों में पाया जाता है। ऐसे स्रोत बर्मीनाथजी की यात्रा के मार्ग में प्रायः देखे जाते हैं। अन्यत्र भी भारतवर्ष के बिहार, बंगाल, आसाम, मद्रास आदि प्रान्तों में तीर्थों के स्थानों में प्रायः ऐसे उष्णस्रोत मिला करते हैं। ऐसे स्रोतों में गन्धक की उग्र गन्ध होती है। यौगिक-गन्धक "सल्फाइड"

(Sulphide) के रूप में अनेक खनिजों के साथ में मिला रहता है । उनमें से प्रधान निम्न लिखित समझे जाते हैं ।

- १ रौप्यमाक्षिक (Iron Pyrites) लौहमाक्षिक
- २ सुवर्णमाक्षिक (Copper Pyrites) ताम्रमाक्षिक
- ३ कांस्यमाक्षिक (Arseno Pyrites) तालमाक्षिक
- ४ कान्तमाक्षिक (Pyrrhotite) चुम्बकीय लौहमाक्षिक
- ५ धिमल (Marcasite Pyritous) लौहमाक्षिक (विशिष्ट रूप युक्त)
- ६ गन्ध नाग (Galena) नीलाञ्जन.
- ७ गन्धयशद (Zinc blende) यशद का खनिज.
- ८ गन्धवरनाग (Stibnite)
- ९ गन्धरजत (Argentite) रजत खनिज.
- १० हिंगुल (Cinnabar) पारद का खनिज.
- ११ गोदन्ती (Gypsum) गन्धक का खनिज.
- १२ बेरियं सल्फेट (Heavy Spar) बराइट.
- १३ बोर्नाइट (Bornite) पाषाणस्वरूप ताम्रमाक्षिक.

उक्त खनिजों की मात्रा किसी किसी स्थान पर बहुत व्यापक और बड़ी तादाद में पाई जाती हैं । स्वतन्त्र तथा अन्य खनिजों के साथ में मिला हुआ गन्धक प्रायः पृथ्वी के सर्वांश में पाया जाता है ।

वनस्पतियों में भी नीचे लिखे गणों में प्रायः गन्धक मिला रहता है :—

राईवर्ग, गाजरवर्ग, लहसुनवर्ग, इनके रस और बीजों के तैल में सल्फेट (Sulphate) और सल्फाइड (Sulphide) के रूप में गन्धक पाया जाता है ।

प्राणि वर्ग में भी यह रक्तादि धातुओं में अत्यल्प प्रमाण से मिला रहता है। पित्त में २५ फी सदी गन्धकांश गन्धक के तेजाव के रूप में विद्यमान है।

प्रकृति में अनेक प्रकार की रासायनिक प्रतिक्रियाओं से गन्धक पैदा होता है। मालिक के ऑक्सीडेशन से भी गन्धक पृथक् होकर जहाँ माशिक के कण घुले रहने हैं, वहाँ पर के कोष्ठों में जमा पाया जाता है। जहाँ पर ज्वालामुखी की कन्दराओं से अनेक प्रकार की गन्धकीय गैसों ऊपर की ओर निकलती हैं, वहाँ पर 'सल्फर डाई ऑक्साइड' और 'हाइड्रोजन सल्फाइड' की प्रतिक्रिया से गन्धकाम्ल और गन्धक उत्पन्न होता है। $(H_2S \text{ हाइड्रोजन सल्फाइड} \times 2 SO_2 \text{ सल्फर डाई ऑक्साइड} = H_2SO_4 \text{ गन्धकाम्ल और } 2S \text{ गन्धक})$ कहीं कहीं संभवतः हाइड्रोजन सल्फाइड और ऑक्सीजन की अपूर्ण प्रतिक्रिया से गन्धक बनता है। $(2H_2SO \text{ हाइड्रोजन सल्फाइड} + O_2 \text{ ऑक्सीजन की प्रतिक्रिया से } 2H_2O \text{ जल और } 2S \text{ गन्धक})$ अथवा सल्फर डाई ऑक्साइड और जल की प्रतिक्रिया से गन्धकाम्ल और गन्धक पैदा होता है। $(3SO_2 + 2H_2O = 2H_2SO_4 + S)$ इस प्रकार से उत्पन्न हुआ गन्धक का बड़ा जमाव 'अबासनों-बेरी माइन' होकैडो जापान* में गन्धक निकालने के लिये काम में लाया जा रहा है। यह जमाव पुराने सूखे ज्वालामुखी सम्बन्धी मृत्तिकामय तालावों के क्षेत्र के साथ पाया गया है। इस जमाव से बहुत बड़ी मात्रा में गन्धक निकाल कर युनाइटेड स्टेट्स को भेजा जाता है। इसी प्रकार के जमाव जो मेक्सिको

* Abosanoberi Mine, Hokkaido, Japan.

(Mexico) आदि प्रदेशों में पाये जाते हैं, उनका भी उपयोग करने का प्रबन्ध किया जा रहा है । सब से अधिक गन्धक खुश्क या तर उष्णस्रोतों के आस पास में पाया जाता है । ऐसे स्थानों में हाइड्रोजन सल्फाइड के अपूर्ण ऑक्सिडेशन से अथवा गन्धकोत्पादक जीवाणुओं की प्रतिक्रिया से उत्पन्न होता है । इस रीति से उत्पन्न हुए गन्धक के जमाव अमेरिका के पश्चिमी राज्यों में प्रायः मिलते हैं, उदाहरण के लिये “कुपराइट” (Cuprite) इस्मेरेल्डा कौन्टी (Esmeralda County) नवाडा (Nevada) सल्फरबैंक कैलिफोर्निया (Sulphur Bank, California) रेबिट होल माइन्स हम्बोल्ट-कौन्टी (Rabbit Hole Mine's Humboldt county) उटाह (Utah) कौडी (Cody) थर्मोपॉलिस (Thermopolis) व्योमिंग (Wyoming) जिलों के नाम लिखे जा सकते हैं । अन्त के तीन जिलों में गन्धक निकालने का व्यवसाय प्रारंभ हैं । व्योमिंग जिले में जो गन्धक प्राप्त होता है वह अल्पांश में चूने के साथ पाया जाता है । यहाँ का जमाव गहरा नहीं है, तथापि व्यापार चलाने लायक समझा जाता है ।

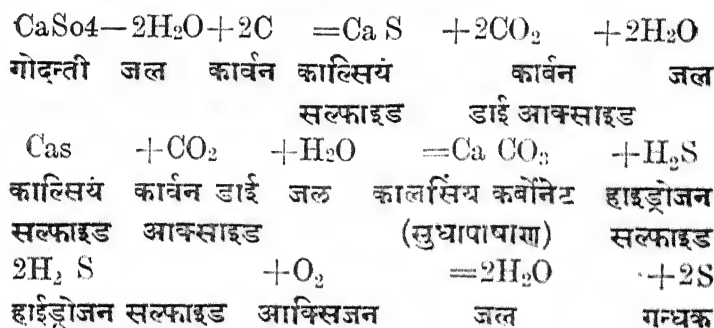
संसार में जितना भी प्राकृतिक गन्धक प्राप्त होता है वह ज्वालामुखी या उष्ण स्रोतों के उद्गम से ही निकलता नहीं है किन्तु सब से अधिक निक्षिप्तस्तरों के जमाव (Sedimentary beds) में पाया जाता है, और ऐसे जमावों का घनिष्ठ सम्बन्ध गोदन्ती (Gypsum) व सुधापाषाण (Lime Stone) के साथ रहता है । इनके अतिरिक्त कालसाइट (Calcite) अरेगोनाइट (Aragonite) ओपल (Opal) और कभी कभी स्फटिक (Quartz) आदि के साथ गन्धक मिला प्राप्त

होता है। गैसीय और घन हाइड्रोकार्बन (Gaseous and Solid Hydrocarbons) के साथ में भी गन्धक का सहयोग देखा गया है। संसार के बड़े बड़े गोदन्ती के क्षेत्रों के साथ विशेष रूप से गन्धक का सम्बन्ध सदा और सर्वत्र पाया जाता है, चाहे रासा सम्बन्ध व्यापारोपयोगी गन्धक निकालने का कार्य न दे तथापि गन्धक उत्पत्ति का यह नित्य सम्बन्ध सर्वत्र दिखाई देता रहेगा। इस विषय का विशेष ज्ञान प्राप्त करना हो तो लुसियाना (Louisiana) के बोरिंग (Boring) का विवरण जो उक्त स्टेट की सर्वे के बुलेटिन में प्रकाशित हुआ है, मंगाकर अवलोकन करना चाहिए। इस विवरण के देखने से गोदन्ती और गन्धक का अविरत जन्य जनक सम्बन्ध भली प्रकार विदित हो जाता है। गन्धक गोदन्ती और चूने के साथ शिरा, मृत्तिका, राल की शकल का तथा रवों आदि के रूप में जमा पाया जाता है।

गोदन्ती से गन्धक की उत्पत्ति

प्रकृति में अधिकांश में गन्धक निःसन्देह गोदन्ती से पृथक होकर अपना पीत वर्णमय स्वरूप धारण करता है। इस विश्लेषणात्मक उत्पत्ति का कारण एक जार्तीय गन्धकोत्पादक जीवाणु हैं। इन जीवाणुओं की रासायनिक प्रतिक्रियाओं से गोदन्ती का कार्बोशिय सल्फाइड और हाइड्रोजन सल्फाइड में परिवर्तन होता है इस प्रकार के परिवर्तन के व्योरे में अनेक मत भेद हैं। तथापि यह निश्चित है कि यह परिवर्तन मन्दताप पर होता है। जी. बिस्काफ (G. Bischof) नामक विद्वान ने सर्व प्रथम इस विषय पर वाद किया

और नीचे लिखे रासायनिक परिवर्तनों को स्थिर करने में समर्थ हुआ। इन परिवर्तन सूचक सूत्रों को यहाँ अंग्रेजी शब्दों में ही व्यक्त करना उचित प्रतीत होता है क्योंकि अभी तक इनके सर्वमान्य पर्यायवाची शब्द हमारी भाषा में निश्चित नहीं हुये हैं। सन्देहस्थल पर पाठक रासायनिक तत्वज्ञों से व्योरा समझने का कष्ट उठावें।



इस प्रकार के निर्णय के विपरीत विचार वालों का मत है कि गन्धक प्रायः हजारों फुट की गहराई पर उत्पन्न होता है। उक्त परिवर्तन के लिये इतना आक्सिजन वहाँ मिलना प्रायः असम्भव है इसलिये उनकी राय है कि सम्भवतः हाइड्रोजन सल्फाइड जो गोदन्ती से निकलता है वह काल्सियम कार्बोनेट पर रासायनिक प्रतिक्रिया करता है। जिससे पुनर्भव गोदन्ती (सेकेंडरी Secondary) और गन्धक उत्पन्न होता है।

सिसली (Sicily) का गन्धकीय जमाव वाक् विवाद का बहुत बड़ा क्षेत्र रहा है।

आ० वान० लासो (A. Von. Lasawl) नामक रसायनज्ञ का विचार है कि सिसली का गन्धकीय जमाव निर्मल तालाबों के जल में हाइड्रोजन सल्फाइड मिश्रित जल स्रोतों के मिलने से हुआ है। जी. स्पेजिया (G. Spezia) नामक विद्वान का भी अभिप्राय है कि गन्धक युक्त उष्ण स्रोतों के जल मिश्रण से ही समुद्र की तली में गन्धक का जमाव हुआ है। ओ-स्टुजर (O. Stutzer) नामक भूगर्भ-शास्त्रज्ञ ने सिसली के निक्षिप्तस्तरवर्ति गन्धकीय जमाव के विषय में अभी हाल ही में यह विचार प्रकट किया है कि गन्धक किसी भी स्थिर जलाशय में हाइड्रोजन सल्फाइड के उत्पन्न होने से जमा हो सकता है।

हाइड्रोजन सल्फाइड गैस स्थिर जलाशयों में जीवाणुओं के सड़ाव के कारण अथवा विलीन कार्बिसयं सल्फेट पर कार्बन, व हाइड्रोकैरबन की प्रतिक्रिया से पैदा होता है। इस प्रकार हाइड्रोजन सल्फाइड गैस के उत्पन्न होने पर वायवीय ऑक्सिजन के प्रभाव से या जीवाणुओं के कारण हाइड्रोजन सल्फाइड गैस का हाइड्रोजन ऑक्सिजन के साथ मिलकर जल उत्पन्न करता है और गन्धक बारीक चूर्ण के रूप में नीचे तली में बैठ जाता है। इसी प्रकार की रासायनिक क्रिया से धीरे धीरे गन्धक का बड़ा निक्षिप्तस्तर जम जाता है।

इसी प्रकार जलीय वनस्पतियों के सड़ाव से अनेक जीवाणु सल्फेड से हाइड्रोजन सल्फाइड बनाते हैं। हाइड्रोजन सल्फाइड को गन्धकीय जीवाणु (Sulphur Bacteria) ऑक्सिजन युक्त करके अपने कोष्ठों में बारीक बारीक गन्धक का

चूर्ण जमा करते रहते हैं। इस प्रकार का हाइड्रोजन सल्फाइड का ऑक्सिडेशन गन्धकीय जीवाणुओं की प्राण रक्षा करता है और इसी तरह की प्रतिक्रिया से जो गन्धकाम्ल पैदा होता है, वह कार्बोनेट की रासायनिक प्रतिक्रिया से, सल्फेट के रूप में परिवर्तित हो जाता है और वह शोषित होकर जीवाणुओं की वृद्धि में सहायक होता है।

ये गन्धकीय जीवाणु गन्धक के स्रोत, समुद्र और तालाबों के कीचड़ में पाये जाते हैं जहां पर हाइड्रोजन सल्फाइड उत्पन्न होता रहता है। स्टुजर की यह भी सम्मति है कि कालासमुद्र (Black Sea) के स्थिर जल में गहराई के साथ हाइड्रोजन सल्फाइड की मात्रा बढ़ती हुई मालूम होती है। इस स्टुजर के सिद्धांत के साथ डबल्यु. एफ. हन्ट (W. F. Hunt) नामक विश्व भी सहमत है और उसने गन्धकीय जीवाणुओं का प्रभाव विस्तार के साथ लिखा भी है। तथापि इस प्रकार के निश्चित स्तर से जमने वाले गन्धक विषयक सिद्धांत निश्चित नहीं समझे जा सकते क्योंकि गोदन्ती के जमाव से गन्धक का बनना इतना व्यापक है कि उसमें सन्देह नहीं किया जा सकता और ब्लैक-सी में गन्धक जमने का उपयुक्त साधन रहते भी समुद्र की गहराई के रख खुदाई करने पर गन्धक प्राप्ति का चिह्न दिखाई नहीं देता, इसलिये स्टुजर के सिद्धांत मनन करने योग्य होने पर भी अभातक विद्वानों का इनमें सन्देह बना हुआ है।

मेडिटेरेनियन (Mediterranean) प्रदेशों में सर्वत्र व्यापक रूप से गोदन्ती के साथ गन्धक पाया जाता है। इस प्रकार के गन्धक का प्राप्ति-स्थान मुख्यतः सिसली (Sicily) है।

सिसली से लाखों मन गन्धक निकाल कर वहाँ से संसार की अधिकांश मांग पूरी की जा रही है।

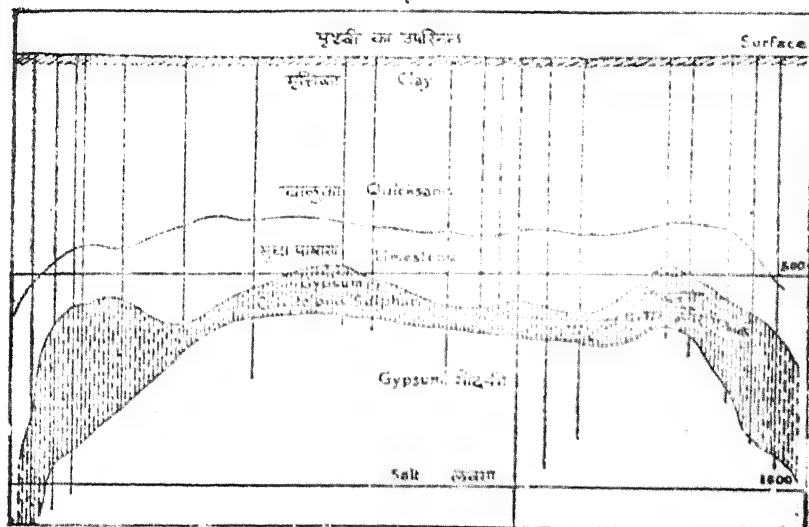
सिसली के निक्षिप्तस्तर से बनी चट्टानें कुछ सामुद्रिक और कुछ पार्थिवस्तरों से बनी हुई हैं। ये चट्टानें क्ले (Clay) से बनी हुई हैं, जिन पर डाइटोमोसेयस (Diatomaceous) और रेडियो-लेरियन (Radiolarian) जीवों के शेषांश का स्तर चढ़ा हुआ है। ऐसे भूभाग पर गन्धक उत्पन्न करने वाली गोदन्ती का विस्तृत क्षेत्र है। इस क्षेत्र का चौरस फैलाव ८०० किलोमीटर (लगभग ३०० चौरस माइल) है। इस क्षेत्र की स्थूलता (माटाई) ३०० फुट के लगभग है; जिसमें मुख्यतः गोदन्ती, चूने के पत्थर, नमक, मृत्तिका, रेणु पाषाण पाये जाते हैं। ऐसे गन्धक पैदा करने वाले क्षेत्र यहाँ पर तीन चार हैं। वहाँ पर ब्लूइश ग्रे (Bluish grey) और नील वर्ण के चूने के पत्थर में गन्धक का प्रसार पाया जाता है। इसके अतिरिक्त सेलेस्टाइट (Celestite) भी व्यापारोपयोगी मात्रा में पाया जाता है और उसके साथ साथ गन्धक, गोदन्ती, चूने का पत्थर (Calcite) व कभी बेराइट (Barite) बहुत ही सुन्दर रंगों के रूप में पाली जगहों में जमा पाये जाते हैं। इनके इस प्रकार के जमाव बहुत दर्शनीय रत्नावली के समान रम्य दिखाई पड़ते हैं। सम्भवतः इसी स्थान और दृश्य का देख कर गन्धक के उत्पत्ति प्रकरण में प्राच्य रसायन विज्ञान ने स्थान के वर्णन में लिखा है कि—

श्वेतद्वीपे पुनः देवी सर्व रत्न विभूषिते ।

सर्वकाममये रम्ये तीरे क्षीरयोनिः ॥ इत्यादि

सिसली के जमाव में ८ से २५ फी सदी गन्धक मिला पाया जाता है।

चित्र
१



गन्धक उत्पन्न करने वाले भूभाग का 'वर्टिकल सेक्शन' (परिच्छेद) जो काल्केसीयु पेरिश ल्युसियाना में है। (कर्वि थामस के चित्र के अनुसार)

इस चित्र के देखने से यह स्पष्ट होजाता है कि प्रकृति में गन्धक, गोदन्ती और चूने का कितना घनिष्ट सम्बन्ध है, इसी लिये ऊपर विशेष रूप से दिखाया गया है कि गन्धक गोदन्ती की ही रासायनिक प्रतिक्रिया से उत्पन्न होता है। रस शास्त्री भी

गोदन्ती का श्वेत गंधक मानते रहे हैं। इसका स्पष्टीकरण अन्यत्र किया जायगा।

टर्शरी (Tertiary) और क्रिटेशस (Cretaceous) आयु के क्षेत्र जो लुसियाना (Louisiana) व टेक्सास (Texas) के समुद्र तट (Sea Coast) के नीचे हैं, वहाँ पर गन्धक बहुतायत से पाया जाता है। सन् १८६५ ई० में एक असाधारण गन्धकीय दीर्घ जमाव कालकेसीयु पेरिश (Calcasieu Parish) २३० माइल न्यू ओर्लियन्स (New Orleans) लुसियाना में पाया गया था, जिसकी गहराई टर्शरी और क्रिटेशस आयु की मृत्तिका, बालु, सुधापाषाण के नीचे ४४३ फुट की है। वहाँ पर बोरिंग (कूप खनन) करने से विदित हुआ है कि १०० फुट की मोटी तह ताँ प्रायः शुद्ध गन्धक ही के जमाव की है और उसके नीचे बहुत बड़ा गन्धकोत्पादक गोदन्ती का जमाव है। (पिछले प्रश्न के विषय को देखें) इस सम्बन्ध में यह भी पूर्णतया विदित हुआ है कि यह जमाव गल्फकोस्ट (Gulf Coast) की किसी एक लवण की बड़ी गुम्मज (Domes) के उपरि भाग में हुआ है। इस प्रकार के गन्धकीय जमाव अन्यत्र गल्फकोस्ट के किनारे किनारे अनेक स्थानों में पाये जाते हैं। टेक्सा की ब्राज़ोस (Brazos) नदी के मुख के पास भी ऐसा ही गन्धकीय जमाव पाया गया है। वहाँ गन्धक निकालने का काम फ्री पोर्ट सल्फर कम्पनी बहुत उत्तमतरा से चला रही है। यहाँपर गन्धक का क्षेत्र ७५० फुट की नीचाई पर कंकर (Gravel) रेत (Sand) और मृत्तिका (Clay) के नीचे पाया गया है। इसके भी १५० फुट नीचे गन्धक उत्पन्न करने वाले, सुधा

पाषाण, गोदन्ती, डोलोमाइट (Dolomite) हैं। जिनमें १० से ५० फी सदी तक गन्धक प्राप्त हो सकता है। ये क्षेत्र गोदन्ती, सुधापाषाण और रेणुका-पाषाणों से आच्छादित हो रहे हैं।

अब तक सिसली की खान से वार्षिक ४,५०,००० मेट्रिक टन गंधक निकालकर संसार की आवश्यकता पूर्ति होती रही है। किंतु सन् १९०१ में फ्राश (Frasch) विधि का आविष्कार होने से व्यापारिक स्थिति का परिवर्तन हो गया और युनाइटेड स्टेट ने २,००,००० से ३,००,००० टन तक गन्धक की निकासी की जिससे सिसली की प्रधानता नष्ट हो गई।

सन् १९१५ में सिसली से ३,६४,२६० मेट्रिक टन गन्धक निकाला गया था और उसी समय में युनाइटेड स्टेट्स में से ४,००,००० टन गन्धक की निकासी की गई। आजकल गन्धक की निकासी करनेवाला सबसे अधिक व्यवसाय युनाइटेड स्टेट्स आफ अमेरिका में होता है, तथापि संसार की गन्धक सम्बन्धी आवश्यकता उक्त दोनों देशों के सम्मिलित गन्धकीय व्यवसाय से पूरी हो रही है।

गन्धक निकालने के व्यवसाय में इस समय तक युनाइटेड स्टेट्स आफ अमेरिका की निम्नलिखित रियासतें प्रधान गिनी जा सकती हैं। ल्यूसियाना, टेक्सास, व्योमिंग, नवाडा।

गन्धक का व्यापारिक उपयोग।

संसार के अनेक प्रकार के व्यवसाय में गन्धक का उपयोग होता है, तथापि नीचे लिखे रासायनिक धन्धों में इसका उपयोग आधिक्य से होता है—

१. गन्धकाम्ल (गन्धक का तेजाब) निर्माण ।
२. सल्फर डाई थाय्क्साइड बनाकर रङ्ग उड़ाने का व्यवसाय ।
३. अंगूर की बेलों पर मिल्ड्यू (Mildew) नामक रोग से रक्षा करने के निमित्त गन्धक छिड़कने का धन्या ।
४. बारूद (Gun Powder) बनाने का व्यापार ।
५. द्रियासलाई के निर्माण में प्रयोग ।

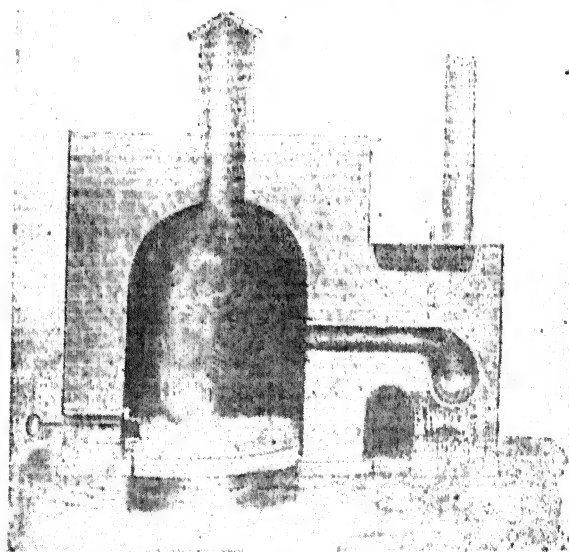
(पृष्ठ ३२२ में ३२७. मिनरल डिपोजिट्स लिन्डग्रीन द्वारा *Mineral Deposits by Lindgren.*)

गंधकयुक्त खनिजों से गन्धक का पृथक् कारण ।

गन्धक ११४°C. डिग्री के तापक्रम पर पिघलता है। पिघली हुई दशा में पार्थिव अशुद्धियों से बहाकर साधारणतया शुद्ध दशा में गन्धक अन्यत्र एकत्रित कर लिया जा सकता है। इस काम के लिए अशुद्ध प्राकृतिक गन्धक को या उसके खनिजों को ईंट के भट्टों में चुन देते हैं। यह चुनाई इस ढंग से करते हैं कि जिससे चुने हुए स्थान में वायु का सञ्चार भली प्रकार हो सके और स्थान ऐसा ढालू बना हो कि जहाँ से पिघला हुआ गन्धक नीचे की ओर बहकर आसके। इस तरह के प्रबन्ध कर प्राकृतिक गन्धक एकबार जला देने से स्वयं थोड़ा सा जलकर दूसरे को पिघला देता है और पिघला हुआ गन्धक ढालुवाँ जमीन पर से बहकर एकत्रित करने के बर्तनों में आकर जमा होता रहता है।

गन्धक ४४०°C. डिग्री के तापक्रम पर उबलने लगता है, और उस से भूरा लाल वर्ण का वाष्प निकलने लगता है जो

शीतलता पाकर फिर जमकर एकत्रित हो जाता है। इसलिये गन्धक को वाष्पीकरण क्रिया से उड़ाकर शीतल कर इसके पुष्प शुद्ध रूपमें एकत्रित किये जा सकते हैं। इस प्रकार से शुद्ध किया हुआ गन्धक अत्यन्त निर्मल होता है। इस विधि से उड़ाकर संग्रहीत किया हुआ गन्धक “पुष्पित गन्धक” (Flower of Sulphur) कहलाता है। इस विधि को सफलतापूर्वक कार्य में लाने के लिये नीचे की शकल का लोहे और ईंट का भबका काम में लाया जाता है।



चित्र नं० २

भबके में गन्धक भरकर नीचे आंच दी जाती है जिससे गन्धक पिघलकर उड़ने लगता है। उड़नशील गन्धकीय वाष्प

को भवके के साथ लगे हुये ईंट के मकान में (Brick chamber) शीतल कर एकत्रित करते हैं, पर बार बार उष्ण वाष्प के जाने से जब फिर वहां का एकत्रित गन्धक पुनः पिघलकर बहने लगता है तब उसे लकड़ी के नालीदार सांचों में ढालकर शीतल होनेपर निकाल लेते हैं। इस विधि से बनाया हुआ गन्धक बाजारों में बर्त्ता का गन्धक या ब्रामस्टोन (Brimstone) के नाम से विक्रय आता है। चित्र नं० २ के आकार के भवके में गन्धक उड़ाकर शोधन किया जाता है।

साधारण तापक्रम पर गन्धक हलका सा पीला रहता है। $115^{\circ}\text{C}.$, डिग्री के तापक्रम पर यह पिघलने लगता है, और उससे कुछ अधिक तापक्रम पर इसका हलका पीला पिच्छिल द्रव हो जाता है। ज्यों ज्यों ताप अधिक बढ़ता जावेगा त्यों त्यों गन्धक का द्रव अधिक पिच्छिल और घन में कृष्णतायुक्त होता जावेगा, $250^{\circ}\text{C}.$, डिग्री तापक्रम पर यह प्रायः सर्वोश में कठिन और कृष्णवर्ण का हो जाता है। $250^{\circ}\text{C}.$, डिग्री तापक्रम से अधिक तापक्रम बढ़ने पर यह कठिनता से फिर द्रवावस्था में परिणित होने लगता है और $480^{\circ}\text{C}.$, डिग्री के तापक्रम पर उबलने लगता है और उसमें से भूरी सी लाल रंग की वाष्प निकलने लगती है, यदि इसको और अधिक तापदे तो $500^{\circ}\text{C}.$, डिग्री तापक्रम पर यह गहरा लाल वर्ण का हो जाता है और ततोधिक तापक्रम पर $550^{\circ}\text{C}.$, डिग्री के लग-भग पुनः पुवाल के रंग का पीला हो जाता है। यदि गन्धक को $350^{\circ}\text{C}.$, के तापक्रम पर उष्णकर किसी शीतल जल के बर्तन में ढालदे तो उसमें खड़ का सा लज्जालापन आ जावेगा और यह हाथ से भला प्रकार दबाया जा सकेगा। इसी गुण के

कारण इसे नम्य-गन्धक या प्लाष्टिक सल्फर (Plastic Sulphur) कहते हैं। प्राचीन आर्य रसायनज्ञों ने इसका नाम बलीवसा (गंधक की चर्बी) रखा है और यह नामकरण अधिक उपयुक्त है। इसका विवरण अन्यत्र प्राच्य गंधक के वर्णन में लिखा जायगा। जितने तापक्रम पर गंधक के परिवर्तन होते हैं उतने ही परिवर्तन प्रतिलोम दशा में भी शीतल होने के क्रम में दिखाई देंगे।

(Tutorial Chemistry Part I non metals. By G.H. Bailey D.Sc. Page 285 to 287—तथा रास्को शाले-
मर केमिस्ट्री ४४३ के आधार पर)

गंधक की विभिन्नरूपता

प्रकृति में गंधक अनेक प्रकार के रूपों में पाया जाता है और इसके विभिन्न रूपों में विशिष्ट प्रकार के वैलक्षण्य रहते हैं। सामान्यतः तीन प्रकार के रूपों में प्रायः गन्धक मिला करता है—

(१) खेदार गन्धक (Crystalline Forms)

(क) अष्ट फलकीय खेदार गंधक (Octahedral Sulphur)

(ख) त्रिपार्श्वीय खेदार गंधक (Prismatic Sulphur)

(२) बिना खेदार गंधक (Amorphous Forms)

(क) नम्य गंधक (Plastic Sulphur)

(ख) श्वेत, रंग रहित (white Amorphous)

(ग) पीत, रंग रहित (yellow Amorphous)

(३) द्रवित गंधक (Colloidal Sulphur)

द्रवित गंधक—गंधक का जलीय विलयन है। साधारण विलयन और इस विलयन में भेद यह है कि इसके कारण

विलयन दशा में भी साधारण विलयन की अपेक्षाकृत अस्वच्छ होता है तथापि यह स्वयं तलकूट के रूप में मटीले जल की तरह बैठ नहीं जाता है। इसके कण परम सूक्ष्म दर्शक (Ultra microscope) यन्त्र से देखे जा सकते हैं, अन्य विलयन के कण नहीं देखे जा सकते, यही द्रवित गंधक की विशेषता है।

(१) अष्ट फलकीय गंधक (Octahedral Sulphur).

इस प्रकार का खेदार गंधक प्रकृति में कहीं कहीं पाया जाता है। कार्बन बाईसल्फाइड (Carbon Bisulphide) के विलयन में गंधक घुलनशील है। यदि इसमें गंधक को घुला दें तो मन्दताप के वाष्पीभवन (Evaporation) पर अष्ट फलकीय रवों के रूप में गंधक के खे बन जायेंगे। इसका विशिष्ट गुरुत्व २.०४४ है।

(२) त्रिप्रास्तिक गंधक (Prismatic Sulphur).

इस रूप का गंधक बहुत ज़ोंटे ज़ोंटे कणों के रूप में पाया जाता है। इसका विशिष्ट गुरुत्व कम होता है १.९३ ही है और यह ११५°C. डिग्री के तापक्रम पर न पिघल कर १२०°C. डिग्री तापक्रम पर पिघलता है। यदि कुछ काल तक साधारण तापक्रम पर इसे इसी रूप में रहने दिया जाय तो यह अपने इस रूप को बदल कर स्थायी रॉम्बिक (Rhombic) रूप में परिणत हो जाता है। यह कार्बन बाईसल्फाइड द्रव में विलयनशील है।

प्रयोग—२५. ताला गंधक एक चीनीभिट्टी के प्याले (Crucible) में पिघला कर इतना शीतल होने दें कि जिससे उसके ऊपरी भाग पर पपड़ी सी जम जावे। इस पपड़ी को

तोड़कर नीचे जो पिघला हुआ गंधक है वह दूसरे बर्तन में डाल दो और फिर ध्यान से पपड़ी के नीचे और प्याले के किनारे देखांगे तो सुई के से बारीक बारीक गंधक के रवे जमे हुए दिखाई देंगे। ये ही त्रिपार्श्विक रवेदार गंधक के कण हैं।

(३) नम्य गंधक (*Plastic Sulphur*).

पहिले लिखा जा चुका है कि 35°C ., डिग्री तापक्रम पर पिघले हुए गंधक को शीतल जल में ढालने से नम्य गंधक प्राप्त होता है, साधारण रवों के रूप में गंधक भंगुर होता है, किन्तु इस रूप में नाम ही के अनुरूप यह अंगुलियों से मोड़ा जा सकता है और रबड़ की भाँति स्थिति स्थापक है, धागों के रूप में बढ़ाया जा सकता है। अन्य गन्धकीय रूपों की तरह यह कार्बन बाईसल्फाइड में विलयनशील नहीं है। इसका विशिष्ट गुरुत्व 2.06 है। रखे रहने पर यह धीरे धीरे कठिन होजाता है और प्राकृतिक गन्धक के रूप को पुनः धारण कर लेता है।

श्वेत गंधक रवे रहित (*White Amorphous Sulphur*)

जब नमक का तेजाब (*Hydrochloric acid*) पोलिसल्फाइड (*Polysulphide*) के विलयन के साथ मिलाया जाता है, तब बहुत सूक्ष्म भागों में विभक्त सफेद रंग के चूर्ण का सा गंधक तलछट बैठ जाता है। इस तलछटी कृत गन्धक को गन्धक का दूध (*Milk of Sulphur*) कहते हैं। यह प्लोपेथिक चिकित्सा में व्यवहार किया जाता है। कार्बन बाईसल्फाइड में यह विलयनशील नहीं है।

पीत गन्धक रंग रहित (*Yellow Amorphous Sulphur*).

पहिले ही लिखा जा चुका है कि जिस प्रकार गन्धक के पुष्प गन्धक उड़ाकर तय्यार किये जाते हैं, ठीक उसी प्रकार गन्धक के वाष्प को शीतल करके यह रूप प्राप्त किया जाता है, गन्धक का यह स्वरूप कार्बन बाईसल्फाइड के विलयन में घुलनशील नहीं है।

(४) कोलाइडल सल्फर (*Colloidal Sulphur*).

यह जलीय घोल है। सल्फ्युरेटेड हाइड्रोजन और सल्फर डाई ऑक्साइड के विलयनों के मिश्रण से यह बनता है।

गन्धक के अनेक भिन्न भिन्न रूप रहते भी सबमें गन्धक का असली स्वरूप एकही सा रहता है, जिसकी सत्यता का अनेक प्रकार से परीक्षण कर निर्णय किया जा सकता है।

साधारण परीक्षण विधि यह है कि उक्त गन्धकीय स्वरूपों में से किसी एक को लेकर यदि खुले स्थान के वायु में जलायें तो साधारण शुद्ध गन्धक के जलाने से जो परिवर्तन होता है वही परिवर्तन इस प्रकार के गन्धक के जलने से भी होगा। अर्थात् वायु के ऑक्सिजन के साथ गन्धक का नियत परिमाण वाष्परूप में मिलकर एक यौगिक बनेगा, इस यौगिक को सल्फर डाई ऑक्साइड कहते हैं।

उपरोक्त गन्धक के सब रूपान्तरों को देखने से और उस पर तापक्रम के प्रभाव को विचार करने से स्पष्ट है कि प्रकृति में खनिज गन्धक पीतवर्ण वाला ही उत्पन्न होता है। शेष रूप

सब उसके विकृत या अवस्थान्तर के भेद मात्र हैं। कृष्ण और रक्त वर्ण केवल ताप के प्रभाव से ही पैदा होते हैं।

सम्भवतः इसीलिये रसरत्न समुच्चय के संग्रहकर्ता ने गन्धक प्रकरणा में गन्धक के रक्त और कृष्णवर्ण के विषय में लिखा है कि :—

रक्तश्च शुक्रतुंडाख्यो, धातुवाद विधौ मतः ।

दुर्लभः कृष्णवर्णाश्च, सजराभृत्यु नाशनः ॥

इस पद्य का तात्त्विक अर्थ यही समझना चाहिये कि गन्धक के रक्त और कृष्ण वर्ण धातुवाद विधि में हैं, अर्थात् रसायनशाला में या प्रकृति की रहस्यमयी शाला में धातुओं पर तापक्रम का प्रभाव पड़ने से जो रूपान्तर होता है उसी दशा में ये परिवर्तित वर्ण पैदा होते हैं। पर कृष्णवर्ण अधिक ताप पर अस्थायी है इसलिये दुर्लभ शब्द का प्रयोग किया गया है। सम्भव है उस समय कोई विशेष युक्ति रही हो कि जिस से उच्च तापक्रम पर भी गन्धक की कृष्णावस्था स्थिर रखकर औषधि में प्रयोग किया जाता रहा हो, पर इस विधि की कठिनता या असफलता देखकर दुर्लभ शब्द को जोड़कर भाव व्यक्त कर दिया है। किन्तु आधुनिक नव्य शोधों और परीक्षणों के बल पर यह निःसन्देह कहा जा सकता है कि इस प्रकार के रक्त और कृष्ण गन्धक के वर्ण तापक्रम की न्यून-धिकता पर ही निर्भर हैं। आजतक प्रकृति के रहस्य शोधकों को कृष्ण या लाल वर्ण का गन्धक भूमण्डल पर प्राप्त नहीं हुआ, इसलिये धातुवाद विधि में इस पद्य को समन्वित कर अर्थ समझने की चेष्टा करना सर्वथा उचित कर्तव्य की सीमा के अन्दर है। गन्धक पर तापक्रम का क्या प्रभाव पड़ता है

वह पूर्व ही लिखा जा चुका है। उक्त पद्य में किसी किसी संग्रहकार ने "मतः" के स्थान पर "वरः" शब्द का प्रयोग किया है। पर मेरी सम्मति में मतः पाठ ही ठीक है। क्योंकि आजकल के वैज्ञानिक विचारों को प्राचीन रसशास्त्रियों के विचारों के साथ मिलाकर अध्ययन करने से शब्द और लेखन प्रणालिका तो बहुत वैचित्र्य मालूम होता है किन्तु तात्विक भावार्थों में और द्रव्यों के निर्णय में कोई विशेष अन्तर ज्ञात नहीं होता। ऐसी दशा में वही पाठ और विचार ठीक समझने का प्रयास करना चाहिये जो प्रत्यक्ष अनुमान आदि की कसौटी पर कसने के बाद विज्ञान सम्मत हो और चिकित्सा-पयोगी सामग्री संग्रह करने में सहायक हो। इसलिये उपरोक्त पद्य का खुलासा भाव "प्रताप पद्धति" के निम्नलिखित पाठ द्वारा व्यक्त करना अधिक उपयोगी है—

रक्तश्च कृष्ण वर्णाक्ष्य, धातुवाद विधौ मतः ।

तापक्रमे विनिष्ठत्वात् रक्त कृष्णश्च दुर्लभौ ॥

आयुर्वेद के रसग्रन्थों में गन्धक उपरन्धों में माना गया है। आजकल भी "धातु" और "अधातु", के नाम से द्रव्यों का वैज्ञानिक, नीचे लिखे तारतम्य को देखकर विभिन्नता करने का प्रयत्न करते हैं। वस्तुतः यह निर्णय बहुत सूक्ष्म है और इस की व्यापकता पर सन्देह उत्पन्न हो सकता है। तथापि परंपरा से शैली चली आई है, इसलिये इसका संक्षेप में स्पष्टीकरण प्रासंगिक है। जैसे आयुर्वेद के अनेक रसग्रन्थों में धातु, उपधातु, रस, उपरस, रज, उपरज, अनेक मतों से माने गये हैं उसी प्रकार आधुनिक रसायन विज्ञान ने भी रासायनिक तत्वों को धातु

अधातु, नामक दो विभागों में विभक्त कर दिया है। जिनके उदाहरण निम्नांकित हैं।

धातु (metals)	अधातु (non metals)
१ लोह	१ गंधक
२ पारद	२ कार्बन
३ सुवर्ण	३ हीरक
४ रजत	४ ग्रेफाइट
५ ताम्र	५ फास्फरस
६ नाग	६ सिलिकन
७ वंग	७ बोरॉन
८ यशद आदि	

आगे लिखी विशेषता वाले रासायनिक तत्व धातु समझे जाते हैं—

(१) पारद के अतिरिक्त साधारण ताप क्रम पर धातु घन (ठोस) होते हैं।

(२) धातुओं में एक विशेष प्रकार की चमक होती है, उसे धातुशुति (Metallic Lustre) कहते हैं।

(३) धातुओं का घनत्व अधिक होता है, इसलिये ये विशेष भारयुक्त होते हैं।

(४) हथौड़े से कूटने पर धातु, पत्तर या तारों के रूप में परिवर्तित हो जाते हैं। अतः धातु आघात वर्धनीय और तान्त्रत्व वाले माने जाते हैं।

(५) सब धातु अपार दर्शक होते हैं अर्थात् इनके द्वारा प्रकाश प्रवेश नहीं कर सकता।

(६) धातु ताप और विद्युत् के उत्तम चालक समझे जाते हैं।

(७) धातु प्रायः बहुत ऊँचे तापक्रम पर ही वाष्प रूप में परिणत होते हैं।

इसी प्रकार नीचे लिखी विशेषता वाले रासायनिक तत्व अधातु समझे जाते हैं—

(१) असाधारण ताप क्रम पर अधातु, गैस, द्रव, या घन रूप में पाये जाते हैं।

(२) अधातुओं में प्रकाश परिवर्तन करने की क्षमता नहीं होती, इस लिये साधारणतः इनमें किसी प्रकार की विद्युत् चमक नहीं रहती।

(३) अधातु साधारण तापक्रम पर घनावस्था में प्राप्त होते हैं।

(४) अधातुओं का सामान्यतया घनत्व (घनत्व) कम होता है।

(५) अधातु ताप और विद्युत् के अचालक (Non Conductor) या कुचालक (Bad Conductor) समझे जाते हैं।

जो अधातु साधारण ताप क्रम पर गैस के रूप में नहीं रहते वे निम्न तापक्रम पर ही गैस के रूप में परिणत हो जाया करते हैं। किन्तु कार्बन (कोयला) सिलिकन (बालुका-तत्व) बोरॉन (सुहागा तत्व या टंकगात्र) इस नियम के अपवाद हैं। अर्थात् ये द्रव्य निम्नश्रेणी के तापक्रम पर गैस रूप में परिणत नहीं होते। उक्त भेदों के अतिरिक्त धातु अधातु में रासायनिक गुणों में भी अन्तर रहता है। पर तत्वों का यह विभाग कृत्रिम है, वस्तुतः धातु और अधातु में विशेष भेदक

कोई नियम नहीं होता। क्योंकि सुवर्ण और प्लेटिनम धातु साधारणतया धातुद्युति वाले हैं, पर ये ऐसी स्थिति में भी प्राप्त किये जा सकते हैं जिनमें धातुद्युति एकदम न रहे। इसी प्रकार साधारणतया कार्बन अधातु, धातुद्युति रहित होता है, किन्तु यह हीरा और ग्रेफाइट के रूप में अत्यन्त चमकदार धातुद्युति सदृश द्युतिवाला पाया जाता है। ठीक इसीतरह यह नियम कि धातु भारी होते हैं और अधातु हलके किन्तु इस नियम के अपवाद स्वरूप सोडियम और पोटैशियम धातु हैं जो इतने हलके होते हैं कि पानी पर तैरते हैं।

धातुओं में घनत्व अधिक होता है पर ऐसे भी धातु हैं कि जिनका घनत्व बहुत कम होता है। मैग्नेसियम, और एलुमिनियम धातु इस श्रेणी के हैं। इनका घनत्व १.७५ और २.६ क्रमशः होता है। दूसरी ओर अधातु श्रेणी के तत्वों में भी ऐसे द्रव्य हैं जिनका घनत्व अधिक है। हीरा इस श्रेणी के अधातु का उदाहरण हो सकता है। हीरे का घनत्व ३.५ है। धातु ताप और विद्युत् के सुचालक समझे जाते हैं और अधातु कुचालक, पर इसके भी अपवाद हैं। ग्रेफाइट के रूप में कार्बन अधातु होता हुआ भी विद्युत् का सुचालक है। धातु ऊँचे तापक्रम पर ही वाष्प के रूप में परिणत होते हैं, किन्तु कार्बन, सिलिकन, और बोरॉन अधातुओं को वाष्प रूप में परिवर्तित करना धातुओं की अपेक्षा कहीं अधिक कठिन है। इनके अतिरिक्त कुछ ऐसे रासायनिक तत्व, आर्सेनिक, एन्टिमनी, आदि हैं कि जिनमें धातु और अधातु के गुण मिश्रित पाये जाते हैं। आर्सेनिक (संखिया) और एन्टिमनी में धातु

की सी छति रहती है और ये ताप और विद्युत् के सुचालक भी हैं किन्तु रासायनिक गुणों में ये अधातु सदृश होते हैं। ऐसे तत्त्वा को, जिनमें अधातु और धातुओं के मिश्रित गुण मिलते हैं, उन्हें उपधातु कहते हैं। आर्य रसशास्त्र में धातु-पधातु, रसोपरस, रत्नोपरत्न किस सिद्धांत पर स्थिर किये गये हैं, इसका विशद विवरण प्रचलित किसी रसग्रन्थ में प्राप्त नहीं होता। किन्तु मेरा विश्वास है कि अन्वेषण करने पर किसी दिन इस सिद्धांत का भी अवश्य पता लग जायगा। इसके लिए अनेक ग्रन्थों की खोज और सूक्ष्म रीति से अध्ययन करने की परमावश्यकता है।

गंधकोत्पत्ति विषयक प्राच्यमत ।

गंधकस्य तु माहात्म्यं तद्गुह्यं वद मे विभो ।
 श्वेतद्वीपे पुरा देवि सर्वरत्नविभूषिते ॥१॥
 सर्वकाम मये रम्ये तीरे क्षीरपयोनिधौ ।
 विद्याधरीभिर्मुष्याभिरंगनाभिश्च यांगिनाम् ॥२॥
 सिद्धाङ्गनाभिः श्रेष्ठाभिस्तथैवाप्सरसां गणैः ।
 देवाङ्गनाभि रम्याभिः क्रीडन्तीभिर्मनोहरम् ॥३॥
 गीतैर्नृत्यैर्विचित्रैश्च वाद्यैर्नानाविधैस्तथा ।
 एवं संक्रीडमानायाः प्राभवत् प्रसृतं रजः ॥४॥
 तद्रजोऽतीव सुश्रोणि सुगन्धि सुमनोहरम् ।
 रजसश्चातिबाहुन्याद्वासस्ते रक्ततांगतम् ॥५॥

तत्र त्यक्त्वा तु तद्द्वस्त्रं सुस्नाता क्षीरसागरे ।
 ऊर्मिभिस्तद्रजावस्त्रं नीतं मध्ये पयोनिधौ ॥६॥
 एवं ते शोणितं भद्रे प्रविष्टं क्षीर सागरे ।
 क्षीरगन्धे मथने चैतद्मृतेन सहोत्थितम् ॥७॥
 निजगन्धेन तान्सर्वान् हर्षयन् दैत्यदानवान् ।
 ततो देवगणैरुक्तं गन्धकाख्यो भवत्वयम् ॥८॥
 ये गुणाः पारदे प्रोक्तास्ते चैवात्र भवन्तिवति ।
 रसस्य बन्धनार्थाय जारणाय भवत्वयम् ॥९॥
 इति देवगणैः प्रीतैः पुरा प्रोक्तं सुरेश्वरि ।
 तेनाऽयं गन्धको नाम विख्यातः तितिमण्डले ॥१०॥

(रसरत्न समुच्चय मूल पृष्ठ २५)

उक्त पाठ में किसी महानुभाव ने प्रकृति को केवल स्त्री समझ कर छठे श्लोक के साथ आधा अनुष्टुप अपनी ओर से मिला दिया ऐसा प्रतीत होता है। मेरी राय में ऐसे गन्ध-कोत्पत्ति प्रसंग में इस अंश के लिखने की किसी दशा में भी आवश्यकता नहीं थी। अतः “वृत्तादेवाङ्गनाभिस्त्वं कैलासं पुनरागता” यह पाठ निकाल दिया गया है। इस उत्पत्ति विषयक वर्णन में साढ़े तीन श्लोक द्वारा तो प्रकृति का सौन्दर्य दर्शन कराया है जो श्वेतद्वीप (सिसली) के लिये वर्तमान समय में भी दृष्टव्य है। साढ़े तीन श्लोक के आगे से लगा कर साढ़े छः तक के पद्यों में गन्धक का हाइड्रोजन सल्फाइड के रूप में उष्ण स्रोतों से निकल कर समुद्र में प्रवेश विधि का विधान है।

इसका विस्तृत वर्णन स्टुजर नामक विद्वान का मत उल्लेख करते समय पहिले ही किया जा चुका है।

“तद्रजोऽतीव सुश्रोणि सुगन्धि सुमनोहरम् ।”

इतने मात्र में वहाँ के स्रोतों की उष्णता पर गंधक का रक्त परिवर्तन, गंधक डाईश्रोक्साइड और सल्फ्युरेटेड हाईड्रोजन की गन्ध व सौन्दर्य का वर्णन कर दिया है। “रजसश्चाति बाहुल्याद्वासस्ते रक्ततां गतः” इस उल्लेख से गन्धक का रक्त वर्णोत्पादक तापक्रम पर आधिक्य से द्रवरूप में श्रोत से निकल कर आसमुद्रान्त भूमंडल पर प्रसार दिखाया है।

“तत्रत्यक्त्वातु तद्वर्षं सुस्नाता क्षीरसागरे ।”

इससे समुद्र तट का आंशिक भाग गंधक युक्त समुद्र में निमग्न हो गया उसका दिग्दर्शन है।

“उर्मिभिस्तद्रजो वल्लं नीतं मध्ये पयोनिधौ ।”

इस अंश से शेषांश गंधकीय भूभाग से जलतरङ्ग न्याय से सल्फ्युरेटेड हाईड्रोजन का जनैः शनैः समुद्र में जाकर प्रवेश होने का सिद्धांतवाद है।

“क्षीराब्धि मथने चेतदमृतेन सहोत्थितः ।”

इस से स्पष्ट है कि समुद्र की तलछट से ही गंधक प्रथम बार निकाला गया। समुद्र में गंधक कैसे उत्पन्न होता है इसका वर्णन अन्यत्र भली प्रकार किया जा चुका है।

“भिज गंधेन तान्सर्चान् हर्षयन्दैत्यदानवान् ।

ततो देव गणो रुक्तं गंधकारुयो भवत्वयम् ॥”

इस अवतरण से साफ़ जाहिर है कि सल्फ्युरेटेड हाइड्रोजन की उग्र गन्धक का पता लगाकर अनार्य शोधक लोग प्रसन्न हुवे और आर्य गुरुओं ने गंधक की विशिष्ट गंध पर मुग्ध होकर गंधक ही नाम करण कर दिया। शेष श्लोकों में गुण और उपयोग स्पष्ट लिखा है।

यदि हम इस औपन्यासिक आख्यायिका के तत्व को सोधी-सार्दी बोल चाल की भाषा में लिखने का प्रयास करें तो मेरी सम्मति में नीचे लिखे अनुसार लिखा जा सकता है। श्वेत दीप (सिसली) में अत्यन्त सुन्दर अनेक प्रकार के रत्नाभ खनिजों से विभूषित एक समुद्र तट है। वहां की अलौकिक ऋटा ऐसी मनोहारिणी है कि मानो प्रकृति स्वयं रूप धारण कर अनेक प्रकार के प्राकृतिक रम्य दृश्यों और मधुर ध्वनियुक्त वृत्त लतादि विकृजित वात निनाद से गन्धर्व गायन का हास्य करती हुई जीवधारियों को परम सुख पहुँचा रही थी कि उसी समय वहांपर सहसा अत्यन्त उष्ण तापक्रम पर किसी गुहा ज्वालामुखी के उद्गम से गन्धक युक्त रम्य उष्ण-श्रोत का बृहत् प्रस्त्राव आसमुद्रान्त भूभाग पर प्रस्त्रवित हो गया, और वह जलतरंग न्याय से शनैः शनैः समुद्र में प्रवेश करने लगा तथा कालान्तर में तलछटी भूत गन्धक के जमाव के बाहर प्रगट होनेपर खनिज शोधकों ने हाइड्रोजन सल्फाइड की उग्रगन्ध से या सल्फर डाई ओक्साइड की महक से उसका पता लगाया। उसमें उग्रगन्ध देखकर गन्धक ही नाम रख दिया। बादमें प्रयोग कर देखा और पारद के साथ इसके प्राकृतिक हिंगुल आदि यौगिक देखकर पारद के वन्धन, जारण आदि क्रियाओं

में उपयोग प्रारम्भ कर दिया। इस भाव को यदि प्रताप-पद्धति के पद्यों में नीचे लिखे अनुसार व्यक्त किया जाय तो सम्भव है आगे के विद्यार्थियों को गन्धकोत्पत्ति समझने में कम उलझन हो।

रम्य भूमि गते स्त्रावे गलिते गन्धकस्य च ।
ज्वालामय नगादूर्ध्वमुष्णस्रोतःसमुद्भवे ॥
याते पृथिव्याः गर्भात्तु बहिर्भाराधराश्रये ।
रजोवशाञ्च सम्प्राप्ता उष्णतापक्रमान्विताः ॥
गन्धकाश्चाढ्यतां प्राप्ता रसयुक्ते धरातले ।
कालक्रमेविपाकेन नीतामध्यं पयोनिधेः ॥
पार्थिवं रूपमासाद्य तत्राकाराः समाभवन् ।
स्वनिरूपेणतम्प्राप्य गन्धकद्रव्यसंचयम् ॥
गन्धात्तु शोधकैरुक्तं गन्धकाख्यो भवन्वयम् ।

यदि रसरत्नसमुच्चयोरुक्त वगण में देवाङ्गना आदि की गीत-नृत्य वा कथा निकाल दी जाय तो आज कल गन्धक की उत्पत्ति का संक्षेप में जो सिद्धान्त है वह खूब समझा जा सकता है। यह सिद्धान्त पूर्व में विस्तार के साथ लिखा जा चुका है किन्तु फिर यहाँ संक्षेप में लिख देने से तरतम भाव देखने का अच्छा अवसर मिल सकेगा।

(१) गन्धक-हाइड्रोजन सल्फाइड (हाइड्रोजन नामक गैस और गन्धक का यौगिक) के रूप में जल के साथ मिलकर अनेक स्रोतों द्वारा अन्त में समुद्र में प्रवेश करता है या बन्द समुद्र में ही अनेक प्रकार की प्राकृतिक क्रियाओं से उत्पन्न होता है। साधारणतया सूक्ष्म गन्धकोत्पादक जीवाणुओं की प्रतिक्रिया

से "हाइड्रोजन सल्फाइड" का "हाइड्रोजन" वायु के "ऑक्सिजन" के साथ मिलकर जल (H_2O) बनाता है और गन्धक पृथक् होकर समुद्रतल में बारीक चूर्ण के रूप के स्तरों में जमता रहता है। यही सिद्धान्त तांत्रिक भाषा में हमारे रस शास्त्रों में वर्णित है।

(२) दूसरा एक सिद्धान्त गन्धक की उत्पत्ति का आज कल यह है कि प्रकृति में गन्धक चूने के साथ मिलकर कैल्सियम-सल्फेट (चूने और गन्धक का यौगिक गोदन्ती) बन जाता है। यह कैल्सियम-सल्फेट पानी में घुलकर स्रोतों द्वारा किसी स्थिर जलाशय में जाकर जमा होजाता है और उस जलाशय का कालक्रम से जल सूख जाने पर वहीं तलछट के रूप में बैठ जाता है। इस तलछट के ऊपर अनेक जलीय व सड़ी हुई वनस्पतियों की या जावाणु सम्बन्धी प्रतिक्रिया होने से कैल्सियम-सल्फेट का ऑक्सिजन पृथक् होजाता है और कैल्सियम-सल्फाइड रह जाता है। इस पर धीरे धीरे वायु के कार्बन-डाई-ऑक्साइड गैस का प्रभाव पड़ता है जिससे "कैल्सियम-सल्फाइड" से कैल्सियम-कार्बोनेट (चूने का पत्थर) बन जाता है और गन्धक अलग हो जाता है। इस प्रकार से उत्पन्न हुए गन्धक के प्राप्त होने का सब से उत्तम ज्ञातस्थान "सिसली" है। यहाँ से ही गन्धक निकाल कर अधिकांश में संसार की गन्धक सम्बन्धी माँग पूरी की जा रही है। गन्धक-उत्पत्ति विषय के सिद्धान्त की उक्त विधि ही प्रधान समझी जाती है, क्योंकि भूमंडल के अनेक भागों में साधारणतया गन्धक चूना और गोदन्ता के साथ ही प्रायः मिलता है। सिसली के गन्धक प्राप्ति स्थान का वर्णन पूर्व में

किया जा चुका है। आर्य-रसशास्त्री भी यह जानते थे कि गोदन्ती और चूने के साथ गन्धक प्राप्त होता है और उस खनिज को उन्होंने श्वेत-गन्धक के नाम से अभिहित किया है—

“श्वेताऽत्र खटिका प्राक्ता लेपने लोह मारणे”

(रसज्ञानमुक्तवय ४० २६)

इस अवतरण को देखने से यह निश्चय पूर्वक कहा जा सकता है कि गोदन्ती के योग में गन्धक है इसका आर्य-शास्त्रियों को पूर्ण रूप से परिचय था। इसीलिये उन्होंने इतना स्पष्ट लिख दिया है कि श्वेत गन्धक जो प्रकृति में प्राप्त होता है खटिका जाति का है और लेप के लिये तथा लोहमारण आदि उपयोगी कार्यों में व्यवहृत होता है। आजकल भी गोदन्ती ठीक इसी कार्य में उपयोग किया जाता है। अस्थिभंग होनेपर उसे समानावस्था में रखने के लिये ‘प्लास्टर आफ़ पेरिस’ का लेप किया जाता है। यह प्लास्टर आफ़ पेरिस गोदन्ती को फूँककर बनाया जाता है। इसी भस्म से रसायनशाला में काम आने वाले भाँड, मूषा, शराब आदि तय्यार कर अनेक प्रकार के लोह आदि खनिजों का मारणादि परीक्षण करते हैं। गोदन्ती को हरिताल और विष मानना सरासर भूत है। गोदन्ती चूना और गन्धक का योगिक है। इस की भस्म कई माथा की मात्रा से अनेक रोगों में व्यवहार करने का मुझे प्रतिदिन अवसर मिलता है। हिन्दू विश्वविद्यालय के मिरीमिक्स (कुम्हारगिरी) के विभाग में मनों गोदन्ती फूँक कर मूषा, शराब, खिलौने आदि बनाने की शिक्षा देने की व्यवस्था है।

जो चाहे प्रत्यक्ष कर सकता है। प्रकृति में पीतवर्ण गन्धक अधिकांश में श्वेत गन्धक अर्थात् गोदन्ती से ही रासायनिक क्रिया द्वारा तय्यार होता है, इसका विस्तृत वर्णन पूर्व में किया जा चुका है। उक्त समालोचनात्मक दृष्टि से विचार करने पर यह निःसन्देह है कि प्राचीनों का श्वेत खटिका रूप गन्धक गोदन्ती ही है। आजकल का कृत्रिम पूर्वोक्त गन्धक का दूध (Milk of Sulphur) नहीं है।

गोदन्ती ।

गोदन्ती प्रकृति में तीन चार प्रकार की पाई जाती है।

(१) कणारूप—यह दांत की शकल का २—२॥ इन्च लम्बा रखा होता है। बीच में कुछ दबा रहता है और दोनों ओर छोटे छोटे उभार होते हैं जिसके कारण दांत के भीतरी मसूड़े के अन्दर रहने वाली शकल दिखाई देने लगती है। ऊपर और नीचे का स्वरूप देखने से जड़ से उखाड़े हुए दांत का सा दिखाई देता है।

(२) तालाकृति—यह पतले पतले अनेक पत्र के संयोग से बने हुए पिंड या हरितालाकृति दिखाई देता है। संभवतः इसी के स्वरूप को देखकर गोदन्ती को हरिताल में गणना करदी है। आयुर्वेद प्रकाश के अतिरिक्त अन्य एक आध ग्रन्थ को छोड़कर इसका वर्णन रसग्रन्थों में प्रायः नहीं पाया जाता है। यह वर्णन भी वहाँ के प्रकरण को देखने से स्पष्ट है कि ग्रन्थकार ने सुने, सुनाये ज्ञान को बिना परीक्षा के ही लिख डाला है। रसशास्त्रों में दो ही प्रकार का पिंड और पत्र

ताल का उल्लेख है, पर आयुर्वेदप्रकाशकार ने पूर्व में दो प्राचीन भेदों को स्पष्ट लिखकर फिर चार भेद लिखे हैं। बुगदादी, गोदन्ती, तवकी, पिंडताल यह सिद्ध लोगों का मत है। मेरी राय में इनमें पूर्व के दो भेद काल्पनिक ग्रन्थकार के समय के अनुमानित हैं, अन्तिम दो शास्त्राय हैं जिनका सर्वत्र उत्तम वर्णन मिलता है। उत्तम कणाकृति गोदन्ती का स्वरूप 'बृहद्रस्माज् मुन्दर' में पृष्ठ ११८ पर बहुत अच्छा लिखा है—

दीर्घखंडप्रतिस्निग्धः गोदन्ताकृत्तिकः गुरुः।

नीलरेखान्वितं मध्ये पीत गोदन्ततालकम् ॥

पर यह हरिताल प्रकरण में भ्रम ने केवल आयुर्वेद प्रकाश को देखकर लिख दिया है, वस्तुतः इसका वर्णन स्वतंत्र चाहिये था, या गन्धक के प्रकरण में रसरत्न समुच्चय की तरह लिखना उचित था। इस कण में पीतरेखा अल्पमात्रा में नजर आया करती है और नीलरेखाओं का तो श्वेत में प्रतिबिम्ब मात्र का दर्शन है। स्वाभाविक कण दन्ताकार शुद्ध श्वेत होता है। अन्य खनिजों के सहयोग से पीत और नील रेखायें दीख पड़ती हैं।

(३) पिंडाकृति—यह सफेद सुरमा (Calcite) नामक द्रव्य बाजारों में पाषाण-खंड के रूप में पाया जाता है जो उसकी आकृति से मिलता जुलता होता है। यह मुलायम होता है देखने में कर्पूराकार स्फटिक शिला सा बिना रवों के प्रायः चौरस या रूम विषम खंडों में पाया जाता है। पंजाब में मैथव की खानों के आस पास में यह बहुतायत से प्राप्त होता है।

(४) कौश्याकृति—(Satin spar) यह जाति बहुत ही मुलायम रेशम के तन्त्रों सी होती है । इसका उपयोग ज्वर उतारने के लिये किया जाय तो अधिक लाभप्रद है । यह जाति अल्पमात्रा में प्राप्त होने वाली है ।

आर्य रसायन शास्त्रज्ञों ने गन्धक तीन प्रकार के स्वरूप का माना है ।

एक पीत, दूसरा श्वेत—(प्राकृतिक) तीसरा तापक्रम जनित रक्त-कृष्ण-वर्तित्वम् (कृत्रिम) ।

“स चापि विविधां देधि शुक्लचक्षुर्निभोपरः ।
मध्यमः पीतवर्णो स्याच्छुक्लवर्णोऽधमः स्मृतः ॥
चतुर्धा गंधको ज्ञेयो वर्णैः श्वेतादिभिः खलु ।
श्वेतोऽथ खटिका प्रोक्तालेपने लोह मारणे ॥
तथा चामलमारः स्याद्यो भवेत्पीत वर्णवान् ।
शुकपुच्छः स एव स्याच्छ्रेयो रस रसायने ॥
रक्तश्च शुकनुडारयो धातुवादविधौ मतः ।
दुर्लभः कृष्णवर्णश्च सजरामृत्युनाशनः ॥

इन पाठों के देखने से स्पष्ट विदित होता है कि प्राचीन धातु-शोधक दो भिन्न भिन्न पद्धति से काम करने वाले थे । जैसे आज कल माइनिंग्स और मेटेलाजी व जीयोलॉजी पर काम करने वाले हैं । एक रस रसायन की पद्धति से धातुवाद में उपयोगी खनिजादि द्रव्यों के रूप और गुणों की परीक्षा करने वाले, और दूसरे प्राकृतिक खनिजादिकों की खोजकर नामादि स्थिर करने वाले । संग्रहकर्ताओं ने दोनों के विचारों

को एकत्रित कर दिया। इसलिये इहंकातिक वैद्यक शिक्षा क्रम से पढ़ने वालों के लिये द्रव्याभाव से वस्तुज्ञान प्राप्त करने में बड़ो कठिनाई उपस्थित हो गई। वास्तव में श्वेत गन्धक (Gypsum गोंदन्ती) और पीत गन्धक (Sulphur) प्राकृतिक हैं। इन का स्वरूप और व्यवहार ग्रन्थकार ने संक्षेप में बता दिया। “श्वेताऽत्र खटिका प्रांको लेपने लोह मारणे। तथा चामल सारस्याया भवेत् पीत वर्णवान्। शुक्र पुच्छः स एव स्यात्।”

यहां तक प्राकृतिक गन्धक का वर्णन है, “शेषौ रस रसायने” इत्यादि लिख कर स्पष्ट ही अप्राकृतिक तापक्रम विशेष पर परिवर्तन शील रक्त और क्षुष्मावर्ण वाले गन्धकीय स्वरूप का उल्लेख कर दिया है। इसके अतिरिक्त तापक्रम पर ही एक और विशेष गन्धक का परिवर्तन है। उसका भी बड़ा ही रोचक और सुन्दर वर्णन हमारे शास्त्रों में पाया जाता है। उसको बलीवमा (प्लास्टिक सल्फर Plastic Sulphur) कहते हैं।

“बलिना सेवितः पूर्वं प्रभूतबलहेतवे।

वासुकीं कर्पतस्तस्य तन्मुखज्वालया युता ॥

वसा-गन्धकगन्धाख्या सर्वतो निःसृता तनाः।

गन्धकत्वं च संप्राप्ता गन्धाऽभूत् स विपस्ततः ॥

तस्माद् बलिवसेत्युक्तो गन्धकोऽति मनोहरः।

(रसाज्ञ समुच्चय)

इस काव्यमय आख्यायिका का प्रत्यक्ष परीक्षण कर यह अर्थ समझना चाहिये कि बलि नामक रसायन विज्ञ ने जीव

वासुकी यंत्र, गैस जलनवाला रबड़ की अनेक सर्पाकार नालियों से सम्बन्धित बुन्सन बर्नर, जो आजकल सर्वत्र रसायनशालाओं में प्रतिदिन रसायनिक द्रव्यों की परीक्षा करने के लिये काम में लाया जाता है या तत्सदृश अन्य यंत्र पर गन्धक की परीक्षा प्रारम्भ की उस समय यन्त्र के विकृत हो जाने से उसका ध्यान उधर आकृष्ट हुआ और इधर गन्धक में उष्णता अधिक पहुँच जाने से वह उबलकर पात्र से नीचे गिरकर तत्क्षण शीतल होने से वैसा रूप हो गया। इस आकस्मिक घटना से गन्धक के एक विशेष तापक्रम पर उत्पन्न होने वाले गुण का ज्ञान हो गया। इसलिये वैसा सदृश होने के कारण परीक्षक के ही नाम के साथ यह गुणवाचक शब्द जोड़कर बलिबसा नामकरण कर दिया। आजकल भी प्लास्टिक (नम्य) गन्धक इसी तरह रसायनशालाओं में तय्यार किया जाता है। इसका व्योरा पूर्व में विस्तार के साथ लिखा जा चुका है। उक्त संस्कृत के पाठों को यदि निम्नांकित 'प्रताप पद्धति' के अवतरणों से दर्शाया जाय तो अधिक सरलता से विषय समझ में आ सकता है।

सचापि त्रिविधो देवि गुणकर्मस्वरूपतः ।

नैसर्गिकः कृत्रिमश्च तापक्रमप्रयोजितः ॥

तत्र नैसर्गिके गन्ध श्वेतपीतौ च लभ्यते ।

श्वेताऽत्र खटिका प्रोक्ता लेपने लोहमारणे ॥

तथा चामलसारः स्याद्यो भवेत् पीतवर्णवान् ।

शुकपुच्छः सपत्र स्याच्छेषः रसरसायने ॥

रक्तकृष्णातिनभ्याश्च तापक्रमविभाजिताः ।

प्राप्येत सौधकैरेव रसशाला पक्षीक्षिताः ॥

वलिबसा (नम्य गन्धक) निर्माण विधि:

बलिना रक्षितः पूर्वं प्रभूतबलदर्शने ।
 वासुकिं कर्षतस्तस्य, तन्मुखज्वालयायुतः ।
 प्रसृतः सर्वतोद्देशे उष्णत्वं समुपागतः ।
 वसागन्धकगन्धाढ्या गन्धोऽभूत् स रसस्ततः ॥
 तस्माद्वलिबसेत्युक्तः गन्धकाऽति मनोहरः ।

आशा है कि इस प्रकार के पृथक् करण से प्रत्यक्ष सिद्ध प्रयोगों के अनुसार प्राच्य रहस्यमय प्रयोग-सिद्धि समझने में सहायता मिलेगी ।

गंधक और गंधकीय खनिज प्राप्ति के स्थान

अफगानिस्तान—

के हजारा जाट (Hazira Jat) नामक स्थान में प्राकृतिक गन्धक बहुतायत से प्राप्त होता है ।

पीत गन्धक के डले और शिरायें गोंदन्ती के खंडों के साथ "दस्त इ-सफेद" (Dast i-Safed) नामक स्थान के आस पास में मिलता है ।

आसाम—

के लखिमपुर जिले के 'माकुम' (Makum) ग्राम में मात्तिक के खंड (Shales) भूगर्भज कांयले के साथ ऊपर आसाम में प्राप्त होते हैं । किन्तु इनकी मात्रा इतनी नहीं है, कि जिससे गन्धक निकालकर व्यापारिक लाभ उठाया जा सके ।

बलुचिस्तान (Baluchistan)

के कोह-इ-सुलतान (Koh-i Sultan) नामक स्थान में प्रशान्त उजालामुखी के आस पास के परिवर्तित स्थानों में, पीत गंधक और गोदन्ती पाये जाते हैं। यहाँ के निवासी खनिज गंधक को नौदों में भर कर गरम करते हैं। जब गंधक पिघल जाती है, तब उसे तसलों की शकल के ढांचों में ढाल कर अन्य पार्थिव अशुद्धियों से शुद्धि कर लिया करते हैं।

“बोलन पास” के “ड्राजबेन्ट” (Draj Bent) और गोकुर्थ (Gokurth) नामक स्थानों में भी मृत्तिकाकृति चूने के साथ गंधक पाया जाता है। किन्तु यहां से उसकी निकासी कठिन है।

कच्छी (Kachhi)

जिले के सन्नी (Sanni) नामक स्थान में गन्धक की बड़ी खान रही है। सन् १८४६ ई० में हुटन (Huttan) नामक अंग्रेज ने इस स्थान को जाकर देखा था। उसका कथन है कि इस स्थान में गन्धक अष्टपार्श्वीय खों और चूर्ण के रूप में बहुतायत से प्राप्त हो सकता है। अब भी यहां के निवासी खनिज गन्धक को निकालकर ‘सन्नी’ के पूर्व की तरफ स्थित बाग (Bagh) नामक स्थान पर ले जाकर उसे तैल के साथ पिघालकर शुद्ध किया करते हैं। बाग नामक स्थान सन्नी से ४० मील दूर है। यहांपर की खान की खुदाई का काम अफगानीस्थान के अमीर की तरफ से होता रहा है पर अब ब्रिटिश सरकार के आधिपत्य में आ जाने पर गन्धक की निकासी का काम बन्द कर दिया गया है। किसी कारण वश

इस खान में आग लग जाने से खान का कुछ अंश जल भी गया है। सन् १९०६ ई० में इस खान को टिप्पर (Tipper) नामक अंग्रेज देखने गया था। उसका लिखना है कि इस स्थान में गन्धक शिवालिक मृत्तिका के साथ शिराओं के रूप में प्राप्त होता है। कुछ स्थान पर गन्धक इस प्रकार जमा हुआ है कि वह आसानी से जल सकता है। होलैन्ड (Holland) नामक विद्वान की राय है कि यहां का गन्धकीय जमाव व्यापारिक लाभ उठाने के योग्य है।

लासबेला (Las Bela)

जिले में 'कान बेरार' (Kan Berar) नामक स्थान के आस पास खारे झोंतों के समीप गन्धक का जमाव देखा गया है। यहाँ पर के झोंतों के समीप रेणु शिला की शिराओं में लवण और गन्धक की शिरायें देखी जाती हैं। किन्तु परीक्षा करने से विदित हुआ कि यहां का जमाव व्यापारोपयोगी नहीं है।

मेकरन तट (Mekran Coast)

के जिले में करघारी (Karghari) के पास गोलकुर्ट (Golkurt) स्थान में बहुत गन्धक एकत्रित किया जा सकता है।

सिबि (Sibi)

जिले में "खाटान" (Khattan) नामक स्थान के मिट्टी के तैल के कूप के पास वाले उष्ण झोंतों के छ्राव से, रवेदार गन्धक का बहुत सा जमाव पाया जाता है।

बरन आइलैन्ड (Barren Island)

में भी गन्धक का जमाव पाया जाता है। किन्तु उसकी मोटाई २ या ३ इञ्च से अधिक नहीं है, और कई दर्जन टन से अधिक गन्धक निकालने का अनुमान भी नहीं किया जाता है।

बिहार और उड़ीसा —

मधुरभंज रियासत के धलभूमि सीमा प्रांत के मालाघाटी के पास में विशेष रूप से रौप्यमात्तिक (Iron Pyrites) अनेक स्थानों में पाया जाता है। आजकल गन्धक निकालने का यह प्रधान खनिज समझा जाता है।

सिंधभूम जिले में सुवर्ण मात्तिक (Copper Pyrite) से ताम्र के साथ गन्धक बहुतायत के साथ प्राप्त किया जा सकता है। यहां के ताम्र के खनिजों का व्यापार उसी दशा में लाभकारक हो सकता है जब बड़े पैमानों पर काम किया जाय।

बर्मा—

सिंध के गिजरी बन्दर (Ghizri Bunder) पर गन्धक के जमाव का पता लगाया गया है। यहां के खनिजों से ६० फी सदी गन्धक प्राप्त किया जा सकता है। किसी समय "लाकि" (Laki) नामक स्थान के झोटों के झ्राव से जो गंधक के जमाव "जामा" (Seum) के रूप बनते थे, उनसे वहां के ग्राम्यजन गंधक निकालने का अध्यवसाय करते थे। किन्तु व्यापारिक लाभ के लिये यहां की गंधक पर्याप्त नहीं समझी जाती।

बर्मा (Burma)

सन् १८७३ में स्ट्रोवर (Strover) नामक विद्वान ने लिखा है कि बर्मी राजाओं के राज्य काल में अपर वर्मा में अनेक स्थानों से २५००० बिस (एक बर्मी तौल) गन्धक रौप्यमात्तिक से उड़ाकर प्रतिवर्ष निकाला जाता रहा है। बर्मा में गन्धक के व्यवसाय का मुख्य केन्द्र जोन्स (Jones)

के लेखानुसार "मासुन" (Mowsuin) नामक प्रान्त के समीप में रहा है ।

दक्षिणी शान राज्यों (Southern Shan States) में भी गन्धक निकालने का व्यवसाय अब तक होता रहा है । शान राज्यों की अनेक प्रकार की स्फटिक शिलाओं में सौष्यमाक्षिक पाया गया है । इस सौष्यमाक्षिक से गन्धक निकालने का कारोबार चल सकता है । यहाँ के सौष्यमाक्षिक में सुवर्ण, रजत आदि बहुमूल्य खनिज प्राप्त नहीं होते । ये स्थान इतने निकट हैं कि यहाँ पर सौष्यमाक्षिक से गन्धकाम्ल बनाने का व्यवसाय लाभ पूर्वक नहीं चलाया जा सकता ।

दक्षिण हैदराबाद—

के गुलबर्ग (Gulbarg) जिले में मुदानूर (Mudanur) नामक स्थान पर आधिक्य से सौष्यमाक्षिक प्राप्त होता है, जिससे गन्धक निकालने का व्यवसाय किसी जमाने में होता रहा है ।

काश्मीर—

के बाल्टिस्तान (Baltistan) जिले में अनेक उष्ण-स्रोतों से गन्धक का जमाव होता है । रुपशु (Rupshu) जिले की पुगा घाटी (Puga Valley) के उष्ण-स्रोत-सम्बन्धी गन्धकीय जमाव से काश्मीर दरबार की तरफ से गन्धक निकालने का कारोबार हुआ करता था । यहाँ शीत अधिक होने के कारण केवल वर्ष में चार मास तक ही कारखाना चलता था, जिससे गन्धक की वार्षिक निकासी २०-२५ टन होजाया करती थी ।

मद्रास—

के आरकोट (Arcot) जिले में आध मील तक गन्धक का जमाव “वोलेंडरपेट (Wolunderpet) से कुछेक मील की दूरी पर वोडिया पोलिय (Wodia Paliam) नामक जिले में स्थित है ।

गोदावरी—

के किनारे किनारे दलदलों के क्षेत्रों में पानी सूख जाने पर ढेलों के रूप में जमा हुआ गन्धक पाया जाता है । यहाँ के गन्धक के खनिजों में २८% फीसदी स्वतन्त्र गन्धक और २८ फीसदी निश्चित रूप में गन्धक पाया जाता है ।

द्रावणकोर—

राज्य में मंगामलाई (Mangamalai) नामक पहाड़ी पर कान्तमाक्षिक (Pyrrhotite) मिलता है, इससे गन्धक निकाला जा सकता है । इसी स्थान के पश्चिमी भाग की ओर कुछ दूरी पर एक दूसरा जमाव भी कान्तमाक्षिक का है ।

उत्तर पश्चिमी सीमा प्रान्त (North West Frontier Province)

के कांहाट जिले में इण्डस (Indus) नदी के पश्चिमी किनारे पर माक्षिकीय (Pyritous) मिश्रित स्फटिक (Alum) के खपड़े सुधापाषाण के नीचे जमे पाये जाते हैं । इन खपड़ों से गन्धक निकालने का व्यवसाय किया जाता रहा है । गन्धक निकालने के लिये डमरु यंत्र का उपयोग किया जाता था । इस यंत्र द्वारा गन्धक उड़ाकर “गन्धक के फूल” तैयार किये जाते रहे हैं ।

शिरानी (Shirani)—

नामक जिले में डोमुन्डा (Domunda) के पास में रौप्य माक्षिक के परिवर्तन से गन्धक जमा होता हुआ देखा गया है ।

पंजाब—

में डेरायाजीखान के सोरीपास नामक स्थान पर गन्धक निकालने का कारोबार चलता था । यहाँ पर गन्धक गोदन्ती के साथ उष्णश्रोतों से जमा हुआ दिखाई देता है । गोदन्ती के अन्दर पीत गन्धक के रेशे या शिरायें मिली पाई जाती हैं । कोहाट की भाँति डमरु यंत्र से उड़ाकर शुद्ध गन्धक एकत्रित करने का व्यवहार यहाँ भी चालू था । गंधारी पहाड़ के दक्षिणी किनारे पर सफेद क्षेत्रों में भी गन्धक पाया जाता है ।

झङ्ग (Jhang) राज्य में किराना पहाड़ी के पाषाणों में कान्त माक्षिक (Pyrrhotite) के ढले पाये गये हैं । हुन्डी-वाला नामक स्थान की खान में भी रेलवे स्टेशन के पास विमल के नमूने प्राप्त हुये हैं ।

मियाँ वाला (Mianwala) जिले में पेट्रोलियम प्राप्ति की जमीन में गन्धक पाया जाता है । बोरिंग (Bowring) नामक के पास पेट्रोलियम के स्रोत के समीप समीप मीलों तक पहाड़ी भूमि पर गोदन्ती के साथ गन्धक पाया जाता है । किन्तु यहाँ पर व्यापारोपयोगी गन्धक का मात्रा मिलने में सन्देह है ।

रावलपिंडी के जिले में मशालापास के पूर्वी ओर की पहाड़ी पर गन्धक की खान में काम होता रहा है।

संयुक्त प्रान्त—

के देहरादून, जोन्सार जिलों में मैवार (Maiwar) नामक स्थान की सीसक (Lead) की खान की परिधि में गंधक पाया जाता है और उसका इतना निकास होता है कि जिससे सीसक निकालने का सारा व्यय प्राप्त हो जाया करता है।

कुमायूँ—

जिले के उष्ण स्रोतों से अल्प मात्रा में गंधक जमा पाया जाता है। कुमायूँ प्रांत के नीचे लिखे स्थानों का गंधक प्राप्ति के विषय में विशेषतः उल्लेख है—

- (१) राम गंगा और गर्जिया नदी के तटवर्ती उष्णस्रोत।
- (२) नन्द प्रयाग के पास मन्सियारी मुल्ता, दसोली, और मुल्ता नागपुरा।

(विब्लोग्राफी भाग २ पृष्ठ ४६६ से ४७६)

उक्त स्थानों के अतिरिक्त अनेक उष्ण स्रोतों के आसपास में न्यूनाधिक मात्रा में गंधक पाया जाता है। उसका विचार शैलोदक (Mineral waters) के प्रसंग में अन्यत्र किया जायगा।

आज कल माक्षिक (गन्धक के कारण) गन्धकाम्ल बनाने के लिये अधिकतया व्यवहार किया जाता है, इसलिये

गन्धक प्रसंग में गन्धकाम्ल (Sulphuric acid) का सन्निध व्योरा जानना आवश्यक है । संसार व्यापी योरोपियन युद्ध के कुछ ही पूर्व युनाइटेड स्टेटस् में लग भग ३,१००,००० क्वार्टे टन (Short Tons) गन्धकाम्ल बनता था । युद्ध की दशा में विस्फोटक (Explosive) पदार्थों के निर्माण के लिये इसकी मांग अधिक हो गई । सन् १९१६ में ६२,५००,००० टन गन्धकाम्ल बनाया गया, और १९१८ में ८०,००,००० टन तैयार किया गया । सन् १९१६ ई० में ४० फी सदी गन्धकाम्ल स्पेनिश (रोओटिन्टो Reo Tinto) माक्षिक लेकर बनाया गया था । शेष ६ फी सदी केनाडियन माक्षिक, १३ फी सदी अमेरिकन माक्षिक (Pyrite, Marcasite—Pyrrhotite) २२ फी सदी ताँबे और यशद के खनिज गलाने से उत्पन्न गन्धकीय वाष्प और शेष १६ फी सदी प्राकृतिक गन्धक लेकर बनाया जाता रहा है । युद्ध के पूर्व प्राकृतिक गन्धक का उपयोग इस कार्य के लिये नहीं किया जाता रहा है । इस लेख से यह स्पष्ट है कि माक्षिक अन्य गन्धक के खनिजों के साथ या स्वतन्त्र ही गन्धकाम्ल बनाने के लिये प्रधानता से उपयोग किया जा रहा है । इस काम के लिये अनेक देश विशेष कर स्पेन, नारवे (Norway), पोर्चुगल (Portugal), फ्रान्स, युनाइटेड स्टेट्स आफ अमेरिका, जर्मनी २,००,००० टन से अधिक माक्षिक की प्रतिवर्ष निकासी करते हैं ।

युनाइटेड स्टेट्स आफ अमेरिका में गन्धक प्राप्ति के मुख्य खनिज - माक्षिक और विमल (Pyrite, Marcasite—Pyrrhotite) ४३.३% व ३८.४% फीसदी वाले क्रमशः समझे जाते हैं ।

युनाइटेड स्टेट्स आफ अमेरिका में नीचे लिखे प्रदेशों से माक्षिक की निकासी होती है।

१ अलाबामा (Alabama) से वर्मोन्ट (Vermont) तक के अपालाचियन पहाड़ (Appalachian Mountain) में होने वाले माक्षिक के जमाव।

२ कैलिफोर्निया के माक्षिक के जमाव।

३ वर्जिनिया (Virginia) टेनेसी (Tennessee) मैन् (Maine) के विमल (Pyrrhotite) के जमाव।

४ इलिनोइज़ (Illinois) ओहियो (Ohio) इन्डियाना (Indiana) और पेन्सिलवानिया (Pennsylvania) के कोयले की खानों में प्राप्त होनेवाले मार्केसाइट (Marcasite) के जमाव से।

प्रतिवर्ष युनाइटेड स्टेट्स के अन्दर ४००,००० लम्बे टन माक्षिक निकाला जाता है। इसमें से अधिकांश वर्जिनिया और कैलिफोर्निया से प्राप्त होता है। क्वेबेक (Quebec) और ओन्टेरियो (Ontario) प्रदेश से भी माक्षिक की निकासी होती रही है।

प्रकृति में माक्षिक के अनेक प्रकार के रूप पाये जाते हैं।*

गन्धकाम्ल (Sulphuric acid— H_2SO_4)

इस अम्ल का निर्माण किसी न किसी रूप में अनेक प्राचीन आर्य रस शास्त्रियों को विदित था। ऐतिहासिक रूप से विचार करने पर विदित होता है कि शंखद्राव प्रभृति द्रावक

* मिनरल डिपॉजिट्स पृष्ठ ३८७-३८८.

बनाने के पूर्व में खनिजों की द्रुति बनाने की क्रिया का बहुत प्रचार था। प्रत्येक खनिज को द्रवरूप में प्रयोग करना एक साधारण सी बात थी पर देव दुर्विपाक से इस प्रकार के खनिज द्रवों का उपयोग बन्द ही नहीं हो गया बल्कि उन के निर्माण में इतनी असफलता होने लगी कि जिससे निम्न-लिखित पद्य लिखकर एक रूप में इनके बनाने की असम्भवता निर्दिष्ट कर दी गई—

द्रुतयो नैव निर्दिष्टाः शास्त्रे दृष्टा अपि दृढम् ।

विना शम्भोः प्रमादेन, न सिध्यन्ति कदाचन ॥

(मारकसमुच्चय पृष्ठ १३ मूल)

मेरी सम्मति में आर्य रसायन की द्रुतियां Mineral acids हैं। इनके बनाने का प्रचार आधुनिक रीति से पुनः प्रारम्भ कर लाभ उठाना चाहिये। पाश्चात्य देशों में सर्व प्रथम आठवीं शताब्दी के लगभग गंधकाम्ल बनाने की विधि लेटिन जेबर (Letin Geber) नामक विद्वान की विदित हुई और उसने फिटहरी (Alum) की वाष्पीकरण क्रिया द्वारा इसका निर्माण किया। इस घटना के आठ सौ वर्ष बाद सोलह सौ शताब्दि के लगभग बेसिल वेलेन्टाइन (Basil Valentine) नामक रसायनज्ञ ने फासीस (Ferri Sulph) से वाष्पीकरण क्रिया द्वारा गंधकाम्ल बनाने की विधि का उल्लेख किया है। यही विधि अबतक इस अम्ल के बनाने में व्यवहार की जाती है। अठारवीं शताब्दि में अनेक प्रकार के रासायनिक (Chemical) उद्योग धन्धों में इसकी अधिक मात्रा उपयोग में आने लगी तब इसकी आवश्यकता अत्यन्त

बढ़ गई और यह आधिक्य से निर्माण किया जाने लगा। इसके बनाने की विधि में भी विशेष उन्नति हुई और यह गन्धक के साथ शोरा मिलाकर जल की उपस्थिति में जलाकर बनाया जाने लगा। इसके लिए कांच के बड़े बड़े चपक (Globes) काम में आने लगे। अब इसकी इतनी आवश्यकता बढ़ती जा रही है कि लकड़ी के फ्रेम में सीसक की चद्दरें जड़कर कमरे बनाकर गंधकाम्ल बनाने का व्यवसाय किया जाने लगा है। इस समय ऐसे अनेक कार्यालय बड़े पैमाने पर अहोरात्र काम कर रहे हैं। हमारे देश में गंधकाम्ल बनाने का काम बंगाल केमिकल एण्ड फार्मास्युटिकल वर्कस् लिमिटेड कलकत्ता तथा कानपुर की एक कम्पनी में होता है। प्राचीन और नवीन निर्माण पद्धति में केवल इतना ही अन्तर है कि पहिले द्रव्य "द्रव" तथा "घन" अवस्था में रखे जाते थे और अब केवल गैस के रूप में ही द्रव्य एकत्रित किये जाते हैं। जल के स्थान पर जलीय वाष्प (water steam) पहुँचाया जाता है और गंधक की जगह गंधक धूम्र (सल्फर डाई ओक्साइड) व शोरे के लिये ओक्साइड आफ नाइट्रोजन पहुँचाया जाता है। *

गन्धकाम्ल निर्माण के विषय में विशेष अभिरुचि रखने वाले पाठक उक्त केमिस्ट्री या अन्य प्रसिद्ध रसायन शास्त्र के बृहद् ग्रन्थ गुरुमुख से अध्ययन करें। गन्धकाम्ल चिकित्सापयोगी औषधियों में भी बहुतायत से व्यवहार किया जाता है। घाघ की मेटेरिया मेडिका पृष्ठ ३१४—३१५ पर इसके विषय में लिखा है कि, यह रंग रहित, दाहक, तैल सदृश

* अयुटोरियल केमिस्ट्री नान् मेटल्स पृष्ठ ११०-१११।

अम्लद्रव है और जल मिलाने से उष्णता उत्पन्न करता है। आपेक्षिक गुरुत्व १.८४१ है। अशुद्धियाँ हैं सीसक, ताम्र, लोह, आर्सेनिक, सेलेनियम (Selenium) अमोनियम (चंचलक्षार) कायला जातीय द्रव्य (Carbonaceous matters)। तथा दूसरे अम्ल।

प्रतिरोधक (Incompatibles) हैं—क्षार, क्षारीय कार्बोनेट्स, चूना (Calcium), और सीसकक्षार।

प्रभाव (Action) तीव्रदाहक है।

निर्णयित यौगिक (Official Preparations)

(१) ऐसिड सल्फ्युरिक एरोमेटिक (Acidum Sulphuricum Aromaticum). दूसरा नाम (Elixir of Vitriol) बी० पी० की मात्रा ५ से २० विन्दु। १ औंस जल में मिलाकर।

(२) ऐसिड सल्फ्युरिक डायल्यूट (Acidum Sulphuricum dilutum)

१ भाग तरल गंधकाम्ल, जल १२ भाग, बी० पी० मात्रा २० से ५० विन्दु, १ औंस जल में। इसको बनाते समय घन गंधकाम्ल जल में मिलाना चाहिये; न कि जल गंधकाम्ल में। जिस समय तरल गंधकाम्ल तैयार किया जावे, उस समय सावधानी के साथ एक काँच के पात्र में शुद्ध जल आवश्यक मात्रा में भर कर रख लें उस में से धीरे धीरे घन गंधकाम्ल में मिलावे। जल मिलाने से उष्णता पैदा होती है। जब उष्णता न्यून होजावे तब बाँतल में भर कर रख दें।

गंधकाम्ल का शारीरिक तथा रोग नाशक प्रभाव ।

(Pharmacology and Therapeutics)

बाह्य (Externally) प्रभाव

घन गन्धकाम्ल अत्यन्त जल शोषक है; इसलिये जिन अङ्गो पर इसका स्पर्श होता है उनके द्रवांश को जलाकर स्पर्शस्थान को चूर चूर कर देता है। अतः यह तीव्रदाहक माना जाता है।

अन्तरङ्ग (Internally) प्रभाव

इसका भीतरी अवयवों पर भी प्रायः बाहर का जैसा ही प्रभाव पड़ता है। घन गंधकाम्ल यदि भूल से सेवन करा दिया जाय तो भयंकर दाह और ज्वाला होने लगेगी। भली प्रकार जल मिलाकर तरल करके विशूचिका और रक्तस्राव जन्य तृषा शान्त करने के लिये इस का प्रयोग किया जा सकता है। यह महास्रोत पर उत्तम स्तम्भक प्रभाव करता है; इस कारण अतिसार, विशूचिका, और महास्रोत के रक्तस्राव में इसका प्रयोग करते हैं। गन्धकाम्ल शरीर से वृक्क और मलद्वार के द्वारा सल्फेट के रूप में बाहर निकलता है। शरीर के अन्तरङ्ग में सीसक (Lead) के योगों का शोषण होना रोकता है, इसलिये गंधकाम्ल के योग से बनाया हुआ लेमानेड (सांडा-लेमानेड) सीसक के कारखानों में काम करनेवाले मजदूरों को पिलाया जाता है। इसे सीसक-विषा-वरोधक (Prophylactic) समझते हैं।

क्षय (Phthisis) रोग में जो विशेष रूप से रीत्रि में स्वेद होता है, उसका अवरोध करने के लिये जिंक-सल्फेट के साथ इसका प्रयोग करते हैं।

गंधकाम्ल, लवणाम्ल, शोरकाम्ल और फास्फोरिकाम्ल का साधारण शारीरिक प्रभाव ।

बहिरंग—

उक्त सब अम्ल घनावस्था में ज्वालित्यादक और दाहक हैं । तरलावस्था में स्थानीय स्तम्भक और रक्तावरोधक हैं । अधिक तरल बनाकर उपयोग करने से बाह्याङ्ग पर प्रसादक (Refrigerants) और जलशोषक (Anhydrotics) प्रभाव करते हैं । सब प्रकार के खनिजाम्ल (Mineral acids) संक्रम निवारक (Disinfectants) समझे जाते हैं ।

अन्तरंग—

महाश्रोत—पर प्रभाव यह होता है कि ये अम्ल लालास्राव को उत्तेजित करने हैं जिससे तृपा शांत हो जाती है । आमाशय में जाकर वहां के स्वतंत्र क्षार को न्यूट्रल (Neutral उदासीन) बनाकर, उदासीन क्षार (Neutral Salts) बनाते हैं । ये उदासीन क्षार इसी दशा में शरीर में शोषित हो जाया करते हैं । भोजन के पूर्व देने से आमाशयिक अम्ल-पान्चक-रस (Gastric Juice) को उत्पन्न करते हैं । भोजन के साथ या अन्त में देने से यकृत, अग्न्याशय (Pancreas) और आंत्रिक ग्रन्थियों के क्षारीय स्वाव को अधिक प्रस्त्रवित करते हैं ।

शोरकाम्ल और लवणशोरकाम्ल (Nitric and Nitrohydrochloric acids) उग्र यकृतोत्तेजक और पित्तसारक

समझे जाते हैं। तरलाम्ल विशेष कर तरल गन्धकाम्ल आतों पर स्तम्भन प्रभाव करता है।

रक्त पर प्रभाव।

सब खनिजाम्ल रक्त के अन्दर उदासीन क्षार के रूप में परिगमन करते हैं। रक्त को अल्प क्षारीय बनाते हैं पर उसमें अम्लाधिक्य नहीं होने देते। क्लोरोसिस (Chlorosis) नामक रोग में लवणाम्ल रक्त के लाल कणों (Red blood corpuscles) को बढ़ाता है; पर हीमोग्लोबिन (Haemoglobin) पर कोई प्रभाव नहीं करता।

बुद्धि पर प्रभाव।

उक्त अम्ल मूत्र की अम्लता को अधिक नहीं बढ़ाते। शोरकाम्ल अमोनियाँ (चंचल क्षार) के रूप में परिवर्तित होकर मूत्र में क्षारीय धर्म बढ़ाता है।

तात्कालिक विष प्रभाव।

सब खनिजाम्ल ज्वालोत्पादक विष (Irritant Poisons) हैं। यदि घनावस्था में (concentrated) पिये जावें तो मुख से लगाकर आमाशय तक भयंकर ज्वाला और शूल होने लगता है और श्लेष्मधरा कला पर भूरे या पीले से जलने के दाग पड़ जाते हैं। पेट के अन्दर उग्रशूल होता है और काफ़ी (Coffee) के रंग का रक्त मिश्रित श्लेष्म का वमन होने लगता है। पेट पर स्पर्श करने से असह्य कष्ट प्रतीत होने लगता है। विबन्ध हो जाता है और यदि विरेचन होने लगा तब रक्तयुक्त कृष्ण बर्ण का मलस्राव होता है। कभी कभी

अम्ल या अम्ल-वाष्प के प्रवेश करने में गले में शोथ होकर श्वास रोग भी हो जाता है । उक्त लक्षणों की उग्रता होकर शीत स्वेद होकर रोगी मूर्छित होने लगता है और जीघ्र ही प्राणान्त हो जाता है ।

प्रतिविधि ।

आमाशय धोने के लिये स्टमक पप का उपयोग न करें । तार जैसे सोडा या चूने का जल, साबुन का जल, मैंगनेमिया आदि का जल में साधारण विनयन बनाकर तन्त्रण पान करावे । स्नेहन के लिये, दूध, घृत, अण्डे की सफेदी, तिल तेल, अलसी की चाय आदि पिलावे । मोर्फाइन का (Morphine) सूचीकाभरण (इन्जेक्शन) करके उत्तजना के लिए ईश्वर या ब्रान्डी पिलावे ।

चिकित्सक विष प्रभाव ।

सर्वाङ्ग दीर्घत्व, आलस्य, महास्राव का सावकारक शोथ, पांडु आदि मुख्य लक्षण होते हैं । रंग का सावधानी के साथ निगम्य करे ।

आयुर्वेद के चिकित्सा शास्त्र में ज्ञा शम्बद्राव, महाद्राव आदि के अनेक योग हैं वे सब खनिजाम्ल बनाने के ही योग हैं । उनके द्रव्यों को देखकर गंधकाम्ल, जारकाम्ल, लवणाम्ल या इनके मिश्रण का विचार कर प्रयोग करे ।

गंधक (Sulphur)

सुद्ध गंधक (Sulphur Sublimatum) और पुष्प-गंधक (Flowers of Sulphur) प्राकृतिक गन्धक या गंधक के खनिजों से गंधक उद्गाकर तय्यार किया जाता है ।

स्वभाव (Characters) शुक्र-पुच्छ के वर्ण का सा पीताभ पिच्छिल चूर्ण, गंध और स्वादहीन, उष्ण करने से जब तापक्रम पर इसके वाष्प उड़ने लगते हैं तब गंध प्रतीत होती है। उष्णाता से सल्फ्युरस एन्हाइड्राइड (Sulphurous anhydride) के वाष्प उड़ते हैं।

अशुद्धि (Impurities)—हरिताल, मनःशिला और गंधकाम्ल (Sulphurous and Sulphuric acids)।

विलयनशीलता (Solubility)—जल और मद्यसार (Alcohol) में विलयन नहीं होता है। तैल और वसा में अल्पमात्रा में घुलता है। सर्वांश में कार्बन डाई सल्फाइड (Carbon disulphide) में घुल जाता है।

परीक्षण (Tests)—इसके साथ पानी मिलाकर हिलाकर क्लान के लिटमस पेपर (Litmus paper) भिगोने से यदि रक्ताभ न हो तो समझे गंधक शुद्ध है। इस परीक्षण से यह विदित हो जावेगा कि शुद्ध गन्धक में स्वतंत्र अम्ल नहीं है। इसी प्रकार क्लाने हुए गंधक के जल में तलछट सल्फ्युरेटेड हाईड्रोजन (Sulphurated hydrogen) के संयोग से न बैठे। इस परीक्षा से संखिया के अम्ल (Arsenious acids) का अभाव विदित होगा।

प्रभाव (Action)—मृदुरेचन (Laxative), पुराश्रयी जीवाणुनाशक (Parasiticide)

• बी० पी० मात्रा—३० से ६० ग्रेन या १५ से ३० रत्ती तक।

निर्णीत यौगिक (Official Preparations)

कन्फेक्शियो सल्फुरिश (Confectio Sulphuris)

मात्रा ६० से १२० ग्रैन ।

अंगुरन्ट सल्फुरिस (Unguentum Sulphuris) शक्ति
१० भाग में १ भाग इसको विनोयटेडलाड (सुअर की चर्बी) में
बनाने हैं ।

अनिर्णीत यौगिक (Non-official preparations)

(१) कन्फेक्शियो गुआईसी कम्पोजिता (Confectio Guaiaci
Composita)

गुआइकम्	२ तोला	—Guaiacum	2
शुद्ध गंधक	3	„ Sublimed Sulphur	3
मैगनेशिय कार्बोनेट	२	„ Magnesium Carbonate	2
गुण्ठी चूर्ण	१	„ Ginger	1
गुड़	१२	„ Treacle	12

सब द्रव्यों का वजन से लेकर मिलाकर हलवा सा बनाले ।
मात्रा १ से २ ड्राम ।

(२) अंग्वेन्ट सल्फुरिस को • (Unguentum Sulphuris Co.)

मृदु साबुन	३० तोला	—Soft Soap	30
शुद्ध गंधक	१५	„ Sublimed Sulphur	15
तलछट्टीकृत चाक	१०	„ Precipitated Chalk	10
टार (कोलटार)	१५	„ Tar	15
लार्ड (शूकर बसा)	३०	„ Lard	30

सब मिलाकर मसहम बनाकर प्रयोग करें ।

(३) ग्रंगवेन्टं सल्फुरिश कंवाउंड हाईड्रार्जिरो (Anguentum Sulphuris Co. Hydrargyro)

शुद्ध गंधक	३० तोला	Sublimed Sulphur	30
रस सिन्दूर	२	„ Mercuric Sulphide	2
दाल चिकना	२	„ Ammoniated mercury	2
जैतून का तैल	१२	„ Olive oil	12
शूकरवसा	५४	„ Lard	54

मिलाकर मरहम बनाले। पामा, कच्छु आदि चर्म रोगों में प्रयोग करे। विशेष सन्देहमय फिरंगजन्य चर्म विकारों में इसका प्रयोग लाभकारक है।

(४) ग्रंगवेन्टं सल्फुरिस कंवाउंड हाइपोक्लोराइटीज् (Unguentum Sulphuris Hypochlorites)

शुद्ध गंधक	१२ तोला	Sublimed Sulphur	12
बादाम का उड़नशील तैल	२ तो०	Essential oil of Almonds	2
सिद्ध शूकरवसा	८४ तो०	Prepared Lard	84
सल्फर क्लोराइड	२ तो०	Sulphur Chloride	2

सबको मिलाकर कांच की डांट वाली बोतल (Stoppered Bottle) में रक्खें। यह योग व्यंग, मुखच्छाया, युवान पिडिका, पामा आदि में उपयुक्त है।

तलछटी कृत गन्धक (Precipitated Sulphur)

इसे विटिश फार्माकोपिया (B. P.) की परिभाषा में गन्धक-दुग्ध (Milk of Sulphur) कहते हैं।

निर्माण विधि (Source) साधारण गन्धक को चूना और पानी के साथ उबाल कर दान लेते हैं बाद में नमक का तेजाब (Hydrochloric Acid) मिलाकर पुनः गन्धक का तलछट बैठकर प्राप्त करते हैं ।

स्वभाव (Characters)—शुद्ध (Smooth) पिच्छिलता रहित (not gritty) भूरा (Greyish) हलका सा पीताम्ब-चूर्ण होता है ।

अशुद्धि (Impurity)—नमक के तेजाब के स्थान पर सस्तेपन के कारण इसके बनाने में गन्धकाम्ल व्यवहार करते हैं इसलिए काल्सियम सल्फेट (Calcium Sulphate) की अशुद्धि पाई जाती है ।

परीक्षण (Tests)—पिच्छिलता से रहित चूर्ण हो और सूक्ष्मदर्शक यंत्र (Microscope) में देखने से सल्फेट (Sulphate) के रवे (कण) दिखाई न दें । तापक्रम पर वाष्प होकर संपूर्ण उड़ जाना चाहिये किसी प्रकार का अवशेषांश न रहे तो समझे कि शुद्ध है । मात्रा २० से ६० ग्रेन

निर्यात औगिक (Official Preparations)

ट्रोचिस्कस सल्फुरिस (Trochiscus Sulphuris)

तलछटीकृत गंधक ५ ग्रेन Precipitated Sulphur 5 gr.

एसिड पोटैसियम टार्टरेट् १ „ Acid Potassium

Tartrate 1 gr.

शकर की = ग्रेन की एक टिकिया में मिला कर प्रयोग करे ।

अनिर्णीत यौगिक (Non-official preparations.)

जेफ़सनस पाउडर (Jephson's Powder)

तलछटीकृत गन्धक २ भाग	Precipitated Sulphur	2.
गायेकम् १ भाग	Guaiaicum	1.

मिलाकर ६० ग्रेन की मात्रा से व्यंग मुखच्छाया, कंठशालूक (Tonsillitis), विबन्ध (Constipation) में प्रयोग करे ।

अंगवेन्टं सल्फुरिस एट रिसोर्सिनी (Unguentum Sulphuris et.—
Resorcini)

तलछटी कृत गंधक	४-५०,	Precipitated sulphur	4-50
रिसोर्सिन	३	Resorcin	3
पीतमृदु पेराफीन	६२॥	Yellow soft Paraffin	100

मिलाकर दुर्गन्ध युक्त पूयवाले पामा कच्छु में प्रयोग करे यह उत्तम संक्रम निवारक लेप है ।

गंधक का शारीरिक अवयवों पर प्रभाव ।

(Pharmacology)

बाह्य (Externally)

स्वस्थ चर्म पर केवल गंधक का लेप किया जावे तो कोई प्रभाव नहीं होता । स्नेह के साथ लेप करने से कुछ गंधक सल्फुरेटेड हाईड्रोजन के रूप में परिवर्तित होकर अत्यल्प ज्वाला पैदा करता है । जिससे स्थानीय रक्त नलिकाओं का प्रसार होता है और चर्म मृदु हुआ तो पामों की सी पिडिकायें भी पैदा होजाया करती हैं । गन्धक पराश्रयी

जीवाणु नाशक है, इस लिये कङ्क "उत्पादक जीवाणुओं का शीघ्र ही नाश कर देता है। गंधक द्रव्य स्थान पर लगाने से भयंकर जलन पैदा करता है।

गंधक छिड़कने से निम्न श्रेणी के जीवाणु नष्ट हो जाते हैं, इसलिये "इटली" में अंगूर की बेलों पर फंगस (Fungus) नाश करने के निमित्त गंधक छिड़कते हैं। फंगस लगने से अंगूर में रोग उत्पन्न होने है।

अन्तरंग (Internally)

मुख के जालास्राव में गन्धक का विलयन नहीं होता है इसलिये मुख गह्वर में कोई स्वाद अनुभव में नहीं आता। आमाशय में भी गन्धक का कोई परिवर्तन नहीं होता। जब गन्धक श्चुद्रान्त्र (Small intestine) में पहुँचता है तब क्षारीय पित्त (Alkaline bile) के संसर्ग से इसका अल्पांश क्षारीय गन्धक के रूपमें परिवर्तित होकर शरीर में प्रवेश करता है। किन्तु अधिकांश में गन्धक बिना परिवर्तन के ही शरीर से बाहर मल के साथ निकल जाता है। कुछ विशिष्ट विद्वानों की सम्मति है कि गन्धक के विशेष प्रयोग अधिक मात्रा में भी प्रवेश हो सकते हैं। डाक्टर बुचहैम (Dr. Buchheim) ने परीक्षा कर देखा है कि तलछटी कृत गन्धक अत्यन्त सूक्ष्म चूर्ण के रूप में ४० फी मदी तक मूत्रद्वारा निकलता हुआ देखा गया है। पर पुष्प गन्धक (Sublimed Sulphur) केवल इस प्रकार १५ फी सदी ही निकलता है। गन्धक आंतों पर प्रभाव कर मृदुरेचन करता है। इस प्रकार के रेचन से किसी प्रकार का शूल आदि

नहीं होता। साधारणतया गन्धक तीन प्रकार से आंतों पर प्रभाव करता है।

(१) क्षारीय गंधक (Alkaline Sulphur) और सल्फुरेटेड हाइड्रोजन (Sulphurated Hydrogen) आंत्रीय गति को उत्तेजित करते हैं, जिससे अन्त्र सम्बन्धी स्त्राव अधिक उत्पन्न होता है।

(२) सल्फुरेटेड हाइड्रोजन से आंतों में दबाव (Pressure) पैदा होता है, और आंतों के अन्दर के मल को आगे की ओर ढकेलता है। जैसे पोप गन (Pop-Gun) का डांड धकेला जाता है। यह क्रिया वैसी ही समझना चाहिये जैसी आसव की बोतल के डांट के उड़ने में होती है। आसव की बोतल में जब गैस पैदा होती है तब वह डांट को धकेल देती है—इसी प्रकार आंतों में जब सल्फुरेटेड हाइड्रोजन गैस पैदा होती है तब मल को मलाशय से बाहर धकेल कर निकाल देती है।

(३) गन्धक के रुक्ष कण आंतों की मांस पेशियों के साथ रगड़ खाकर उन्हें उत्तेजित कर उनकी गति को बढ़ा कर मल शुद्धि करने में सहायक होते हैं।

उक्त तीनों विधियों में से प्रथम की दो विधियां अधिक प्रामाणिक मानी जा सकती हैं, क्योंकि गन्धक के सेवन से सल्फुरेटेड हाइड्रोजन गैस अधिक मात्रा में बार बार निकलता है। इसीकी दुर्गंध के कारण रोगी गन्धक का उपयोग करना पसन्द नहीं करते हैं। अपान वायु में असह्य गन्ध होती है। तीसरी विधि के विरुद्ध प्रमाण यह है कि तलछटीकृत गन्धक जिसका चूर्ण बहुत ही पिच्छिल होता है वही अन्य

गन्धकीय प्रयोगों की अपेक्षा अधिक रेचक होता है। अतः स्पष्ट है कि उपरोक्त दो सिद्धांत ही अधिक माननीय हैं।

गन्धक का विशेष प्रभाव।

अनुभव से यह कहा जा सकता है कि स्वस्थ पुरुष के श्वास पथ की श्लेष्मधरा कला का साव गन्धक सेवन करने से अधिक बढ़ जाता है। साथ ही हृदय की गति और उसकी शक्ति भी अधिक हो जाती है, जिससे स्वेद का साव अधिक होने लगता है। किन्तु इस क्रिया के ज्ञान की सिद्धि में अभी कुछ सन्देह है।

गन्धक सल्फाइड और सल्फ्युरेटेड हाइड्रोजन के रूप में रक्त में प्रवेश करता है। ये उग्र विष हैं। इनके प्रभाव से रक्त का हीमोग्लोबिन प्रथम संकुचित होता है और फिर सड़ने लगता है जिससे अन्तरंग में श्वास घुटने लगता है। इस विष का प्रभाव मांसपेशियों और वातनाड़ियों पर भी पड़ता है जिससे उन पर पक्षाघातक (Paralyser) असर होता है। इसलिये विशेष प्रभाव पैदा करने वाली गन्धक की बड़ी मात्रा कभी नहीं सेवन कराना चाहिये। यह सम्भव है कि अनेक प्रकार के वात नाड़ियों के रोग अग्निमांश विबन्ध और आम विष (auto intoxication) शरीर में उत्पन्न होने का कारण यह हो कि मलाशय में सल्फ्युरेटेड हाइड्रोजन उत्पन्न होकर रक्त में प्रवेश करे।

गन्धक मुख्यतः सल्फेट के रूप में मूत्र द्वारा शरीर से बाहर निकलता है और दुग्ध; चर्म तथा फुफ्फुस के द्वारा सल्फुरेटेड

हाइड्रोजन के रूप में बाहर आता है। गन्धक सेवन करनेवाले के प्रश्वास से बहुत दुर्गंध आती है, और उसके चर्म के समीप रहने वाले रजत के आभूषण कृष्ण वर्ण के हो जाया करते हैं। पित्त के अन्दर अधिक मात्रा में गन्धक रहता है। इसको देखकर अनेक विशेष निरीक्षण करने वाले विद्वानों का मत है कि पित्त की न्यूनता जन्य रोगों में गन्धक का उपयोग करना अधिक हितकर है।

गन्धक क्षारक्षय (Albuminous Wastes) के रोगों में कोई लाभ नहीं करता।

गंधक का रोगनाशक प्रभाव।

(Therapeutics)

वाह्यांग—

मुख्यतः गन्धक का प्रयोग पामा, कंडू, विचर्चिकां प्रभृति चर्म रोगों को दूर करने के लिए किया जाता है।

जिस रोगी पर उक्त रोगों के नाश के निमित्त प्रयोग करना हो तो प्रथम उस रोगी को समझाना उचित है कि वह सोते समय पामा वाले स्थान को साबुन और जल से भली प्रकार रगड़ कर साफ़ कर पानी पोंछ ले और बाद में गन्धक का मरहम लगाकर फलालेन के बख़ से ढकदे। ओढ़ने के लिये भी उष्ण बख़ अतु के अनुसार व्यवहार करे, प्रातःकाल मरहम पोंछ डाले। इस प्रकार कुछ दिन उपचार करने से पामा शीघ्र नष्ट हो जाती है। पामा के सर्वांश में मिट जाने पर रोगी के सब बख़ संक्रम-निवारक औषधियों के साथ उबलते हुए जल से

धुला देना आवश्यक है, जिससे पामा उत्पादक पराश्रयी जीवाणु सर्वाश में नष्ट हो जावें।

पामा घाले मृदु स्थान पर गन्धक के लेपन से जलन होती है, और दुर्गंध भी आती है, इस लिये सुकुमार रोगी इसका उपयोग अधिकतर पसन्द नहीं करते हैं। ऐसी दशा में आज कल के चिकित्सक Storax (स्टॉरेक्स) मिलाकर इसका प्रयोग करते हैं। यदि पामा स्राव, पूय, चर्म-विषर्गता, कंठ आदि उपद्रव युक्त हो तो प्रंगवेन्ट सल्फुरिस कम्पोजीटा, का प्रयोग करें क्योंकि इसमें चाक (खड़िया) होती है वह कीड़ों के रहने की नालियों को खोल देता है और टार से पामा (Itch) अच्छा होजाता है और फुन्सियों से पानी निकलना बन्द हो जाता है। यह लेप उष्ण अवगाहन के उपरांत दो बार दिन में प्रयोग किया जाय तो तीन दिन के प्रयोग ही से पामा को नष्ट कर देता है।

अंगुवेंटम सल्फ्यूरिस कम्पोजीटा (इसे बिलिकम्सस आयोटेमेंट भी कहते हैं। गुज साबुन ३० तोला, सबलाइम सल्फर १५ तो०, तलछटीकृत चाक १० तोला, टार और शकर बसा ३० तोला पड़ता है।

युवान पिड़िका दूर करने के लिये किसी प्रकार के मरहम लगाने की अपेक्षा नीचे लिखा बिलयन प्रयोग किया जावे तो अधिक हितकर है—

गुज गंधक	१ ड्राम	Sulphur	1 dr.
ग्लिसरिन	१ औंस	Glycerine	1 oz.
अर्क गुलाब	१० " "	Rose water	10 oz.

सब एकमें मिलाकर मुँहको तरखे। कुछ विशेष रोगियों की युवान पिड़िका इस विलयन के उपयोग से भी अच्छी नहीं होती। उनके लिये थ्रंगवेन्ट सल्फुरिस हाइड्रोक्लोराइडिस् (*Unguentum Sulphuris Hydrochloritis*) का प्रयोग ही लाभ कारक है। गन्धक के चूर्ण को रगड़ कर फलालेन से बांध देने से संधिवात (*Rheumatism*) और गृध्रसी (*Sciatica*) में लाभ अनुभव होता है। डिपथेरिया (*Diphtheria*) नामक मलरोग में भी चूर्ण या नस्य में गंधक का प्रयोग होता है।

अन्तरङ्ग—

रक्ताक्ष और भगन्दर रोगों में मृदुरेचन के लिये गंधक बहुतायत से व्यवहार किया जाता है। इसका प्रभाव केवल मलशुद्धि तक ही नियत नहीं है। यह अर्श की रक्त प्रणालियों पर “अवसादन” प्रभाव पैदा करता है जिससे रोगी को शांति प्राप्त होती है और दर्द कम हो जाता है। सनाय की पत्ती का चूर्ण और गंधक का अवलेह समान भाग में मिलाकर प्रयोग करने से ऐसे रोगियों में विशेष लाभ देखा गया है। गंधक के प्रयोग अधिक समय तक सेवन करते रहने से मन्दाग्नि हो जाया करती है और आंतों में साव अधिक होने लगता है, जिससे पतले दस्त आने लग जाते हैं। नाग विष (*Plumbism*) हो जाने पर सीसक के शोषण को आंतों में रोकने के लिये गंधक का प्रयोग किया जाता है।

चिरकालिक सन्धिवात और आमवात (*Chronic Rheumatism and Gout*) में गन्धक का प्रयोग अधिक लाभ करता है। प्राचीन समय में हीपोक्रेट् (*Hippocretete*)

के सांप्रदायिक छात्र श्वास रोग में गन्धक का प्रयोग करते रहे हैं। आज कल भी बहुत से चिकित्सक पुरानी खांसी में इसका उपयोग अधिक लाभ कारक समझते हैं। इस प्रभाव के लिये स्पेन देशीय प्याज उबाल कर रात्रि में सोते समय खिलाया करते हैं। मेरी सम्मति में अपने देश के बड़े २ प्याज इसके लिये व्यवहार करना अच्छा है। प्याज में गन्धक होता है। किसी समय में सल्फुरेटेड हाइड्रोजन का इंजेक्शन क्षयरोग निवारण के लिये गुदा में किया जाता था। पर अब इसका उपयोग बन्द हो गया है। गन्धक अनेक प्रकार के चर्म रोगों में लाभ करता है। गन्धक के प्रयोगों में पुराना होने पर अबलेह अधिक कठिन हो जाता है इसलिये खाने में कठिनाई होती है, अतः गोलियाँ, टिकियाँ, चूर्ण आदि मधु या शक्कर के साथ देना अच्छा है। बच्चों के लिये यक्ष्मादि चूर्ण (Compound Liquorice powder) अच्छा लाभ कारक प्रयोग है।

प्राचीन समय के रसशास्त्री चिकित्सा में आगे लिखे अनुसार गन्धक का प्रयोग करते थे। पाठक प्राच्य, प्रतीय विधि को मिलाकर तारतम्य रूप से पढ़ें और विचारपूर्वक गन्धक के अनेक गुण जो रसशास्त्रों में वर्णित हैं उनकी प्रयोग द्वारा फिर परीक्षा करें। अनेक प्रकार के गंधकीय यौगिक बहुत उत्तम हैं।

रस शास्त्र में गंधक ।

प्राचीन रसशास्त्रियों को यह भली प्रकार विदित था कि

प्राकृतिक गंधक में सहयोगी खनिज और पाषाणादि रहते हैं इनसे गंधक पृथक् कर लेने का ही नाम शोधन है। इस काम के लिये गंधक को पहिले कपड़े में बांधकर दोला यंत्र से दुग्ध की वाष्प से स्वेदित करते थे। पेसा करने से स्थूल पाषाण खण्डों से गंधक पिघल कर अलग हो जाता था और उस गंधक को निकाल कर शीतल कर शीतल जल से धोकर घृत के साथ पिघाल कर कपड़े द्वारा छान लेते थे। जिस से सूक्ष्म रज आदि की अशुद्धि भी दूर कर निर्मल गन्धक प्राप्त कर लेते थे। घृत के साथ पिघालने से गंधक में आग लगने का डर नहीं रहता और संभवतः उसमें विष धर्म भी कम हो जाता है। घृत के बिना भी शोधन करने की विधि प्रचलित थी, प्रयाण में नीचे लिखे अवतरण दिये जाते हैं।

(१) "पयः स्विन्नो घटीमात्रं, वारिधौतो हि गन्धकः ।
गवाज्यविद्रुतो बस्त्राद्गलितः शुद्धिमृच्छति ॥
एवं संशोधितः सोयं पाषाणानंबरे त्यजेत् ।
घृते विषं तुपाकारं स्वयं पिंडत्वमेति च ॥

(२) स्यात्स्यां दुग्धं विनिःक्षिप्य, मुखे बलं निबध्य च ।
गंधकं तत्र निःक्षिप्य, चूर्णितं सिकताकृतिः ॥
झादयेत् पृथुदीर्घेण, खर्परैर्यौव गन्धकम् ।
ज्वालयेत् खर्परस्योर्ध्व, वनच्छायैस्तथोपलैः ॥
दुग्धे निपतितो गन्धो, गलितः परिशुध्यति ।
शतवारं कृतश्चैव निर्गन्धो जायते बलिः ॥

इस दूसरे विधान से गन्धक बहुत आसानी से शुद्ध हो जाता है। केवल यंत्र लगाकर उचित व्यवस्था कर देना आवश्यक है। मुक्ता जैसे गोल और पीले कणरूप में दुग्ध वाले पात्र में एकत्रित गन्धक शीतल जल से धोकर सुखा के व्यवहार करे।

गंधक विष है—

इति शुद्धो हि गंधाश्मानापथ्यैर्विकृतिं प्रजेत् ।

अपथ्यादन्यथा हन्यात्पातं हालाहलं यथा ॥

श्रौषधिप्रभाव—

“गंधाश्मातिरसायनः सुमधुरः पाके कटूष्णो मतः

कण्डूकुष्ठविसर्पद्रुदहनो, दोषानलः पाचनः ॥

आमान्मोचनशोषणो विषहरः सूतेन्द्रवीर्यप्रदो

प्लीहाध्मानविनाशनः कृमिहरः सत्वात्मकः सूतजित् ॥

पद्योक्त सब गुण इस समय भी सेवन कराकर प्राप्त किये जा सकते हैं।

गंधक के यौगिक—

कलांशव्योपसंयुक्तं गन्धकं रुद्राण्यूर्णितम् ।

अरतिमात्रे बस्त्रे तद्विप्रकीर्य विवेष्टव्यं तत् ॥

सूत्रेण वेष्टयित्वाऽथ यामं तले निमज्जयेत् ।

भूत्वा संदंशतो बर्त्सिमंथ्ये प्रज्वालयेच्च तत् ॥

द्रुतां निपतितो गंधो बिन्दुशः काचभाजने ॥

तां द्रुतिं प्रक्षिपेत्पात्रे नागवत्यास्त्रिबिन्दुकाम् ॥

बल्लेनं प्रमितं स्वंच्छं सूतेन्द्रं च विमर्दयेत् ।
 अंगुल्याऽथ सपत्रां तां द्रुतिं सूतं च भक्षयेत् ॥
 कराति दीपनं तीव्रं क्षयं पांडुञ्च नाशयेत् ।
 कासं श्वासञ्च शूलार्तिं ग्रहणीमतिदुर्धराम् ॥
 आमं विनाशयत्याशु लघुत्वं प्रकरोति च ।

इसी प्रकार से घृत (नवनीत) अर्क और स्नुही के दूध के साथ गंधक पीसकर द्रुति बनाने की प्रथा भी थी ।

“अथवाऽर्कस्नुहीक्षीरैर्वस्त्रं लेप्यं तु सप्तधा ।
 गंधकं नवनीतेन पिष्ट्वा वस्त्रं लिपेद्धनम् ॥
 तद्वर्तिं ज्वलितां दशे धृतां कुर्याद्दधोमुखीम् ।
 तैलं पतेद्दधोभांडे ग्राह्यं योगेषु योजयेत् ॥”

उक्त विधियों से बनाया हुआ गन्धक-द्रुति प्रयोग पश्चात् चिकित्सा का “एसिडं सल्फुरिकं परोमेटिकम्” नामक यौगिक के सदृश प्रतीत होता है । हमने इसे बनाकर प्रयोग किया है । वर्ण और आकृति में भी प्रायः समान है । ऐसी दशा में द्रुति के अभाव में उक्त एसिड काम में लाया जा सकता है । इसमें ३ औंस गन्धकाम्ल धीरे धीरे २५॥ औंस मद्यसार (६०%) में मिलाकर, उसमें १० औंस शुंठी का टिंचर (Tinchure zingiberis) और आधा औंस दालचीनी का मद्य (Spirit Cinnamomi) मिलाकर बनाते हैं । हमारे यहाँ सोंठ, मिरच, पीपल का या अर्क, स्नुही के दूध का योग है । यहाँ मद्य मिलाने से उग्रता अधिक आ गई है । पाठक अनुभव करने का प्रयत्न करें ।

केवल गंधक का प्रयोग ।

घृताक्ते लोहपात्रे तु विद्रुतं शुद्धगंधकम् ।
घृताक्तदर्विकाक्षिप्तं द्विनिष्कप्रमितं भजेत् ॥

इस विधि में गंधक का शोधन और प्रयोग दोनों लिखा है । दर्वि में डालते समय कपड़ा रखकर झान लेना आवश्यक है ।

कुष्ठ पर गंधक का प्रयोग ।

गंधकस्तुल्यमरिचः पङ्गुणात्रिफलान्वितः ।
घुष्टः शम्याकमूलेन पीतश्चाखिलकुष्ठहा ॥
तन्मूलं सलिले पिष्टं लेपयेत्प्रत्यहं तनौ ।
दृष्टप्रत्यययोगोऽयं सर्वत्राप्रतिबीयंबान् ॥

पामा और कंठ पर ।

द्विनिष्कप्रमितं गंधं पिष्ट्वा तैलेन संयुक्तम् ।
अथापामार्गतोयेन सतैलमरिचेन च ॥
विलिप्य सकलं देहं तिष्ठेत् धर्मं ततः परम् ।
तक्रमकञ्च भुञ्जीत तृतीये प्रहरे खलु ॥
भजेद्वात्रौ तथा वह्निं समुत्थाय तथा प्रगे ।
महिषीक्ष्णगणं लिप्त्वा स्नायाच्छीतेन वारिणा ॥
ततोऽभ्यज्य घृतैर्देहं स्नायादिष्टोष्णवारिणा ।
अमुना क्रमयोगेन विनश्यत्यतिवेगतः ॥
दुर्जया बहुकालीना पामा कण्डूः सुनिश्चितम् ।

आजकल के समय में भी पाश्चात्य चिकित्सक सामयिक परिवर्तन के साथ इसी प्रकार से गन्धक का प्रयोग, पामा कण्डू

विचर्चिका आदि रोगों में करते हैं। घोष की मेटेरिया मेडिका पृष्ठ ६४० के नीचे लिखे अवतरण का मनन करें।

Sulphur is chiefly used in the treatment of Scabies or Itch. The patient should be instructed to scrub the skin well with soap and water at bed time, then rub the ointment and sleep in flannel garments. He may wash off the ointment when he rises in the morning. In this way, itch can be cured in a few days. When the cure is complete the patient must be warned to change his linen, and have it thoroughly disinfected to destroy any eggs of the parasite, that may remain in it.

इसका संक्षिप्त भावार्थ यह है कि गन्धक पामा क्रंडू आदि नाशन निमित्त ही मुख्यतः व्यवहार की जाती है। जब गंधक का प्रयोग किया जावे तब रोगी को समझादे कि गन्धक का लेप लगाने के पूर्व पामा वाले स्थान को साबुन और जल से खूब रगड़ कर धो दे। यह कार्य रात्रि में शयन के समय करे। लेप लगाकर फलालेन से उष्ण शय्या में शयन करे। प्रातःकाल उठकर आवश्यकता हो तो गंधक का लेप धोकर साफ करदे। इस प्रकार करने से अल्प समय में ही पामा नष्ट की जा सकती है। जब रोगी भला चढ़ा हो जावे तब उसे सतर्क कर देना चाहिये कि वह अपने सब वस्त्रों को भली प्रकार संक्रम निवारक द्रवों में डालकर साफ करे जिससे पामा उत्पादन करनेवाले पराश्रयी जीवाणुओं के अंकुर नष्ट हो जावे।

आर्य रस चिकित्सकों ने गन्धक सेवन करते समय कुछ द्रव्य भोजन में सेवन करना निषिद्ध लिखा है। निषिद्ध द्रव्य के सेवन करने से सम्भवतः गन्धक का विष प्रभाव उग्र होकर हानि पहुँचा सकता है। पाश्चात्य चिकित्सक अभी पथ्या-पथ्य विषय में बड़े उदासीन हैं। अब धीरे धीरे भोजन प्रभाव की आलोचना करने लगे हैं।

निषिद्ध द्रव्य

क्षाराम्लतैलसौबीरविदाहि द्विदलं तथा ।

शुद्धगन्धकसेवायां त्याज्यं योगयुतेन हि ॥

गन्धक के भेषज कल्प अनेक द्रव्यों के साथ—

चूर्णाकृत्य पलानि पञ्च नितरां, गन्धाश्मनोयत्नत-

स्तच्चूर्णं त्रिगुणं च मार्कवरसे ज्ञायाविशुष्कीकृतम् ॥

पथ्याचूर्णसमं तथा मधुघृतं प्रत्येकमेकं पलं

वृद्धो यौवनमेति माषयुगलं, खादन्नरः प्रत्यहम् ॥

यह योग एक प्रकार का अबलेह (Enema) है, नवीन पद्धति के चिकित्सक भी अबलेह प्रयोग करते हैं। यह पूर्व में लिखा जा चुका है।

यो वायुप्रसितः सुचूर्णितमिदं गन्धाश्म कृष्णासमं ।

पथ्यातुल्यमथापि पूजितगुरुभूतेशपूज्यारतः ॥

आहारादिषु यंत्रणाविरहितः स्यात्पुष्टिशौर्यान्वितः ।

प्रोक्तुल्लाम्बुजनेत्र एवमजरश्चामीकराभाध्वयः ॥

(बंगसेन)

अ गा गन्धस्य चत्वारो द्वौ भागौ नागरस्य च ।
भागौ द्वौ त्रिवृतश्चापि सर्वं खल्वे विचूर्णयेत् ॥
आर्द्रकस्य रसैरादौ मर्दयेद्विषसत्रयम् ।
कटुत्रयस्य सलिलै खफ ताया रसैस्तथा ॥
अक्षमात्रां वटीं कुर्याद्भक्षयेत्तां दिने दिने ।
आमवातं निहन्त्येव मासत्रयनिषेवणात् ॥

(रसयोगसागर)

गन्धमामलकीचूर्णं धात्रीरसिभाषितम् ।
सप्तधा श ल्मलीतायैः शर्करामधुयोजितम् ॥
लीढं च नुपयः पानं प्रत्यहं कुरुते तु यः ।
पनेनाशीतिवर्षोऽपि शतधा रमते स्त्रियम् ॥

(भै० र०)

गन्धकस्य पलञ्चैव मृतकस्य पलन्तथा ।
गगनस्य पलञ्चैव त्रिकलानां पलत्रयम् ॥
द्विपत्रकं तु पत्रं वा घणामासं वा प्रयोगतः ।
बलीष लतनिर्मुक्तः सर्वरोगविघ्नितः ॥
द्विद्वष्टः प्रवर्तेत जीवेद्दशतं नरः ।
धाता रतलमयुक्तं त्रिकलापुरकेण च ॥

(व० रा० रसायने)

गन्धकस्य पलञ्चैकं रसस्यार्द्धं क्षिपेत्तथा ।
कुमारीरसमपिष्टं दिनैकं गालकीकृतम् ॥
अन्धमूषागतं ध्मातं लेहयेन्मधुमणिषा ।
माषमात्रप्रयोगेण जराव्याधिविनाशनम् ॥

(वै० चि० रसायने)

- ९ गव्यं घृतं पलञ्चैव तद्वद्धं शुद्धसूतकम् ।
गन्धकं पलमात्रेण जरव्याधिविनाशनम् ॥
वाचस्पतिसमो बुध्या घण्टमासाचरणेन च ।

(३० रा० रसायने)

- ८ गन्धकं त्रिफलायुक्तं घृतेन मधुना सह ।
भक्षितं तु महारोगं हन्ति मासेन दाहणम् ॥

- ९ अम्लकं हरबीजञ्च पण्डशेन तु काञ्चनम् ।
ध्मातं प्रकटमूषायां गन्धकेन सुसंयुतम् ॥
मूषां त्यक्त्वा समारोहेदूर्ध्वं तु खगवद्रसः ।
राजिकार्द्धमात्रेण पवेतानपि वेधयेत् ॥
राजसर्पपमात्रेण तं रसं यदि भक्षयेत् ।
खेचरत्वमवाप्नोति क्रोडते निर्जरैः सह ॥

- १० तुल्यसंख्यं शुद्धसूतं गन्धराजेन रजितम् ।
म्लेच्छं कमठयन्त्रेण क्षारेणैव पिधाय च ॥
क्रमाग्निना चैकदिनं स्वाङ्गशीतलमुखरेत् ।
सम्मर्द्य बलुमात्रञ्च शर्कराघृतसंयुतम् ॥
प्रातः सायं प्रदातव्यं सर्ववातविकारजित् ।
वातव्याधौ धातुशोथेऽतिसारे रसवैकृतौ ॥
अष्टादशसु कुण्ठेषु गवाज्यं दधि तक्रकम् ।
हैमगौरिकसंयुक्तं समांशं गन्धकं रसम् ॥
देवदाङ्गीरसेनैव रसस्य कामणं भवेत् ।

(३० रा० वातविकारे)

११ शुद्धसूतं समादाय धात्रीगन्धकसंयुतम् ।

संवत्सरप्रयोगेण चिरायुः पुरुषो भवेत् ॥

(व० रा० रसायने)

१२ मयूरकेण संयुक्तं पांडुरोगं विनाशयेत् ।

१३ महाकालायसंयुक्तं हरेत्कुष्ठान्यशेषतः ॥

१४ शुल्बस्य गगनस्यापि हेमघातोरथापि वा ।

समांशं पिष्टकं कृत्वा, अन्धमूपानिवेशितम् ॥

निम्बपञ्चाङ्गसंयुक्तं कुष्ठमौदुम्बरं जयेत् ॥

१५ शशिरेखासमायुक्तं गन्धं भुक्त्वा समाहितः ।

घृतदुग्धाशनेनैव कल्पायुर्जायते नरः ॥

१६ गन्धकं घृतदुग्धाभ्यां त्रिवारं शोधयेद्भिषक् ।

ततः स्थूलामलकजै रसैः पिष्ट्वा च सप्तधा ॥

मात्रां त्रिमाषिकां युञ्ज्यादनुपानेन युक्तितः ।

वातरक्तं तथा कुष्ठं कण्डूं पामां विचर्चिकाम् ॥

अग्निमान्द्यं ग्रहणिकां जयेदेतद्भिषग्जितम् ।

लवणं वर्जयेद्यावद्भोगशान्तिर्न जायते ॥

(रसायनसंग्रह-वातरक्ते)

१७ गन्धकार्धपलं शुद्धं पीतं दुग्धैः त्रिसप्तकम् ।

दुग्धान्नभोजिनो हन्ति कण्डूपामाविचर्चिकाः ॥

(रसकामधेनुः)

१८ गन्धकं मधु तैलञ्च कर्षमात्रं लिहेत्सदा ।

मेदोवातकफान्हन्ति मासमात्रात् संशयः ॥

(चि० वै० मेदोऽधिकारे)

१६ गन्धः साज्यो निष्कको वा सदुग्धः ।

सेव्यो मासं शौर्ध्वीर्यप्रवृष्ये ॥

परमासान्ते दीर्घरोगाग्निहन्ता ।

दिव्या दृष्टिर्जायते दीर्घमायुः ॥

(नि० १० रसायने)

२० युक्तं गन्धकपिष्ट्या च तालकं स्वर्णमात्मिकम् ।

युक्त्या तद्गुणैर्नातं तृष्णाद्धर्दिनिवारणम् ॥

(१० १० कौ० तृष्णायाम्)

२१ गन्धकं त्रिफलाचूर्णयुक्तं भृङ्गेन संयुतम् ।

घृतेन मधुना युक्तं स्नादेच्छोषज्वरापहम् ॥

(नि० १० रसायने)

२२ यः कृत्वाथो विशुद्धिं त्रिदिनमथ दिनेकं च संस्थाप्य देहं ।

कर्षं गन्धोपलस्य प्रतिदिनमनवेनापि तुल्यं गुडेन ॥

तैलाम्लक्षारवर्जी स भवति रसकोद्वृषामाविचर्णी

कण्डूकापालकुष्ठंकिट्टिभिरहितः कामरूपी समाह्वान्

(यो १० कुष्ठे)

२३ यो गंधाश्म सुचूर्णितं पिबति ना तैलेन कर्षोन्मितम् ।

अभ्यङ्गाभ्याजलावनेचनरतः पंखा पयः प्रत्यहम् ॥

समाहास्यतं निहन्ति सकलां पामादि सर्वा रुतं ।

नित्यभिसवशाद्दिनष्टसकलकलेशोपतापः पुमान् ॥

(१० से०)

गन्धकद्रुतिः (गन्धकाम्ल)

बीजं ब्रह्मतरादिधाय बहुधा खण्डं त्रियामोषितं ।
 ह्यग्रे दुग्धवरेऽथ शुष्कमथ तद्वन्धेन तिथ्यंशिना ॥
 युक्तं काचघटीच्युतं हुतभुजो योगेन कृत्वा ततः ।
 सत्त्वं तस्य निगृह्य काचघटिते भाण्डे शुभे स्थापयेत् ॥
 तत्तैलं बलमादाय ताम्बूलीपत्रगं चरेत् ।
 त्तिप्त्वा तत्र रसं बलमंगुल्यग्रेण मर्दयेत् ॥
 युक्त्या तां कज्जलीं भुक्त्वा ताम्बूलं शीलयेदनु ।
 शाकाम्लमापपट्वादि वर्जितं पथ्यमाचरेत् ॥
 अनेन रसराजेन पण्डोऽपि पुरुषायते ।

(वृ० यो० त०)

श्यामधुत्तरसुरसाकासमर्दपुनर्नवाः ।
 विलयमाकं बद्ध्वै च पिप्पलीरुवासकाः ॥
 सोमराजीचक्रमर्दतिलपर्णीदिवाकराः ।
 एतेषां स्वरसैस्त्रिस्त्रिर्भावयेन्निर्मलाम्बरम् ॥
 परिणाहे च दैर्घ्ये च हस्तमात्रं भिषग्वरः ।
 आतपे शोषयेद् बुद्ध्या प्रतिवारं तृणोत्तरैः ॥
 ततः पलमितं गन्धं पेप्रयेच्चतुराज्यकम् ।
 तत्पिष्ट्वा लेपयेद्वस्त्रं वर्त्ति तस्य प्रकल्पयेत् ॥
 अयः शलाकयाऽऽविध्य रत्नस्या पुच्छं मुखं पुनः ।
 प्रज्वालयाधः स्थिते पात्रे शोणसर्पिः स्रवेच्च यत् ॥००
 गृहीत्वा काचपात्रे तत्स्थापयेदिष्टमन्त्रितम् ।
 नागवल्लीदले तच्च चतुरक्तिकया मितम् ॥

गृहीत्वा पारदं बल्ल शुद्धं तत्र च निःक्षिपेत् ।
 अङ्गुल्या मृदु समर्धं तयोः कज्जलिकाञ्चरेत् ॥
 खादेत्तद्वीटिकां प्रातः पथ्यं दुग्धौदनं लघु ।
 दिनानि मनुसंख्यानि पश्चान्मुद्गं ससैन्धवम् ॥
 त्रिसप्ताहे व्यतीतिं तु शाकमापाम्लवर्जितम् ।
 ककाराष्टकरहितं भोजनं पथ्यमुत्तमम् ॥
 कुष्ठमष्टादशविधं प्रमेहक्षयकामलाः ।
 हृद्रोगप्रहणीपाण्डुकासश्वासभगन्दराः ॥
 ब्रण्णाश्च विविधाः सर्वे कृमिशूलानिलार्तयः ।
 आमवाताश्लिवदनकर्णस्यातङ्गसञ्चयाः ॥
 अग्निमांशञ्च पाण्ड्यञ्च रक्तपित्तं भ्रमस्तृषा ।
 मूर्च्छातन्द्रासहृद्रोगा जठराण्यखिलानि च ।
 अङ्गीर्णानि च सर्वाणि बलतयः पलितानि च ॥
 नश्यन्त्यनेन योगेन सत्यं शिखवचां यथा ।
 नास्त्यनेन समो योगो वृष्यः कुत्रापि भूतले ॥

(१० की०)

३ आर्द्रकस्य रसे पिष्टं गन्धकेन विमिश्रितम् ।
 तुल्यं तु तिष्ठदशकं तन्मानं चास्रकं भिषक् ॥
 दशनिष्केन तन्मानं ताम्रं च शकलीकृतम् ।
 भर्जयेत्खपरं क्षिप्त्वा दहेत्तदनु चूर्णयेत् ॥
 तन्मिश्रं कन्दुकस्थेन चूर्णामेतेन भर्जयेत् ।
 गन्धकं चूर्णितं कृत्वा कर्पं तु विधिना शनैः ॥
 मर्दितं तैजलप्रस्थे नीलं चापि शिलाजतु ।
 कर्पप्रमाणं निःक्षिप्य मर्दयेद्भाषयेत्पुनः ॥

प्रसादं स्नाबयेत्पश्चादातपे परिशोषयेत् ।
 गन्धकद्रुतिरित्येषा सर्वनेत्रामयापहा ॥
 विशेषाद् व्रणकुष्ठं च पिल्लं काचं कुकूणाकम् ।
 जयेत्स्तन्यघृतशौद्रेः सर्वं तत्परिकल्पयेत् ॥
 व्रणान्कुष्ठान्मुसूमाग्रानपि शीघ्रं निवर्तयेत् ।
 तत्किट्टं दद्रुकिट्टिभपामार्दौल्लेपनाजयेत् ॥

(१० २० समुच्चय—नेत्रामयः)

गन्धकपपटी रसः

भृङ्गराजरसेनैव लोहपात्रेऽग्निना पचेत् ।
 द्रावयित्वा धिनिःतिथ्य मायूरमिव जायते ॥
 जयादलरसेनापि वर्धमानरसेन च ।
 शृङ्गवेररसेनापि काकमाच्या रसेन वा ॥
 रसगन्धह्वयं तद्धं लोहपात्रे प्रियोत्तमे ।
 पकीकृत्य च तावच्च खल्वयेदतियत्नतः ॥
 यावच्च नीलवर्णं स्यात्कोलाङ्गारैश्च पाचयेत् ।
 गोमयस्यालबालेन स्थापिते कदलीदले ॥
 ढालयेत्पाकवित्प्राज्ञस्ततस्तु प्राशयेन्नरः ।
 एवं सति सुखायां पथ्यभुग्भिः प्रसेव्यते ॥
 गान्धिकी पपटी चैषा सिद्धा कालस्य सिद्धिदा ।
 दुर्नामप्रहृणीमामशूलञ्च नाशयेद् भ्रुवम् ॥
 कामलां पाण्डुरोगञ्च ग्रीहगुल्मजलोदरम् ।
 मस्मकञ्चामबातञ्च कुष्ठानि च भ्रुवं जयेत् ॥
 एवमादीनि जित्वैव वपुषा निर्मलः सुखी ।

जीवेद्वयं शतं पूर्णं यत्पलनवर्जितः ॥
सर्वव्याधिचिकित्सायां कलहाऽयमतिदुर्लभः ।

(ब० से०)

गन्धकपिष्टिः रघः

गन्धकं पलमादाय तुलसीरसपेषितम् ।
द्विदिनं गांजले पञ्चास्यैवाद्रं पेषयेत् ॥
तत्समं पारदं क्षिपन्वा माहवेण वनत्रयम् ।
मदेयित्वाजमूत्रेण तथैव परिशोधितम् ॥
मेलयेत्तेन द्रावेण शोधितेन द्वयं ततः ।
एकीकृत्य रसैः पिष्ट भोग्दु गन्धकपिष्टिका ॥
तां पिष्टिकां प्रयुज्जीत चतुर्धनप्रमाणतः ।
जम्बीराद्रकनागभ्यां धनुर्वातादिकान् गदान् ॥
सततगन्धप्रयोगेण स्रोन्मादतमिगज्जयेत् ।
घातश्लेष्मोद्भवान् रोगान् हस्य देव न मशयः ॥
शर्कराद्रकमिन्धूय युक्तं पित्तान्तराज्जयेत् ।
तत्तदौषधयोगेन तत्तद्रोगनिवहणः ।
त्रिह्लास्तम्भं हनुस्तम्भमूकस्तम्भापतानकम् ।
निर्गुणडीसैन्धवापेता हन्ति गन्धकपिष्टिका ॥

(ब० रा०)

गन्धक रसायन —

(१) शुद्धोषलिर्गोपयस्मा विभाव्यस्ततश्चतुर्जातगुह्यविकाटिः ।
पश्चादध्याव्यौषधभृज्जलाजैर्भाव्योऽष्टवारं पूयगाद्रं कथं ॥

मिश्रं मितां योजयन्तुल्यभागां रसायनं गन्धकपूर्वकं स्यात् ।
 माषद्वयं सेवितमाशुकुर्याद्वीर्यस्य वृद्धिं दृढदेहवान्हम् ॥
 कण्डूमषामां विषदोषमुग्रं सपांडुरोगं सहमुष्कवृद्धिम् ।
 ज्ञागज्वरं मेहगणान् तीक्ष्णं वाताभ्यांश्चैव सकृन्नहन्ति ॥
 ध्यायामं मधुनायासं गन्धसेवी सदा त्यजेत् ।

(वृ० यो० त०)

२ पलिकं त्रिकृताचूर्णं पलार्धं गन्धकस्य तु ।
 लोहभस्मं तु कर्षिकं सर्वं संचूर्ण्य मिश्रयेत् ॥
 कर्षार्धं मधुवर्षिण्यां लेहयेत् सर्वशूलनुत् ।
 वातविस्फोटकान् हन्ति सेविनस्तु त्रिमासतः ॥
 गताः केशाः पुनर्यान्ति गन्धकस्य रसायनात् ।

३ आम्रामृतात्रिचुचुन्यं गन्धकञ्च कुमारिका ।
 रसेर्विमघं द्वौ माषौ साज्यौ पञ्चशताब्दवान् ॥

४ गन्धं पलशतं प्राह्यं सूक्ष्मचूर्णञ्च कारयेत् ।
 भांडगर्भे क्षीरपूर्णे तन्मुखे बल्लबन्धनम् ॥
 गन्धं तस्योपरि क्षिपेत्वा ततो भांडमधोमुखम् ।
 तत्सन्धिबन्धनं कृत्वा तद्दर्शं वह्निदीपनम् ॥
 यामार्धं पुटमयुक्तं स्वाङ्गशीतलमाहरेत् ।
 तद्गन्धं चूर्णितं कृत्वा अजातीरेण भावयेत् ॥
 इक्षुदण्डरसेश्चैव ह्यमृतामधुगंधुरैः ।
 वाराही मधुकं कुष्ठं भृङ्गराजं हरिप्रिया ॥
 एकैकस्वरसेनैव भावयेद्दशवासरम् ।
 घर्षयेद्भावयेन्नित्यममृतीकरणं यथा ॥

पिप्पली पिप्पलीमूलं लवङ्गं नागकसरम् ।
 त्रिफला पद्मकं बीजं समांशं च विनिःश्लिषेत् ॥
 शर्करामधुसंयुक्तं माषमात्रञ्च सेवयेत् ।
 शाल्यञ्च सगोधूमं घृतं क्षीरं मशकं रम् ॥
 सकणां सेवयेन्नित्यं बलीपलितनाशनम् ।
 देहं सुवर्णावर्णाभं दिव्यत्वञ्च न संशयः ॥
 सर्वभूतहितं गोप्यं गन्धकाख्यं रसायनम् ।

(३० यो० त०)

५ गन्धकं पट्टपलं शुद्धं त्रिफलाचित्रतगडुलान् ।
 त्रिकटुं त्रिसुगन्धञ्च कणामूलञ्च जीरकम् ॥
 चित्रकञ्च पल्लकञ्च चूर्णितं वस्त्रगालितम् ।
 एकनिष्कं द्विनिष्कं वा त्रिनिष्कं भक्षयेद्दिनम् ॥
 दिर्नादौ मधुना चाथ नवनीतेन वा लिहेत् ।
 कदलीफलसारेण शर्करासहितं तथा ॥
 दीर्घायुः कुञ्जरबलस्तुरङ्ग इव वेगवान् ।
 तस्य मूत्रपुरीषाभ्यां शुल्बं भवति काञ्चनम् ॥

(४० रा० रसायने)

६ शुद्धसूतपले द्वे च चत्वारो गन्धकस्य च ।
 बालुकायत्रगोपकं जायते भरुम सूतकम् ॥
 तस्य सूतस्य भागैकं तत्समं कुरु गन्धकम् ।
 गन्धकेन समं शुल्बं शुल्बतुल्यमयोमृतम् ॥
 पिप्पलीञ्च श्लिषेत्तस्मिन् सवमेकत्र कारयेत् ।

मातुलुङ्गरसैः पेष्यं लेहयेन्मधुसर्पिषा ॥

संवत्सरप्रयोगेण वज्रकायो भवेन्नरः ।

(सू० को० रसायने)

गन्धकलोह—

गन्धं लौहं भस्म मध्वाज्ययुक्तं सेव्यं वर्षे धारिणा त्रैफलेन ।

शुक्ले केशे कालिमा दिव्यदृष्टिः पुष्टिर्शीर्यं जायते दीर्घमायुः ॥

गन्धकवटी—

(१) शुद्धगन्धकभागिकं सत्त्वं शुष्क्याश्चतुर्गुणम् ।

निम्बुनोरिणं सम्मयं सप्तवारं विशेषतः ॥

पुनश्च सैन्धवं क्षेप्यं यथार्कच भिषग्बरैः ।

चणकप्रमितां कुर्याद्दृष्टिकां रुचिदायिनीम् ॥

भोजनान्ते सदा देया गन्धकाख्या वटी शुभा ।

(१० सु० प्रकृत्याम्)

(२) पलकं द्वावपेक्षिम्बुरसे गन्धकमग्निना ।

निष्कद्वादशकं तस्य श्वेतां तुल्यां गुटोत्रयम् ॥

तद्गुटोभिः समभिश्च मेहा नश्यन्ति सर्वशः ।

भक्तं शशस्य मांसेन पथ्यं देयं भिषग्बरैः ॥

(२) विशुचिकाविध्वंसिनी—

लशुनजीरकसैन्धवगन्धकः ।

त्रिकटुरामठचूर्णमिदं समम् ॥

सपदि निम्बुरसेन विशुचिकाम् ।

हरति भो रतिभोगविचक्षणे ॥

(वै० जी०)

गन्धकाजीर्णरुद्धा रसः—(गन्धवद्धः)

वृत्तञ्च द्व्यंगुलाकार दीर्घोक्त्वं षोडशांगुलम् ।
 सम्पुष्टं मृण्मयं पक्वं कारयेत्सुदृढं शुभम् ॥
 पूरयेद् बालुकाभाण्डे यावत्स्याद् द्व्यंशांगुलम् ।
 चुल्यामारोप्य तद्भाण्डमधो मन्दाग्निना पचेत् ॥
 पलेकं चूर्णितं गन्धं सम्पुष्टान्ते त्रिनिःक्षिपेत् ।
 शुद्धमृतं पले पश्चात्ततो गन्धं पले क्षिपेत् ॥
 आच्छाद्य पात्रयेत्तावदावशिष्टं गन्धकम् ।
 काकमाच्या द्रवैः पूर्वं सम्पुष्टाया पात्रयेत् ॥
 जीर्णं द्रावे पुनः पूर्वं नागवल्या द्वाद्वैः ।
 तज्जीर्णं धूर्तजद्राविर्मेघनाद्वैः पुनः ॥
 एवं पुनः पुनर्द्वयं यावज्जीर्यति गन्धकम् ॥
 स्वभावशोतलं ज्ञात्वा भित्वा संपुष्टमाहरेत् ।
 गन्धकाजीर्णवद्धोऽयं सर्वरोगहरो रसः ॥

(१०१०)

गन्धकादि चूर्णम्—

गन्धकं कर्प मात्रञ्च शिवायाः कर्प पञ्चकम् ।
 द्विकर्पं मातृकञ्चैव गोघृतञ्च पलांश्चितम् ॥
 एकीकृत्य ततः सर्वं कर्पकञ्च पिवेत्पुनः ।
 गोमूत्रं च संयुक्तं गलरोगं विनाशयेत् ॥

गन्धकादिः षोडलीरसः—

गन्धकं तालकं ताप्यं शिलाहं पिप्पलीकृने ।
 कषाये भावयेत्सुदृढः क्षीरे मूत्रे च सप्तशः ॥

निष्काधमस्याः पाण्डुर्याः कर्पाधि साज्यमात्तिकम् ।

प्रयोउयं सयकृत्प्लीहा पञ्चकोलकलांशिकम् ॥

वर्षाभूः कारवी शीण्डो सूत्रीवचफलासनम् ॥

तिलाः भिप्रेतमा बाणा निशा कर्कन्धुसूरिकाः ॥

रक्तागस्येन्दुरेखादनीलज्यातिरयोमृतम् ।

बलकल बहुबल्लयाः कृष्णा काम्बोजिकाफलम् ॥

गवाक्षी रजनी कृष्णा निम्बवेल्लकठिल्लकम् ।

मणिकांग पृथक् क्षुण्णं तुल्यं भूशर्करायुतम् ॥

त्रिकलावीजतलेन भावित कर्षसम्मितम् ।

प्राङ्गे घृतेन मध्याङ्गे गुडेन मधुना निशि ॥

पार पादार्धमात्रं वा पाण्डुर्याश्च रजो भवेत् ।

हैयङ्गवीनशाल्यक्षकृष्णागाक्षीरमोजनः ॥

एवं वर्षत्रयं कुर्यात्स्याद्बलोपलितोज्झितः ।

प्रत्यहं मण्डलं खादेत्पथ्य त्यक्त्वा ततः परम् ॥

इष्टहारविहारी च सहस्रागुर्भवेत्परम् ।

भाषा—शु० गन्धक, शु० हरिताल, सुवर्ण मात्तिकभस्म शु० मनःशिला, सब समान भाग में लेकर पीपल का क्वाथ, थूहर का दूध और गोमूत्र की सात सात भावना देकर खूब घोट कर गोली बनाये । १ गोली १॥ से २ माशा वजन में रोगी की शक्ति के अनुसार ३ से ६ माशा मधु घृत और १६ भाग पंचकोल चूर्ण मिलाकर सेवन कराने से यकृत, प्लीहा रोग में लाभ होता है । पञ्चकोल से पीपल, पीपलामूल, चाव, चित्रक और सोठ समान भाग में लेना चाहिये । इसके अतिरिक्त नीचे लिखे द्रव्यों का अनुपान अधिक लाभकारक है । सफेद

पुनर्नवा, कलौजी, गजपीपल, कुशकी जड़, बच्च, त्रिफला, विजयसार, तिल, अमरवेल, शरपुष्पा, हल्दी, बेर की मज्जा, ब्राह्मी, लाल अगस्त के फूल, बाकुची, नागरमोथा, कालादाना अथवा अपराजिता, लौहभस्म, तज, गुडुची के फल, पीपल सफेद, गुजा, इन्द्रायण की जड़, शरहल्दी, नीम की छाल, धिङ्ग, लाल पुनर्नवा उक्त सब शुष्क द्रव्य एक एक तोला लेकर सूक्ष्म चूर्ण करे जितना चूर्ण हो उसके समान भूशकरा (दीमक के मूलघरकी मृत्तिका अथवा बाराहोकरन्द का चूर्ण) मिलाकर त्रिफला की मज्जा के तेल से एक भावना देकर तय्यार करलें, इस चूर्ण में से एक तांजा लेकर उसमें उपरोक्त पांढली रस चतुर्थांश अथवा अष्टमांश मिलावे और प्रातःकाल घृत से मध्याह्न में गुड़ से और रात्रि में मधु के साथ सेवन करें। पथ्य में गोघृत (मक्खन) श्वेत चावल कृष्ण बरग गाय का दूध सेवन करे। इस योग का नियमित रूप से ३ वर्ष तक सेवन करने से मनुष्य बली पलित रहित होकर दीर्घायु होता है। किसी रोग की निवृत्ति के लिये इसका प्रयोग किया जाय तो एक मण्डल पथ्यन्त अर्थात् ४६ दिन तक सेवन करे रोगमुक्त होने पर यथेच्छाहार बिहार करने से भी दीर्घायु होता है। इस योग में औषधियों के नाम अति कठिन शब्दों में होने के कारण भाषा लिखदी गई है ताकि पाठकों का निघण्टु की तह न झाननी पड़े।

(१) गंधक सेवन की विशेष विधि—

ज्योतिष्मत्यास्तैलमाज्यं सगन्धं,
गुडाबुद्ध्या सेवयेन्मासमात्रम्।

यावच्च स्याद्यस्तु सः प्राप्य मूर्ति--
मेधायुक्तो दिव्यदृष्टिर्नियः ॥

(१० १० स०)

(२) सेवेद् गन्धं राजबृत्तान्वितं तत्-
लेपाच्चूर्णं याति नाशं विसर्पः ।
यद्वा रक्तं सुष्टु निःसार्य लेपा-
द्राज्जीवीजैर्भजितैराज्यमिश्रेः ॥

(१० १० स०)

(३) गन्धकं मरिचं साउयं पिवेद्वातकफापहम् ।
गन्धकं घृतपानेन श्वासयक्ष्मक्षयापहम् ।

(१० १००)

गन्धर्वरसः—

(१) गन्धकाष्टगुणं, सूतं शुद्धं मृद्वग्निना क्षणम् ।
पक्त्वाऽवतार्य सञ्चूर्ण्य चूर्णतुल्याभयायुतम् ॥
सप्तगुडमिव खादेद्बर्धयेच्च दिने दिने ।
गुजैकैकं क्रमेणैव यावत्स्यादेकं विंशतिः ॥

(१) टिप्पणी—यह योग पारद प्रयोग के कारण अथवा फिरंग के उपद्रव से कम्पवात हो जावे, उसमें सेवन करना अधिक लाभकारक है। इसमें पारद के साथ अधिक गन्धक रहने से शरीर के अन्दर जो संग्रह रूप से पारद कभी रह जाता है, उसे सल्फाइड के रूप में बाहर निकाल देता है। और फिरंग के विष को पारद सूक्ष्म मात्रा में रहता है वह नष्ट कर देता है।

क्षीराज्यशकरामिश्रशान्यञ्च पथ्यमान्वरेत् ।
 कम्पशतप्रशान्त्यये निर्वाने निबन्धेनवा ॥
 गन्धर्वाकरो रसो नाम त्रिपक्षात्कम्पवातनुत् ॥

(२० सि०)

(२) गंधामकम्—

अद्याच्चकं शोधितगन्धतुल्यं,
 करीषवन्धौ लघुना पुटेन ।
 निखं भजेत् ज्वपणसिगुयुक्तं,
 यथावयोवन्निबलप्रमाणम् ॥
 जयत्यतीसागमुदारकरो,
 द्रुताशमायं प्रहणीधिकारम् ।
 अशोभि मेहानथ पांडुरागं,
 प्लीहान्त्रवृद्धिं परिणामशूलम् ॥

(लो. प.)

गंधामृती रसः—

रसं गन्धञ्च तैलेन मर्दयेत्पादटंकणम् ।
 तत्पिण्डं बन्धयेत्तुल्यं गन्धं जायञ्च पूर्ववत् ॥
 चूर्णालिप्तपिष्टिकायन्त्र यावज्जीयति षडगुणम् ।
 योगवाक्षोपधद्राविः पिष्टृषा लेप्यञ्च स्वेदयेत् ॥
 अयं गन्धामृता नाम रसो िक्षां विनाशयेत् ।
 गुक्तात्रयं लिहेत्क्षोद्रेः कषायञ्च विवेदनु ॥
 अमृताग्निकुलार्थञ्च पाययेत्कथं तत्रलैः ।

(२० सि०)

(४) गन्धाश्मगर्भोरसः—

गन्धं रसेनाष्टगुणं विमर्द्य,
 कृशानुतापेन विपाचयेत् ।
 मृदग्निना लोहमयेऽथ पात्रे,
 विषेण पश्चादपि सिद्धिमेति ॥
 गन्धाश्मगर्भो हि रसोऽस्य सर्व-
 स्पर्शप्रणुत्यै भज बल्लयुग्मम् ।
 सक्षीरमन्नं सघृतञ्च भोज्यं,
 वज्र्यञ्च सर्वं परिवर्जनीयम् ॥
 (१० १० स० स्पर्शवाते)

(५) गरनाशुनो रसः—

शुद्धमृतं मृतं स्वर्णं संशुद्धं हेममाक्षिकम् ।
 त्रयाणां गन्धकं तुल्यं मर्द्यात्कन्याद्रवैर्दिनम् ॥ *

* टिप्पणी—यह योग गरविष नाशक के लिए बहुत उपयोगी है। इसका प्रयोग नागविष पर करना चाहिये, सीसक के कार्यालय में काम करने वालों को यह विष प्रायः सताता है, इस लिये ऐसा योग वैद्यक व्यवसायियों के पास तैयार रहना चाहिये, जो लोग सीसे के पंप का पानी पिया करते हैं उनको भी कभी कभी सीसक के विलयन के उदरस्थायी होने से यह रोग देखा जाता है। उदरशूल के रोगियों में कारण ज्ञात करते समय लेड पाइप का पानी निरन्तर पान करते हैं वा नहीं इसका भी ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक है। जो लोग देहात से आकर बाटरबर्कस वाले नगर में रहने लगते हैं उन पर इसका प्रभाव प्रायः देखा जाता है। इस योग में सुवर्ण और सुवर्ण माक्षिक दोनों द्रव्य विषनाशक, बलकारक, और तत्क्षण प्रभाव दिखाने वाले हैं। गन्धक पारद का प्रभाव पूर्व में लिखा ही जा चुका है।

तच्छुष्कभस्मितं क्षौद्रं मासैकं लेहयेत्सदा ।

बन्धिमूलं शृतं क्षीरेणु स्याद्द्वरनाशनम् ॥

(१० व०)

गन्धक प्रकरण में जितने योग लिखे हैं वे सब शरीर के भिन्न भिन्न अवयवों पर भिन्न भिन्न रोगों में काम करने वाले हैं। जो वैद्य रोगी की शय्या के पास बैठकर रोगदशा और उसकी चिकित्सा का अन्वेषण करना चाहे उनकी सरलता के लिये ही यहां इनका उल्लेख है। पाश्चात्य चिकित्सा में इस प्रकार के विज्ञान को Clinical medicine (क्लिनिकल मेडि-शन) कहते हैं। आज इस प्रकार के अध्ययन के अभाव से ही वैद्यों में इतना मतभेद है। इस प्रकृति के प्रारम्भ करने से देशी चिकित्सा व्यवसायियों में नवयुगारंभ होगा। मैंने यह भी प्रयत्न किया है कि गन्धक भिन्न भिन्न औषधियों के साथ क्या क्या प्रभाव करता है वह भी पाठकों को एकत्रित मिल सके। इसी प्रसंग में गोदन्ती प्रकृति में कैसे और किस किस रूप में प्राप्त होती है उसका वर्णन करना भी प्रासंगिक है। यद्यपि संक्षिप्त वर्णन पृथे में श्वेत गन्धक के उल्लेख में किया जा चुका है तथापि यहां उसका कमबख्त विशद वर्णन कर देना आवश्यक है, अन्यथा भ्रम रह जाने की सम्भावना है।

गोदन्ती

Gypsum. $\text{Ca So}_4 2\text{H}_2\text{O}$.

प्रकृति में गोदन्ती बड़ी बड़ी स्तरदार चट्टानों के आकार में पाया जाता है। भिन्न भिन्न देशों में इसकी उत्पत्ति भिन्न

भिन्न भौगर्भिक काल में हुई है। इन भौगर्भिक कालों का हमारे काल निर्णय के साथ समता दिखाना दुष्कर है; जैसे हमारे पौराणिक सतयुग त्रेतायुग आदि युग निर्णय हैं उसी तरह भिन्न भिन्न प्रकार के अनेक चिन्ह पृथ्वी के अन्तराल में देखकर भूगर्भ शास्त्रकारों ने उसकी आयु का निर्णय किया है उनके वे ही प्रचलित युगनाम उसी भाषा में यहां लिखेंगे। पाठक सावधानी से समझने का प्रयत्न करें।

जर्मनी के स्टैसफर्ट (Stassfurt) नामक स्थान की खानों में गोदन्ती के स्तर परमियन (Permian) युग के माने जाते हैं। ओहियो (Ohio) और न्यूयार्क (New York) में साइल्यूरियन (Silurian) युग के हैं, इसके अतिरिक्त युनाइटेड स्टेट्स आफ अमेरिका के अन्य स्थानों में टर्शरी (Tertiary) और पाइस्टोसीन (Pleistocene) काल के हैं।

भारतवर्ष में नमक के पहाड़ में लाहोरी नमक (सेन्धवं लवण) के साथ यह खनिज बहुत तादाद में पाया जाता है, इसके निर्माणकाल का अभी निर्णय नहीं हुआ है। उसका निर्माण काल यानो कैम्ब्रियन (Cambrian) अर्थात् अत्यन्त प्राचीन अथवा टर्शरी (नवीन) है।

गोदन्ती स्तरदार चट्टानों के अतिरिक्त अन्य धातु और खनिजों के साथ भी मूल्यहीन खनिज के रूप में पृथ्वी की शिराओं में पाया जाता है।

उत्पत्ति—जहां पर गोदन्ती बड़े स्तरों के आकार में पाया जाता है वहां उसकी उत्पत्ति समुद्र के सूख जाने से ही हुई

है। इस सिद्धांत को स्थिर करने में यह प्रमाण दिया जाता है कि इसके उपरितल पर सामुद्रिक लवण की तह पाई जाती है। जर्मनी के प्रसिद्ध रसायनशास्त्रज्ञ वान्ट हाफ (Van't Hoff) आदि ने अनेक परीक्षाओं द्वारा यह सिद्ध किया है कि यदि समुद्रजल एक पात्र में उष्ण किया जाय तो जल के उड़ जाने पर उसके लवण उसी क्रम से तलछट के रूप में बैठेंगे जिस क्रम से वे स्तर रूप में समुद्र के सूखने पर स्ट्रासफर्ट की गोदन्ती और नमक की खानों में जमे हुये पाये जाते हैं। समुद्र के जल में नीचे लिखे द्रव्य पाये जाते हैं।

१ क्लोरिन (Cl —55.29)

२ ब्रोमिन (Br —19)

३ सल्फेट (So_4 —7.69)

४ कार्बोनेट (Co_3 —21)

५ सोडियम (Na —30.59)

६ पोटैशियम (K —1.119)

७ कैल्शियम (Ca —1.20)

८ मैगनीसियम (Mg —3.72)

इन द्रव्यों के पारस्परिक रासायनिक संगठन से समुद्र के सूखने पर नीचे लिखे क्रम से तली में लवण बैठते हैं।

फेरिक (फेरिक ऑक्साइड Fe_2O_3)

मैगनीसियम कार्बोनेट (MgCO_3)

सुधापाषाण (कैल्शियम कार्बोनेट CaCO_3)

गोदन्ती जिपसम $\text{CaSO}_4 \cdot 2\text{H}_2\text{O}$ सजल गोदन्ती
एनहाइड्राइट Anhydrite CaSO_4 निर्जल गोदन्ती
ये दोनों प्रकृति में परस्पर मिले रहते हैं।

साधारण लवण (सोडिय क्लोराइड NaCl) मैग्नेसिय और
पोटाशिय के विलयनशील लवण (मैग्नेसिय सल्फेट-मैग्नेशिय
क्लोराइड आदि पोटाशिय क्लोराइड-पोटाशिय सल्फेट आदि)

नोट—सजल और निर्जल गोदन्ती विशेष दशा में प्रकृति में एक
दूसरे से बन जाते हैं, किन्तु साधारणतया दोनों भिन्न भिन्न खनिज हैं।
इन्हें सावधानी से संग्रह करना चाहिये। *

गोदन्ती समुद्र शोषण और अन्य खनिजों के सहयोग में तो
प्राप्त होता ही है। इसके अतिरिक्त साधारण मृत्तिका में भी
बना पाया जाता है। इस प्रकार के गोदन्ती के उत्पत्ति में
भूगर्भ शास्त्रियों का मत है कि जहाँ जहाँ माक्षिक धातु का
सङ्काय (डीकंपोजिशन) प्राकृतिक नियम से होता है, वहाँ २
गन्धकाम्ल बनता है, यह गन्धकाम्ल प्राकृतिक मृत्तिका के
अन्दर मिले रहने वाले सुधापाषाण के साथ रासायनिक

* दोनों के रूप (क्रिस्टल) न हों तो भ्रम हो सकता है। दोनों के
रूप में दोनों प्रायः समान रूप के होते हैं इसलिए अच्छा यह है कि खनिज
शास्त्रियों से निर्णय कराकर ही ग्रहण करें। दोनों के गुण में भेद है।

परिवर्तन हर गोदन्ती (जिपसम) बनाता है । इस प्रकार से प्रकृति के सुन्दर हाथों से निर्मित गोदन्ती बहुत रमणीय कणों के रूप में प्राप्त होता है ।

गोदन्ती का पूर्ण कण जब तय्यार होता है उसका स्वरूप चपटा और दोनों सिरोपर दन्ताकार होता है इसी स्वरूप को देखकर प्राचीन रसशास्त्रियों ने इसका नाम गोदन्ती रखा है । अब तक नीचे लिखे भेद इसके पाये गये हैं ।

- १ सेलेनाइट (Selenite) कण रूप और पत्राकार
- २ प्लावास्टर (Alabaster) श्वेतपर्ण का डेजाकृति । इसमें हलके हलके कुछ रंग भी पाये जा सकते हैं ।
- ३ सेटिन्स्पर (Satinspar) कौशेयाकार । यह बड़ा सुन्दर रेशम के गुच्छे सा होता है ।

आधुनिक व्यवहारोपयोगी प्रयोग—

इस तरह तो विज्ञान की उन्नति के साथ साथ इसके प्रयोग भा बहुत बढ़ रहे हैं तथापि मुख्यतः नीचे लिखे कामों में बहुतायत से गोदन्ती का प्रयोग किया जाता है । ३१० डिग्री सेंटीग्रेड के तापक्रम उष्ण करने से प्लास्टर आफ पेरिस तय्यार होता है ।

ऊसर भूमि को उपजाऊ बनाने के लिये इसके चूर्ण का खाद डाला जाता है ।

आजकल भवन निर्माण कला में चूने के स्थान पर सीमेंट का व्यवहार अधिक हो रहा है, गोदन्ती इस सीमेंट के निर्माण में भी आधिक्य से काम में आती है ।

गोदन्ती का चूर्ण प्रायः स्वाद रहित है इसलिये दुष्ट व्यवसायी भोजनादि की सामान सामग्री में तथा अन्य द्रव्यों में वजन बढ़ाने के लिये मिला देने है।

चीनी के बिलौने भी इसके चूर्ण में स्फटिक का चूर्ण मिलाकर बनाये जाते हैं।

इसी प्रकार के अनेक व्यवसायों में गोदन्ती का प्रयोग होने लग गया है।

गोदन्तीविषयक प्राच्य मत

गन्धक के प्रकरण में लिखा गया है कि गोदन्ती प्राचीन रस-ग्रन्थकारों के मत में तो श्वेत गन्धक ही रहा किन्तु अर्वाचीन संग्रह कर्ताओं ने इसके पत्र देखकर इसकी गणना हरिताल में करना प्रारम्भ कर दिया, इसका स्पष्ट ध्योरा आयुर्वेद-प्रकाश के देखने से विदित होता है। आयुर्वेद प्रकाशकार ने हरिताल के प्रसिद्ध शास्त्रीय दो भेद लिखकर मित्र मत में गोदन्ती और बुगदादी नाम से दो प्रकार का और हरिताल मान लिया है। यही दशा बृहद्रथराजसुन्दर की है। अन्य ग्रन्थों में इसका वर्णन नजर नहीं आता, न यह पता लगता है कि कब से इस प्रकार का भ्रम हुआ है। तथापि यह स्पष्ट ही समझ लेना चाहिये कि इसकी उपयोगिता यूनानों वालों से सीखी गई है और यह बुगदाद ओर पञ्जाब से अधिकांश में आने के कारण भ्रमणशील साधु सन्यासियों की परंपरा से इसका प्रयोग होने लगा है। गोदन्ती और बुगदादी के नाम से दो स्वरूप के दो श्लोक मिलते हैं।

गोदन्ती—दीर्घस्वगुणमतिस्निग्ध गोदन्ताकृतिकं गुरु ।

नीलरेतान्वित मध्ये पीतं गोदन्ततालकम् ॥

बृगदादी—अतिस्निग्धं हिमप्रकयं सपत्रं गुरुतायुतम् ।

तत्ताले बकदाले स्याद्विन्द्रकुष्ठहर त्विदम् ॥

(बृहदश्रावमुन्वा भाषानुवाद शृङ्ग ११६)

यह वर्णन बिलकुल शुद्ध गोदन्ती के लिये है। उक्त लक्षण युक्त गोदन्ती बहुतायत से प्राप्त होती है। इसके औषधि प्रयोग प्राचीन ग्रन्थों में प्राप्त नहीं होते हैं। इस पत्र में मो इन्द्र कुष्ठहर लिखा है। पर इन्द्र कुष्ठ के नाम से कुष्ठाधिकार में कोई रोग नहीं है इससे स्पष्ट है कि यह रोग भी सुना सुनाया ही लिखा गया है। गोदन्ती का आधुनिक वैद्य व्यवहार रसेतरङ्गिणी पृष्ठ १२७ पर बहुत अच्छा लिखा है। यह पाठकों की सरलता के लिये उपा का र्था यहाँ उद्धृत किया जाता है।

गोदन्तस्य नामानि ।

गोदन्तिका च गोदन्ता गोदन्तं कथ्यते बुधैः ।

तत्तु पाषाणजातीयं सौम्यं तालसमं न तत् ॥

गोदन्तस्य स्वकथम् ।

पत्राचितं सुमसृणं शरदिन्दुसुनिर्मलम् ।

दीप्तप्रभं तु गोदन्तं प्राह्यमत्र प्रकीर्तितम् ॥

गोदन्तस्य शोधनम् ।

गोदन्तं निम्बुनीरेण द्रोणपुष्पीरसेन वा ।

यामार्धेनैव सुस्विन्नं विशुद्धयति न संशयः ॥

गोदन्तस्य मारणम्

शरावसम्पुटान्तःस्थं गोदन्तं सुविशाधितम् ।
म्रियते पुटितं भस्म जायते शशिसुन्दरम् ॥

गोदन्तस्य गुणाः

गोदन्तं सुमृत्तं शीतं पित्तज्वरनिषूदनम् ।
जीर्णज्वरहरं बल्यं दीपनं श्वासकासनुत् ॥

गोदन्तस्य मात्रा

गुञ्जकतः समारभ्य गुञ्जात्रयमितं परम् ।
गोदन्तं विनियुञ्जीत बलकालाद्यपेक्षया ॥

वदयपुरवास्तव्यरावोपाह्वकविराज श्री प्रतापसिंहकृतो

गन्धकविज्ञानीयो द्वितीयोऽध्यायः

समाप्तः